अष्टछाप-काव्य
का
सांस्कृतिक मूल्यांकन

(लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत
हिंदी प्रबंध का पाद-टिप्पणीरहित संक्षिप्त संस्करण)

★

डा० माताशानी टंडन, पी-एच० डी०

★

२३ अगस्त, १९६०

प्रकाशक : हिंदी साहित्य भंडार,
गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ

मुद्रक : विद्यामंदिर प्रेस,
रानीकटरा, लखनऊ

मूल्य : आठ रुपये

श्रद्धेय डा० प्रेमनारायण टंडन

को

प्रणतिपूर्वक

निवेदन

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अष्टछाप-काव्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है और अष्टछापी कवियों में सर्वोपरि सूरदास को गोस्वामी तुलसीदास के बाद प्रथम स्थान देने में हिंदी के सभी विद्वान एकमत हैं। परमानंददास और नंददास भी अपने युग के प्रथम श्रेणी के काव्यकारों में हैं। अष्टछाप के अन्य कवियों, यथा कुंभनदास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास के काव्यों के सुसंपादित रूप में प्रकाशित न हो सकने के कारण यद्यपि उनका सम्यक् मूल्यांकन अभी तक नहीं किया जा सका है, तथापि हिंदी के विद्वान इस दिशा में भी प्रयत्नशील हैं। सूरदास, परमानंददास, नंददास आदि के काव्य को लेकर अब तक जो कुछ लिखा गया है वह मुख्यतः उनके जीवन-वृत्त, काव्य की प्रामाणिकता, उनकी काव्य-कला और भक्ति तथा दर्शन-संबंधी उनके विचारों और सिद्धांतों से ही संबंध रखता है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबंध का विषय नवीन और उसका प्रतिपादन कई दृष्टियों से सर्वथा मौलिक है।

प्रस्तुत प्रबंध में विषय-प्रवेश और मूल्यांकन के अतिरिक्त सांस्कृतिक अध्ययन के नौ पक्षों पर विचार किया गया है। प्रथम परिच्छेद प्राकृतिक वातावरण से संबंधित है जिसको वल्लभ-संप्रदायी भक्त अपने परमाराध्य का 'नित्य लीला-धाम' मानते हैं और जहाँ अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य-काल का अधिकांश समय व्यतीत किया था। यह परिच्छेद प्रमुख रूप से तीन भागों में विभाजित है—प्राकृतिक स्थान, वनस्पति वर्ग और मानवेतर प्राणी। इनके सोदाहरण विवेचन से व्रज के भौगोलिक वातावरण का परिचय स्पष्ट रूप से मिल जाता है।

द्वितीय परिच्छेद अष्टछाप-काव्य में चित्रित सामान्य जीवन के चित्रण को लेकर लिखा गया है। उसके सात उपशीर्षक हैं—आवास एवं अन्य विचरण

स्थान, खानपान, वस्त्र, शृंगार-प्रसाधन, जीवनोपयोगी सामान्य और विशेष वस्तुएँ, धातु एवं खनिज पदार्थ तथा वाहन। इस प्रकार यह परिच्छेद उन व्रजवासियों के सामान्य जीवन का परिचय कराता है जिनके मध्य में अष्टछापी कवियों के परमाराध्य पले थे और जिनको अपनी रसमय लीलाओं से इस प्रकार आनंदित किया था कि उनके जीवन से देव-वर्ग को भी ईर्ष्या होने लगी थी।

तृतीय परिच्छेद में अष्टछापी कवियों के काव्य में चित्रित पारिवारिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यह परिच्छेद चार उपशीर्षकों में विभाजित है—परिवार का संगठन और संबंधी, पारिवारिक जीवन-चर्या, पारिवारिक शिष्टाचार और संस्कार-वर्णन। इनमें अंतिम को छोड़कर प्रथम तीनों उपशीर्षकों की सामग्री के लिए समस्त अष्टछाप-काव्य की छानबीन करनी पड़ी है, क्योंकि अष्टछापी कवियों का ध्येय प्रत्यक्ष रूप से पारिवारिक चित्रण नहीं था।

चौथे परिच्छेद ने, जिसमें सामाजिक जीवन-चित्रण की विवेचना है, प्रस्तुत प्रबंध के सबसे अधिक पृष्ठ घेर लिये हैं। यह परिच्छेद छह उपशीर्षकों में विभाजित है—सामाजिक व्यवस्था, मनोविनोद, पर्वोत्सव, सामाजिक लोकाचार और लोक-व्यवहार एवं विश्वास तथा मान्यताएँ। इन छहों उपशीर्षकों से संबंधित विषय पुनः अनेक उपविभागों में बँटा हुआ है। इस प्रकार यह परिच्छेद जितना विस्तृत है, उतना ही रोचक भी है और इससे व्रज के सामाजिक जीवन का अच्छा परिचय मिल जाता है।

पाँचवाँ परिच्छेद वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका के साधनों से संबंध रखता है। आरंभ में इस परिच्छेद को 'सामाजिक जीवन' के ही उपशीर्षक के रूप में रखा गया था, परंतु उस लेख के बहुत बढ़ जाने पर इसे स्वतंत्र परिच्छेद के रूप में देना ही उचित प्रतीत हुआ। इसके पाँच उपशीर्षक हैं—व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएँ; व्यापार के रूप और साधन, विविध व्यवसाय और व्यवसायी, जीविका के विविध साधन-रूप एवं अन्य व्यवसायी वर्ग। सामान्यतया काव्य, और विशेषतया गीतिकाव्य, में वाणिज्य और व्यवसाय एवं जीविका-साधन-रूपों के विवेचन के लिए कोई अवकाश नहीं रहता; परंतु लगभग पचीस पृष्ठ का यह परिच्छेद लिखे जाने की सामग्री अष्टछापी गेय काव्य में मिल जाना एक ऐसी विशेषता है जो हिंदी-साहित्य के संभवतः किसी भी युग के कवियों में इतने स्पष्ट रूप में नहीं मिल सकेगी।

यही बात छठे परिच्छेद के संबंध में भी कही जा सकती है जिसमें अष्टछापी कवियों के राजनीतिक जीवन-संबंधी विचार दिये गये हैं। इस लेख के

उपशीर्षकों की संख्या पाँच है—राजवर्ग का संगठन और उद्देश्य, शासन-व्यवस्था, सेना और युद्ध, राजस्व एवं राजनीति-संबंधी अन्य बातें ।

सातवें परिच्छेद में अष्टछापी कवियों के भक्ति और धर्म-संबंधी तथा आठवें में उनके दार्शनिक विचार दिये गये हैं। इनमें प्रथम परिच्छेद तीन उपशीर्षकों—सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप, सामान्य धार्मिक विचार एवं धार्मिक कृत्य—में विभाजित है और द्वितीय में ब्रह्म, जीव, जगत-संसार, माया, मुक्ति, रास एवं गोपी के संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार दिये गये हैं ।

नवाँ परिच्छेद अष्टछापी कवियों के साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचारों का परिचायक है एवं 'उपसंहार में उनके भारतीय तथा विदेशी संस्कृति-विषयक दृष्टिकोण की संक्षिप्त विवेचना करने के पश्चात् , संक्षेप में ही, उनके काव्य के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है ।

इस प्रकार विषय-प्रवेश और उपसंहार को छोड़कर प्रबंध के नौ परिच्छेदों में सात तो सर्वथा मौलिक हैं ही, भक्ति एवं दार्शनिक विचारों के प्रतिपादन वाले दोनों परिच्छेदों के सांप्रदायिक और सैद्धांतिक विवेचन को छोड़कर, धार्मिक विचारों और धार्मिक कृत्यों की चर्चा भी इस प्रबंध का मौलिक अंश है। हिंदी साहित्य के किसी अंग को लेकर इस प्रकार का कोई सांस्कृतिक अध्ययन अब तक प्रकाश में नहीं आया है। इस कारण प्रस्तुत प्रबंध की मौलिकता निस्संदेह निर्विवाद है ।

प्रस्तुत प्रबंध को सुचारु रूप देने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग एवं आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग के अध्यक्ष डा० दीनदयालु गुप्त ने अष्टछापी कवियों का हस्तलिखित संग्रह प्रदान करके मेरा कार्य तो सुगम कर ही दिया, समय-समय पर अनेक बहुमूल्य सुझाव देकर मुझे सदैव प्रोत्साहित किया। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर बलदेव प्रसाद जी मिश्र ने प्रबंध का अधिकांश देखकर अनेक उपयोगी सुझाव एवं डा० मुंशीराम शर्मा ने अनेक आवश्यक निर्देश देने की कृपा की। इन सब गुरुजनों का मैं हृदय से आभार मानती हूँ। जिन विद्वानों के ग्रंथों से इस प्रबंध में विशेष सहायता ली गयी है, उनके, विशेषकर डा० दीनदयालु गुप्त, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और डा० मुंशीराम शर्मा के प्रति भी अपनी कृतज्ञता सविनय प्रकट करती हूँ ।

प्रस्तुत प्रबंध लखनऊ विश्वविद्यालय के सहायक हिंदी प्रोफेसर डा० प्रेमनारायण टंडन के निर्देशन में लिखा गया है। प्रबंध की मूल प्रेरणा देकर

जहाँ उन्होंने मेरे कार्य की दिशा निर्धारित की, वहीं कार्य-काल में सतत प्रोत्साहन और सक्रिय निर्देशन देकर मेरा मार्ग भी प्रशस्त और सुगम किया। यों प्रस्तुत प्रबंध उन्हीं के आशीर्वाद और अनुग्रह का परिणाम है जिनकी कृपा का मूल्य औपचारिक अथवा व्यावहारिक कृतज्ञता-विज्ञप्ति द्वारा न आँककर आत्मानुभूत करने में ही मुझे हार्दिक संतोष है। प्रबंध की न्यूनताएँ अवश्य मेरी अपनी हैं।

हिंदी साहित्य-भंडार के अध्यक्ष श्री तेजनारायण टंडन ने प्रस्तुत प्रबंध के प्रकाशन का समुचित प्रबंध करके मुझे इधर-उधर भटकने से बचा लिया जिसके लिए मैं उनका भी बहुत आभार मानती हूँ।

लेखिका।

प्रकाशक की ओर से

'अष्टछाप-काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन' नामक प्रबंध बड़े आकार के ६३२ पृष्ठों में हमने प्रकाशित किया है जिसका मूल्य पच्चीस रुपये है। उस संस्करण को साहित्य के सामान्य अध्येता के लिए सुलभ न समझकर उसका यह संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किया जा रहा। इसमें विदुषी लेखिका का विवेचित भाग बृहत् संस्करण के ही अनुसार है, केवल पाद-टिप्पणियाँ और नामानुक्रमणिका वाले भाग निकाल दिये गये हैं। आशा है कि यह संस्करण सभी के लिए सुलभ समझा जायगा।

जिन विद्वानों के महत्वपूर्ण ग्रंथों के उदाहरण पूर्ण संस्करण में दिये गये हैं उनके प्रति विदुषी लेखिका के साथ-साथ हम भी क्षमाप्रार्थी हैं जो उनके उदाहरण पुनः इस संक्षिप्त संस्करण में नहीं दिये जा सके। अतएव साहित्य के जिन प्रेमियों को प्रस्तुत विषय का विस्तृत अध्ययन करना हो, वे पूर्ण संस्करण ही देखें।

—प्रकाशक

विषय-सूची

अष्टछाप-काव्य
का
सांस्कृतिक
मूल्यांकन

१ विषय-प्रवेश

'संस्कृति' और उसका क्षेत्र—

यों तो 'संस्कृति' शब्द का संबंध 'संस्कार', 'संस्क्रिया या 'संस्कृत' शब्दों से स्थापित किया जाता है, परंतु वस्तुत: अर्थ की दृष्टि से वह अँगरेजी के 'कल्चर' शब्द के अधिक निकट है। संस्कृत के एक विद्वान के अनुसार 'संस्कृति' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'सम् उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन' प्रत्यय करने से 'संस्कृति' शब्द बनता है'[१]। इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'संस्कृति' का अर्थ होता है—भूषणयुक्त सम्यक् कृति या चेष्टा। इस वाक्य में 'सम्यक्' शब्द ध्यान देने योग्य है। सामान्य प्राणी की क्रियाएँ अपने मूल रूप में शरीर की प्रकृति के अनुसार स्वच्छंद होती हैं; उनमें स्थान, समय, संपर्क आदि का ध्यान नहीं रखा जाता। परंतु मनुष्य इस प्रकार की स्वच्छंदता को उचित नहीं समझता; वह अपने कार्य-व्यापारों को वही रूप देना चाहता है जो उचित और सम्यक् हो। उक्त व्युत्पत्ति के अनुसार 'संस्कृति' के अर्थ का संबंध ऐसी ही सम्यक् कृति या चेष्टा से जोड़ा गया है। एक अन्य विद्वान ने 'संस्कृति' शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ 'परंपरागत अनुस्यूत संस्कार' बताया है[२]। इन दोनों अर्थों में प्रथम कार्य-प्रधान और द्वितीय संस्कार-प्रधान है।

१. 'कल्याण', 'हिंदू संस्कृति अंक', पृ० २४।
२. 'कल्याण', 'हिंदू संस्कृति अंक', पृ० ४१।

संस्कृत में 'संस्कृ' धातु के अनेक अर्थ होते हैं; यथा—सजाना, सँवारना, परिष्कृत करना आदि। अँगरेजी के 'कल्चर' शब्द के कुछ अर्थ भी इसी से मिलते-जुलते हैं; यथा—विचार, रुचि और आचार का शिक्षण तथा परिष्कार; एवं विचार, रुचि और आचार के शिक्षित और परिष्कृत किये जाने की स्थिति आदि। इन अर्थों का उक्त धात्वर्थ से सर्वथा विरोध ही हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। कारण, 'कल्चर' शब्द के इन अर्थों में जिस 'शिक्षण या परिष्कार' को महत्त्व दिया गया है, उसी की ओर इंगित करनेवाला 'सम्यक्' शब्द ऊपर प्रयुक्त हुआ है। तात्पर्य यह कि जिन कार्यों या व्यापारों से हमारा आचार-विचार सजाया-सँवारा हुआ माना जाय और हमारी रुचि शिक्षित या परिष्कृत समझी जाय, उन सबका संबंध 'संस्कृति' से है।

उक्त कथन के आधार पर सम्यक् कृतियों और परंपरा से प्राप्त संस्कारों की समष्टि को 'संस्कृति' कह सकते हैं[1]। दूसरे शब्दों में, मानव के हृदय पर विभिन्न कारणों से जो भाव-चित्र उत्पन्न होकर भाषा या कला-कौशल के माध्यम से धर्म, समाज आदि मानवीय कार्य-क्षेत्रों में अनेक रूप धारण कर प्रस्फुटित होते हैं, उन सभी भाव-चित्रों और संस्कार-समुच्चयों को 'संस्कृति' कहना चाहिए। यों व्यापक अर्थ में मानवीय जीवन-यापन की समग्र व्याख्या को 'संस्कृति' समझा जा सकता है। इसमें ज्ञान, विश्वास, शिल्प-कला और अन्य कलाएँ, नैतिकता, नियम, रीति-रिवाज तथा वे सभी अन्य योग्यताएँ समाहित हो जाती हैं, जिन्हें व्यक्ति, समाज का सदस्य होने के नाते, ग्रहण करता है। सारांश यह कि 'संस्कृति' का संबंध मानव के उन वैयक्तिक और सामाजिक कार्यों की अभिव्यक्ति है जिनके द्वारा मानवता को पशुत्व से मुक्ति मिलती है।

समान संस्कारों वाले मनुष्यों के समूह को ही साधारणतया 'जाति' या 'समाज' समझा जाता है। अतएव समाज की प्रकृति या स्वभाव और आस्था या विश्वास की प्रेरक भावनाओं में प्रायः समान संस्कार रहते हैं। संभवतः इसी कारण संस्कृत की एक प्रचीन उक्ति में, किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों, सामाजिक संबंधों और मानवता की दृष्टि से

१. श्री महादेव शास्त्री दिवेकर, 'आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष', पहला प्रकरण, पृ० ५।

प्रेरणा प्रदान करनेवाले तत्वों की समष्टि को 'संस्कृति' कहा गया है। इस प्रकार मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं और जाति-विशेष के आंतरिक भावों की अभिव्यंजना को 'संस्कृति' समझना चाहिए।

हिंदी के प्रमुख कोशकारों में एक ने संस्कृति को 'रहन-सहन की रूढ़ि' कहा है, तो दूसरे ने उसे 'आचारगत परंपरा' बताया है और तीसरे ने उसके अंतर्गत मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास-सूचक बातें ली हैं। इस प्रकार मानव के रहन-सहन और आचार-विचार से संबंधित उन सभी परंपरागत बातों से 'संस्कृति' का संबंध बताया गया है जो उसकी विविध विषयक रुचियों के परिष्कार और विविध अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं। यों 'संस्कृति' के दो पक्ष हो जाते हैं। पहले का संबंध उन बातों से रहता है जिनका निर्माण रहन-सहन, आचार-विचार आदि से संबंधित वातावरण, संस्कार, संपर्क आदि के फलस्वरूप हुआ करता है और दूसरे पक्ष का संबंध परंपरा से अर्थात् उन बातों से रहता है जो मानव अपने पूर्वजों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण करता है। प्रथम पक्षीय विषयों की नींव मानव के जन्म-काल से ही पड़ जाती है और उसके रहन सहन, आचार-विचार आदि पर जिन बातों का आरंभ से ही प्रभाव पड़ने लगता है, उनमें प्रमुख हैं—प्राकृतिक वातावरण, जीवन की सामान्य रूपरेखा, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थिति आदि द्वितीय पक्ष के अंतर्गत विभिन्न विषयों के संबंध में परंपरा से प्राप्त विश्वास और मान्यताओं के साथ-साथ अनेक पर्वोत्सव आदि भी आ जाते हैं जिनसे जीवन के प्रति समाज के दृष्टिकोण की संकुचितता या व्यापकता का सहज ही परिचय मिल सकता है।

'सांस्कृतिक मूल्यांकन' से तात्पर्य—

साहित्य या काव्य के अंग-विशेष को लेकर 'संस्कृति' के उक्त दोनों पक्षों पर सम्मिलित रूप से विचार करना उसका 'सांस्कृतिक मूल्यांकन' कहलाता है। काव्य-विशेष के सांस्कृतिक मूल्यांकन से उसके रचनाकालीन समाज की स्थिति पर दोहरा प्रकाश पड़ता है। एक तो पाठक उसकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक और कलात्मक स्थिति से परिचित हो सकता है और दूसरे, उन संस्कारों और आदर्शों का भी उसे परिचय मिल सकता है जो जाति या वर्ग-विशेष के लौकिक जीवन का परिचालन करते हैं। प्रथम प्रकार की जानकारी का घनिष्ठ संबंध इतिहास

से रहता है, क्योंकि ऐतिहासिक परिस्थिति के साथ-साथ उक्त सभी प्रकार की स्थितियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। द्वितीय प्रकार का परिज्ञान अपेक्षाकृत अधिक महत्व का होता है। कारण, समाज-विशेष के लौकिक जीवन-संबंधी आदर्शों का निर्माण शताब्दियों में होता है, उन आदर्शों की जड़ ऐतिहासिक भूमि में बहुत गहरी समायी रहती है; वस्तुत: ऐसे संस्कारों का बीज-वपन उसी दिन हुआ समझना चाहिए जिस दिन मानव समाज ने सभ्यता का प्रथम पाठ सीखा होगा।

काव्य का संबंध भी जाति के इतिहास से अधिक उसके संस्कार-जन्य आदर्शों से रहता है। फलस्वरूप ऐतिहासिक स्थिति के संबंध में जो संकेत या विवरण किसी काव्य में मिलते हैं वे प्राय: सामान्य और असंबद्ध ही होते हैं। प्रबंध-काव्य में तत्संबंधी उल्लेखों के लिए थोड़ा-बहुत अवकाश हो भी सकता है; परंतु गीतिकाव्य में उनके लिए कोई स्थान नहीं होता; यद्यपि स्वयं कवि उनकी सर्वथा उपेक्षा नहीं करना चाहता। द्वितीय प्रकार की स्थिति से संबंधित अनेक संकेत सभी प्रकार की रचनाओं में मिलते हैं; कारण, तत्संबंधी उल्लेख कोई भी कवि अनायास ही कर जाता है; क्योंकि उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी उन्हीं संस्कारों और आदर्शों से होता है। ये संकेत कभी तो प्रत्यक्ष रूप से वर्णित विषयों में मिलते हैं और कभी परोक्षत: अलंकारों के रूप में इस उद्देश्य से अपनाये जाते हैं कि अबोधावस्था में ही संस्कार-रूप में परिचित पाठक उन्हें सहज ही हृदयंगम कर सकें; अस्तु।

अतएव सामान्य रूप से काव्य के सांस्कृतिक मूल्यांकन के मुख्य नौ पक्ष हो जाते हैं—प्राकृतिक, सामान्य, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक और व्यावसायिक जीवन की रूपरेखा, धर्म और दर्शन-संबंधी विचार तथा साहित्य एवं कला की स्थिति का परिचय। प्रस्तुत प्रबंध में अष्टछाप-काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन इन्हीं शीर्षकों के अंतर्गत किया जायगा।

अष्टछाप-काव्य के अब तक प्रस्तुत किये गये सांस्कृतिक अध्ययन का मूल्यांकन—

समस्त अष्टछाप-काव्य का प्रथम आलोचनात्मक अध्ययन डा० दीनदयाल गुप्त का 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' नामक विख्यात ग्रंथ है जो उसी प्रकार के किसी अन्य ग्रंथ के अब तक प्रकाशित न होने के कारण 'अंतिम' भी कहा जा सकता है। इस विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ में धर्म, भक्ति, दर्शन आदि से संबंधित अष्टछापी कवियों के विचारों का

सामाजिक विवेचन तो मिलता है, परंतु सांस्कृतिक अध्ययन के अन्य पक्षों पर कुछ नहीं लिखा गया है।

अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास के काव्य को लेकर इधर पाँच-सात सुंदर प्रबंध और ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं जिनमें डा० मुंशीराम शर्मा का 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', डा० व्रजेश्वर वर्मा का 'सूरदास', डा० हरवंशलाल का 'सूर और उनका साहित्य', आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का 'महाकवि सूरदास', डा० प्रेमनारायण टंडन का 'सूर की भाषा' और 'सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अंतिम को छोड़कर शेष प्रायः सभी ग्रंथों में सूर-काव्य के शास्त्रीय, धार्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन जितने विस्तार से किया गया है उसको देखते हुए यही कहा जायगा कि उसके सांस्कृतिक पक्ष की किसी सीमा तक उपेक्षा ही की गयी है, यद्यपि डा० मुंशीराम शर्मा जैसे विद्वानों ने 'सूरदास और व्रज की संस्कृति' जैसे नाम से एक परिच्छेद अपने ग्रंथ में देकर तद्विषयक अध्ययन की आवश्यकता का निर्देश अवश्य कर दिया है। डा० टंडन का 'सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' शीर्षक ग्रंथ यद्यपि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि किसी भी हिंदी कवि को लेकर वैसी कोई रचना अभी तक प्रकाश में नहीं आयी है, तथापि उसमें विषय की एक प्रकार से रूपरेखा भर दी गयी है, उसका सम्यक् विवेचन नहीं किया गया है।

प्रस्तुत प्रबंध की मौलिकता—

हिंदी के जब किसी भी कवि के काव्य को लेकर कोई विधिवत सांस्कृतिक अध्ययन अब तक प्रकाश में नहीं आया है, तब प्रस्तुत प्रबंध की 'मौलिकता' निर्विवाद ही है। इसके नौ परिच्छेदों में से धर्म और दर्शन वाले परिच्छेदों के लिए विशेष रूप से और संस्कार-वर्णन के लिए सामान्य रूप से उक्त ग्रंथों से कुछ सहायता मिल सकी है; यद्यपि उनमें भी प्राप्त सामग्री की सुचारु और स्पष्ट रूप से सोदाहरण विवेचना का लेखिका का ढंग एक प्रकार से 'निजी' ही है। फिर भी इन परिच्छेदों को प्रस्तुत प्रबंध में संक्षिप्त ही रखा गया है और उन परिच्छेदों को विस्तार दिया है जिनका विषय-प्रतिपादन मौलिक है। अतएव प्रस्तुत प्रयत्न हिंदी में अपने ढंग का सर्वप्रथम मौलिक प्रयास कहा जाना चाहिए।

अष्टछापी कवियों के वर्ण्य विषय

विषय की दृष्टि से अष्टछापी कवियों के दो वर्ग किये जा सकते

हैं। प्रथम वर्ग में परमानंददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, और छीतस्वामी आते हैं जिन्होंने पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के आराध्य श्रीकृष्ण की केवल गोकुल-वृन्दावन की लीलाओं का ही वर्णन किया है। द्वितीय वर्ग सूरदास और नन्ददास का है जिन्होंने श्रीकृष्ण की गोकुल, वृन्दावन, मथुरा और द्वारका-लीला के विविध प्रसंगों के साथ-साथ कुछ पौराणिक कथाओं का भी विस्तार से वर्णन किया है। इस प्रकार यों तो इन कवियों की रचना का मुख्य विषय श्रीकृष्ण की बाल, पौगंड और किशोर लीलाएँ हैं, फिर भी प्रत्येक कवि को अपने आराध्य की लीला का अंश-विशेष अधिक प्रिय रहा है और उसी का वर्णन करने में उसे विशिष्टता प्राप्त है। व्रज की सारी 'रीति' का गान करने पर भी सूरदास वात्सल्य और शृंगार-वर्णन में अद्वितीय हैं तो परमानन्ददास का बाल, पौगंड और किशोर-लीला-वर्णन सुन्दर है, क्योंकि उनकी भक्ति बाल, कान्ता और दास-भाव की थी और तत्संबंधी विषयों की चर्चा की ही परमानंद-काव्य में अधिकता है। कृष्णदास का विशेष कौशल रासलीला एवं प्रिया-प्रियतम-विहार-वर्णन में परिलक्षित होता है। नन्ददास ने जो कुछ कहा है वह राग या अनुराग रंग में रँगा हुआ है। कुम्भनदास की वृत्ति किशोर लीला में अधिक रमी है तथा चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी आदि की विशिष्टता भक्ति-रस का तन्मयतापूर्वक वर्णन करने में है।

दूसरी बात यह कि यद्यपि सूरदास और नंददास ने मथुरा-द्वारका-लीला-वर्णन द्वारा तत्कालीन नागरिक संस्कृति का भी परोक्षत: संक्षिप्त परिचय दिया है, तथापि अष्टछाप के सभी कवियों की वृत्ति अपने आराध्य की गोकुल-वृन्दावन-लीला में ही रमी रही और इस प्रकार वे ग्रामीण संस्कृति का ही यथार्थ चित्र अंकित करने में पूर्ण सफल हो सके। उनका यह प्रयत्न दो दृष्टियों से बड़े महत्व का है। पहली बात तो यह है कि भारत का हृदय गाँवों में ही है, नगरों में नहीं। अतएव ग्रामीण संस्कृति ही भारतीय संस्कृति के वास्तविक रूप से परिचित करा सकती है। दूसरे, अष्टछापी कवियों के समय तक मथुरा-आगरा आदि व्रज-प्रदेशीय प्रमुख नगरों के नागरिक जीवन पर इसलामी जीवनचर्या और विचार-धारा का जो प्रभाव पड़ चुका था, उससे भी गोकुल, वृन्दावन आदि के ग्रामीण अपेक्षाकृत अछूते ही थे। अतएव सूरदास, परमानंददास, नंददास आदि ने तत्कालीन ग्राम्य जीवन के अध्ययन के लिए ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री सुलभ कर दी है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी मूल्यवान है।

२ प्राकृतिक जीवन-चित्रण

'व्रज' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'व्रज' (जाना) धातु से है। ऋग्वेद-काल से लेकर संहिता और महाकाव्य-काल तक यह शब्द पशुओं के समूह अथवा चरागाह के अर्थ में ही सीमित रहा[१]। पुराण-युग में अवश्य 'व्रज' के अर्थ में कुछ स्थानपरकता का भाव आ गया और डॉ० धीरेन्द्रवर्मा के अनुसार, इस शब्द का प्रयोग 'मथुरा के निकटस्थ नंद के व्रज अर्थात गोष्ठ-विशेष के अर्थ में होने लगा'। तदनंतर 'व्रज' शब्द क्रमशः देशपरक अर्थ का द्योतक होता गया और हिन्दी-साहित्य के भक्ति-युग के आरम्भ में ही मथुरा के निकटवर्ती प्रदेश का वाचक रहा है। अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों की रचनाओं में और उनके पश्चात लिखी गयी 'चौरासी' तथा 'दो-सौ-बावन-वैष्णवों की वार्ता' में भी 'व्रज' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कालांतर में 'व्रज' की परिधि बढ़ कर चौरासी कोस की हो गयी और उसे 'व्रज-मंडल' कहा जाने लगा।

इस व्रजमंडल के प्रति अष्टछापी कवियों में बड़ी श्रद्धा रही है। इसके दो मुख्य कारण जान पड़ते हैं। प्रथम तो यह कि इस मंडल के अन्तर्गत गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन, बरसाना, मथुरा आदि ऐसे प्रसिद्ध स्थल हैं जो अष्टछाप के परमाराध्य श्रीकृष्ण की लीला-भूमि रहे हैं। दूसरे, उक्त स्थानों में से कुछ, यथा महावन, जमुनावतौ, गोपालपुर आदि

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा, 'व्रजभाषा-व्याकरण', भूमिका, पृ० ६ की पादटिप्पणी संख्या २।

अष्टछापी कवियों के निवास स्थान थे। इनके अतिरिक्त गोवर्द्धन पर तो महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा संस्थापित श्रीनाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर भी है जहाँ श्रीनाथ जी के समक्ष वे कवि कीर्तन किया और पद रचा करते थे।

अष्टछाप-काव्य के अनुसार जब स्वयं श्रीकृष्ण व्रजभूमि के दर्शन करके अत्यंत पुलकित हो जाते हैं, तब उनके भक्त-कवियों का उस पुण्यभूमि को बैकुंठ से भी श्रेष्ठ मानना सर्वथा संगत ही समझा जायगा। यही कारण है कि कोई अष्टछापी कवि इसलिए बैकुंठ जाना व्यर्थ समझता है कि वहाँ बंसीवट, यमुना, गोवर्द्धन, वृन्दावन आदि नहीं हैं और कोई बिधिना से सदैव व्रज-वास का ही वरदान चाहता है क्योंकि वही नित्यधाम है जहाँ परमाराध्य का साहचर्य सदैव सुलभ रहता है।

अष्टछाप-काव्य में व्रजवासियों के प्राकृतिक-जीवन का चित्रण बड़े विस्तार से किया गया है। अध्ययन की सुविधा और स्पष्टता के लिए उसको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. प्राकृतिक स्थान, २. वनस्पति वर्ग और ३. जीव-जंतु।

१. प्राकृतिक स्थान—

इस शीर्षक के अंतगत व्रज के जो प्राकृतिक स्थान आते हैं, उनको स्थूल रूप से पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है—क. वन, ख. उपवन, ग. पर्वत, घ. नदी और ङ. अन्य स्थान।

क. वन—'मथुरा मेम्वायर' के अनुसार व्रज के बारह वन ये हैं—मधु, ताल, कुमुद, बहुला, काम, खिदर, वृन्दा, भद्र, भांडीर, वेल, लोह और महावन। 'सूरसागर' में इन वनों का उल्लेख मात्र है, 'सारावली' में अवश्य उनके नाम गिनाये गये हैं।

व्रज के उक्त वनों में 'वृन्दावन' का उल्लेख सभी अष्टछापी कवियों ने किया है, क्योंकि यह वन ही श्रीकृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं का मुख्य केन्द्र था। सूरदास, परमानंददास और नंददास के काव्यों में वृन्दावन के अतिरिक्त कुमुदवन, कोकिलावन, तालवन और मधुवन का उल्लेख भी मिलता है। प्रथम अर्थात् कुमुदवन में श्रीकृष्ण के साथ सखाओं के बहुत दिन तक रहने की, कोकिलावन में राधा और उसकी सखियों के खेलने की, तालवन में जमुना-जल पीने की और मधुवन में कदंबवृक्ष की सघन डालों में झूला झूलने की बात कही गयी है।

अन्य वन—ब्रज के उपरोक्त वनों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में दो वनों का उल्लेख और हुआ है—एक है मुंजारण्य और दूसरा दंडक-वन। प्रथम का उल्लेख नंददास ने दावानल-प्रसंग में किया है और द्वितीय का सूरदास ने राम-कथा के संबंध में।

ख. उपवन—'मथुरा मेम्वायर' के अनुसार ब्रज के ये चौबीस उपवन प्रसिद्ध हैं—गोकुल, गोवर्द्धन, बरसाना, नंदगाँव, संकेत, परममन्द, अरींग, शेषशायी, माट, ऊँचागाँव, खेलवन, श्रीकुण्ड, गन्धर्ववन, परासौली, बिलछू, बछवन, आदिवद्री, करहला, अजनोख, पिसायोवन, कोकिलावन, दधिवन, कोटवन और रावलवन। अष्टछाप-काव्य में इन उपवनों की अधिक चर्चा नहीं है; केवल 'परमानंद-सागर' में नंदगाँव का सामान्य रूप से, परासोली का बेनु-प्रसंग में और मधुवन का दानलीला-प्रसंग में उल्लेख हुआ है।

ग. पर्वत—ब्रज के चार पर्वत या टीले कहे जाते हैं—गोवर्द्धन, बरसाना, नन्दीश्वर और चरण पहाड़ी। कृष्ण की लीलाओं में गोवर्द्धन-धारण का विशिष्ट स्थान होने के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने गोवर्द्धन का ही उल्लेख अधिक किया है। नंद और यशोदा को वृषभानु 'नन्दीश्वर' से निमंत्रित कर श्याम की सगाई के लिए बुलाते हैं। राधा का जन्म-स्थान और वृषभानु जी का निवास-स्थान होने के कारण 'बरसाने' की भी चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है; क्योंकि वहीं श्रीकृष्ण की 'सगाई' होती है। 'चरन-पहाड़ी' का उल्लेख केवल परमानंददास ने श्रीकृष्ण के 'आँखमिचौनी' खेलने के प्रसंग में किया है।

अन्य पर्वत—उक्त पर्वतों के अतिरिक्त सूर-काव्य में द्रोणागिरि, ऋष्यमूक, त्रिकूट और मंदराचल का भी वर्णन मिलता है। प्रथम दो का उल्लेख रामकथा-प्रसंग में और अंतिम दो का गजग्राह और सागर-मंथन के प्रसंग में हुआ है। द्रोणागिरि पर संजीवनी बूटी लेने के लिए हनुमान गये थे। ऋष्यमूक पर्वत पर राम और सुग्रीव से मित्रता हुई थी। त्रिकूट लंका का पर्वत है; किन्तु सूर ने गजग्राह की कथा में इसका वर्णन किया है। सागर-मंथन के समय मंदराचल की नेति बनाये जाने की बात भी सूरदास ने ही लिखी है।

घ. नदी—ब्रज की प्रमुख नदी है यमुना जिसके अतिरिक्त मानसी-गंगा का भी उल्लेख हुआ है। यमुना का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने बड़ी उमंग से किया है। इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि यमुनातट ही कृष्ण-लीला का मुख्य स्थल रहा है जिससे जलविहार, काली-

नाग-नाथन, पनघट-लीला आदि प्रसंगों में यमुना का उल्लेख स्वतः हो गया है। इसके अतिरिक्त अष्टछापी कवियों की दृष्टि में यमुना की महिमा भी बहुत है। चतुर्भुजदास सदा यमुना की भक्ति करने की प्रेरणा देते हैं। छीतस्वामी यमुना के भजन को 'कृष्णभक्ति का साधन' और 'बैकुंठ की निसैनी' बताते हैं। गोविन्दस्वामी ने यमुना को 'पतितोद्धारक' और 'भक्ति-मुक्ति-दात्री' कहा है; क्योंकि वह भक्तों की इच्छा-पूर्ति करती है। परमानंददास की सम्मति में यमुना के दर्शन तथा जल-पान से प्राणी को यम-यातना नहीं सहनी पड़ती।

अष्टछाप-काव्य में 'यमुना' के लिए मुख्यतः ये नाम आये हैं— कालिंदी, तरणि-नंदिनी, तरनितनया, भानुतनया, रवितनया, सूर-सुता, सूरजा आदि। 'कलिंद' पर्वत से निकलने के कारण यमुना को 'कालिंदी' कहा जाता है। व्रज की इस प्रसिद्ध नदी के उक्त सब नामों में 'यमुना' ही अष्टछाप-काव्य में सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है।

'मानसी-गंगा' वस्तुतः व्रज का एक सरोवर है जिसके साथ 'गंगा' शब्द होने से इसे कभी कभी नदी कह दिया जाता है। अष्टछाप-काव्य में केवल चतुर्भुजदास ने 'मानसी-गंगा' के स्नान का उल्लेख गोवर्द्धन-पूजा-प्रसंग में किया है। उन्होंने गोवर्द्धन की पूजा के समय मानसी-गंगा के जल से स्नान कराने के पश्चात् दूध की धार भी चढ़वायी है।

अन्य नदियाँ—व्रज की उक्त दो नदियों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में चंद्रभागा, गंगा, गोदावरी, सरयू, सरस्वती, सतद्रु और सिंधु का नामोल्लेख भी विविध प्रसंगों में हुआ है। 'चंद्रभागा' चंद्रभाग पर्वत से निकली 'चेनाव' नदी है जिसकी चर्चा 'सारावली' में है। धार्मिक दृष्टि से 'गंगा' की महिमा तो सर्वोपरि है ही। परमानंददास के विचार से 'गंगाजल' में मज्जन और गंगाजल-पान से प्राणी आवागमन से मुक्ति पा जाते हैं और उनके त्रिविध ताप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थराज प्रयाग में 'यमुना' और 'सरस्वती' के साथ 'गंगा' के प्रकट होने की बात भी उन्होंने कही है। इसी से 'त्रिवेणी-स्नान' का बड़ा माहात्म्य है। 'गंगा' के लिए 'सूरसागर' में 'सुरसरी' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। 'गोदावरी' का उल्लेख नंददास-कृत 'दशमस्कंध' में है। अयोध्या की 'सरयू' नदी का वर्णन राम-कथा में हुआ है जिसके तीर पर अयोध्या नगरी बसी बतायी गयी है। 'सरस्वती' का नाम विद्याधर-शाप-मोचन-प्रसंग और 'सिन्धु' का नाम कृष्ण के द्वारका जाने

के प्रसंग में आया है। 'सतद्रु' अर्थात् पंजाब की 'सतलज' नदी में व्यास जी के स्नान करने की बात 'सारावली' में कही गयी है।

अन्य स्थान—इस शीर्षक के अन्तर्गत कन्दरा, कुंज, खादर, डूँगर, छीलर, झरना, ताल-तलैया, दह, पुलिन, सर-सरवर, सागर आदि प्राकृतिक स्थल लिये जा सकते हैं। गोवर्द्धन की सघन 'कन्दरा' में कृष्ण और राधा ने रात्रि-निवास किया था। 'कन्दरा' के पर्याय 'खोह', 'गुफा' और 'गुहा' का वर्णन संन्यासियों के तपस्थान के रूप में हुआ है। व्रज की 'कुंजों' में श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ अनेकानेक मधुर लीलाएँ की थीं। 'खादर' या तराई भाग में चरती हुई गायों को मुरली बजाकर बुलाने की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है। इन्द्र-मान-भंग-प्रसंग में इन्द्र गोवर्द्धन को 'डूँगर' कहते हैं। 'छीलर' का जल गंदा और अस्वास्थ्यकर होता है। इसीलिए सूरदास का कथन है कि सागर की लहर को छोड़कर 'छीलर' में किस प्रकार स्नान किया जाय? व्रज में क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण 'झरना', 'सरिता' और 'सर' के सुरभित जल में अवगाहन करते थे। व्रजवासियों के विश्वास के अनुसार इन्द्र की पूजा से ही 'ताल-तलैया' सब भर जाते हैं और पृथ्वी हरीभरी रहती है। व्रज की प्रमुख 'दह' तो 'कालीदह' के नाम से प्रसिद्ध है ही। 'पुलिन' से तात्पर्य नदी-तट से है और 'वृन्दावन-पुलिन' पर मंडल बनाकर श्रीकृष्ण ने रासलीला की थी। 'मैदान' में श्रीकृष्ण के 'चौगान' खेलने का उल्लेख परमानंददास ने किया है।

'वापी', 'सर' या 'सरवर' भी प्राकृतिक-स्थानों के वर्ग में ही आते हैं। 'जलाशयों' में 'समुद्र' सबसे बड़ा होता है। अष्टछाप-काव्य में 'समुद्र' के लिए 'अंबोधि', 'उदधि', 'पयोनिधि', 'बारिधि', 'सरितापति', 'सागर', 'समुद्र', 'सिंधु' आदि शब्द व्यवहृत हुए हैं। सामान्य रूप के साथ-साथ प्रकृति के इन अंगों का उल्लेख उपमान-रूप में भी किया गया है। 'सागर' का उल्लेख अधिकतर संसार की गहनता, दुस्तरता, दुख की अगाधता आदि के लिए हुआ है। सागर 'सुख' का बतलाया गया है और 'विषय-विष' तथा 'अघ' का भी। सूर ने 'मोह' का समुद्र भी बतलाया है जिससे उद्धार होने का एकमात्र साधन भगवन्नाम ही है। सांसारिक 'भय' को भी 'समुद्र' के समान विकराल कहा गया है। अष्टछापी कवियों ने कभी तो अपने परमाराध्य को 'सागर' बताया है और कभी उनकी 'दया' या 'कृपा' की असीमता देखकर उनको 'कृपासिंधु', 'कृपा-पयोधि आदि कहा है।

(२) वनस्पति-वर्ग—

वनों-उपवनों की अधिकता व्रजभूमि की उर्वराशक्ति की परिचायिका है; साथ ही इस बात की सूचक भी है कि व्रजवासियों के जीवन का विकास प्रकृति की गोद में ही होता रहा है। स्याम सलिलावती यमुना के निकटवर्ती समतल भूभाग और गिरिगोवर्द्धन के पर्वतीय प्रदेश में, सभी प्रकार के उपयोगी पेड़-पौधे उपजाने की क्षमता रही है। यही भूभाग श्रीकृष्ण की बाल और किशोर लीला-भूमि है और यहीं प्रतिदिन गोचारण करते-करते श्रीकृष्ण और उनके सखाओं ने घने वनों और दुर्गम प्रदेशों की खोज की थी।

पेड़-पौधों के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द अष्टछाप-काव्य में व्यवहृत हुए हैं: जैसे तरु, द्रुम, बिटप, ब्रच्छ आदि। अष्टछापी - कवियों ने व्रज की उर्वरा-भूमि में उगनेवाले जिन पेड़-पौधों के नाम गिनाये हैं, स्थूल रूप से, उनके तीन वर्ग किये जा सकते हैं—अ. पुष्पों के वृक्ष, आ. फलों के वृक्ष और इ. अन्य वृक्ष।

(अ) पुष्पों के वृक्ष—पुष्पों के वृक्षों में अशोक, कदंब, करबीर, कुंद, कोविद, टेसू, ढाक, तमाल, नीप, बकुल आदि का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। इनमें से 'करबीर', 'कुंद', 'टेसू' और 'बकुल' की चर्चा 'पुष्प' शीर्षक के अन्तर्गत आगे की जायगी क्योंकि उनके पुष्पों का विवरण अधिक विस्तार से दिया गया है; शेष के संबंध में अष्टछापी-कवियों के विचार नीचे दिये जाते हैं।

'अशोक' वृक्ष का उल्लेख नन्ददास-कृत 'दशम स्कंध' की यज्ञपत्नी-कथा और 'सूरसागर' के 'नवम स्कंध' में मिलता है। चीर-हरण-लीला में कालिंदीतीर के 'कदम' या 'कदंब' वृक्ष का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है। कृष्ण की विरहिणी गोपियाँ 'कोविद' को फूला देखकर कृष्ण की याद करती हैं। ढाक वृक्ष के नीचे कृष्ण के छाक खाने की बात परमानन्ददास ने कही है। 'मणि-मरकत' जैसे पत्तों वाले 'तमाल' वृक्षों की अधिकता यमुना के किनारे बतायी गयी है। कृष्ण के स्याम रंग के उपमान-रूप में भी 'तमाल' की चर्चा इन कवियों ने की है।

(आ) फलों के वृक्ष—आम, कदली, गूलर, गोखरू, जंबू या जामुन, धतूरा, नारिकेल, निंब, पीपर, पनस, बदरी, बट, भांडीर आदि फलों के वृक्षों का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से आम, जामुन,

नारिकेल और निंब की चर्चा 'फल और मेवे' शीर्षक के अन्तर्गत आगे की जायगी। शेष वृक्षों में 'कदली' की ओट में जल-विहार के पश्चात् गोपियों के अंचल निचोड़ने का वर्णन सूर ने किया है। 'कदली' अथवा 'कदली-खंभ' की उपमा स्त्री की 'जंघा' से दी गयी है। 'कदली' के पर्यायवाची 'रम्भा' शब्द का प्रयोग भी 'जंघा' के उपमान-रूप में हुआ है। राधा की 'जाँघों' की उपमा मरकत-मनि 'रंभा' से सूर ने दी है। 'गूलर' के फल में सैकड़ों जीवों की उपस्थिति की बात 'सूरसागर' के 'ब्रह्मा-वत्स-हरण' प्रसंग में स्वयं ब्रह्मा ने कही है। 'गूलर' के फल की रसहीनता की बात गोपियाँ उद्धव से कहती हैं।

'गोखरू' चने के आकार का छोटा-सा कँटीला फल है। इसका उल्लेख कुंभनदास के काव्य में हुआ है। 'बदरी' वृक्ष की चर्चा उन वृक्षों के साथ की गयी है जिनसे 'सूरसागर' में विरहिणी गोपियाँ प्रियतम कृष्ण का पता पूछती हैं।

(ग) अन्य वृक्ष—इस वर्ग के अन्तर्गत आक, चंदन, ताल, धतूरा, नीम, पीपर, बट, बबुर, बाँस, मंदार, मालूर, सेमर आदि वृक्ष आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों ने यत्र-तत्र किया है।

'आक' को 'मदार' भी कहते हैं। इसका फल जब चिटकता है तो उसके बीज, जिनके चारों ओर रुई के रेशे जैसे छोटे-छोटे रोयें उगे होते हैं, निकल निकल कर वायु में उड़ने लगते हैं। 'आक' के बीज बड़े हल्के होते हैं। इसीलिए सूरदास ने उपमान के रूप में इसका प्रयोग किया है और कहा है कि 'वह' (गोपिका) नेत्रों का अनुसरण करती हुई इस प्रकार चारों ओर दौड़ती फिरती है, जैसे 'आक' के बीज फूटने पर 'आकरुई' के बुड्डे वायु में लहरते हैं।

'चंदन' का वृक्ष भारत में अत्यंत पवित्र माना जाता है। इसकी लकड़ी अति सुगंधित होती है। इसे घिस कर जो लेप तैयार किया जाता है, वह देवताओं पर चढ़ाया जाता है। यह लेप शीतलता प्रदान करता है। अत: ताप-निवारण के लिए लोग इसे शरीर पर लगाते हैं। धार्मिक कृत्यों और मृतक-संस्कार के अवसर पर भी चंदन की आवश्यकता पड़ती है। अष्टछाप-काव्य में परमानंददास ने अक्षय तृतीया के दिन स्त्रियों द्वारा 'चंदन' की पूजा का उल्लेख किया है। सूरदास ने 'चंदन', अगर, घृत आदि सुगंधित पदार्थों की सहायता से 'चिता' तैयार करने की बात कही

है। चंदन जैसी पवित्र और बहुमूल्य लकड़ी को, चूल्हे में जलनेवाले ईंधन के रूप में प्रयोग करने की मूर्खता की ओर भी परमानंददास ने संकेत किया है।

'ताल' का वृक्ष नारियल से मिलता-जुलता होता है। इसे 'ताड़' भी कहते हैं। व्रजभूमि में यमुना-तट पर यह वृक्ष पाया जाता है। इसका उल्लेख कहीं-कहीं 'नरकुल' नाम से भी किया जाता है। सूरदास ने कृष्ण तथा अन्य ग्वालबालों का 'तालवृक्षों' के वन में जाने का उल्लेख किया है।

'धतूरे' के पौधे में काँटेदार फल लगते हैं और इसके बीज विषैले होते हैं, जिन्हें कुछ लोग गहरा नशा लाने के उद्देश्य से 'भाँग' के साथ घोटकर पीते हैं। इसका फल महादेव जी पर चढ़ाया जाता है। सूरदास ने धतूरे के मादक प्रभाव का उपमान के रूप में वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की प्रीति में पगी गोपी इस प्रकार 'पागल' सी घूमती है जैसे उसने 'धतूरा' खा लिया हो।

'नीम' का वृक्ष भारत में सर्वत्र पाया जाता है। औषधि के रूप में यह गुणकारी है; परंतु इसकी पत्ती, छाल और इसके फल का स्वाद 'कटु' और अप्रिय होता है। इसीलिए अप्रिय स्वादवाली वस्तुओं के उपमान-रूप में 'नीम' का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है। नंददास ने व्रज के वृक्षों में 'नीम' को भी गिनाया है।

'पीपर' अथवा 'पीपल' का वृक्ष हिंदुओं के लिए पूज्य माना जाता है। सूरदास ने उत्पात - शांति के हेतु 'पीपल' की पूजा का उल्लेख किया है। 'बट-वृक्ष' भी पवित्र और पूज्य है। सूरदास ने व्रजभूमि के प्रमुख वृक्षों में इसकी गिनती की है। उन्होंने इसको स्त्रियों द्वारा वंदनीय ठहराया है।

'बबुर' या 'बबूल' का वृक्ष काँटेदार होता है। इसमें छाया नहीं होती और न इसके फल ही खाने योग्य होते हैं। इस वृक्ष का आदर नहीं होता। यह कष्ट और पीड़ा का प्रतीक है। दुष्कर्म करके अच्छे परिणाम की आशा नहीं की जा सकती। सूरदास ने इस तथ्य को 'बबूल' के उदाहरण से स्पष्ट किया है।

'बाँस' का वृक्ष भीतर से पोला होता है। इसका प्रयोग छप्पर छाने में होता है। इससे बाँसुरी या मुरली जैसे वाद्ययंत्र तैयार होते हैं। कृष्ण को मुरली अत्यंत प्रिय थी। अतः अष्टछापी कवियों ने मुरली

संबंधी पदों में 'बाँस' के वृक्ष की चर्चा की है। वनों में जब आग लगती है, तो 'बाँस' बड़ी जोर से चिटकता है। नंददास ने दावानल-प्रसंग में 'बाँस' वृक्षों के चिटकने का वर्णन किया है।

'मंदार' वृक्ष अपने परागपूर्ण पुष्पों के लिए विख्यात है। पराग के लोभ में भौंरे उस पर मँडराते हैं। कुंभनदास ने हिंडोरा-वर्णन में फूले हुए 'मंदार' वृक्ष पर भौंरों के गूँजने का वर्णन किया है। गोविंदस्वामी ने भी मधुलोभी भ्रमरों के 'मंदार' पर मँडराने की बात कही है। 'मालूर' वृक्ष के पत्रों का शिवपूजा में प्रयोग किया जाता है। सूरदास ने गोपियों द्वारा शिव पर 'मालूर' के पत्रों के चढ़ाये जाने का उल्लेख किया है। 'सेमर' के वृक्ष में फल लगते हैं, परन्तु वे खाने योग्य नहीं होते; क्योंकि उनमे रस-गूदे के स्थान पर रुई निकलती है। पक्षी उसके फल को रसमय समझ कर चोंच से प्रहार करता है, परन्तु उसे केवल पछताना पड़ता है।

(घ) *झाड़-लता आदि* - इस वर्ग के अंतर्गत करील, काँस, सर, कुस, जवासा, गुंजा, तुलसी, लवंगलता आदि झाड़ और लताएँ आती हैं।

'करील' की झाँड़ियाँ व्रजप्रदेश में अधिकता से पायी जाती हैं। कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में अष्टछापी कवियों ने करील का उल्लेख विभिन्न प्रकार से किया है। करील में पत्ते नहीं होते, केवल 'टेंटी' नामक फल इसमें लगता है। सूर के अनुसार यह फल कसैला होता है। 'काँस' झुंडदार घास होती है। सूरदास ने 'काँस' के कुँवार मास में फूलने की बात कही है। वर्षांत में 'काँस' में फूल लगते हैं। इस संबंध में एक लोकोक्ति भी है—फूले काँस, गयी वर्षा की आस। नंददास ने दावानल-प्रसंग में 'काँस' के चिटकने का वर्णन किया है। 'सर' या 'सरपत' के पत्तों से छप्पर छाये जाते हैं। इसके डंठल से लेखनी बनाने का निर्देश सूर ने किया है। 'कुस' एक प्रकार की घास है जो पवित्र मानी जाती है और पूजा आदि में इसका उपयोग किया जाता है। सूर ने दावानल-प्रसंग में अन्य वृक्षों के साथ 'कुस' के जलने का भी उल्लेख किया है। 'जवासा' एक छोटा सा जंगली पौधा होता है। वर्षा ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं और गर्मी में यह फूलता है। सूरदास ने 'जवास' का उल्लेख उद्धव-गोपी-संवाद में किया है।

'तुलसी' एक घना झाड़दार पौधा होता है। भक्तजन को यह अत्यंत प्रिय है। स्त्रियाँ कई पर्वों में इसकी पूजा करती हैं। तुलसी के

पौधे की सूखी डालों को टुकड़े-टुकड़े करके उनकी माला बनायी जाती है और साधु-संत उसे धारण करते हैं। परमानंददास ने 'तुलसी-माल' के धारण किये जाने का उल्लेख किया है। कहीं-कहीं तुलसी के पत्तों की माला बनाकर पहनने का भी चलन है। यह माला मणि-माला के तुल्य बतायी गयी है। सूर ने 'तुलसी की माला' से कृष्ण के सौन्दर्य में वृद्धि होने की बात कही है। तुलसी की पत्ती को कानों में लटका कर भक्तजन अपना शृंगार करते हैं। तुलसी की 'पत्ती' चरणामृत के साथ दी जाती है और इसे प्रसाद के रूप में भी बाँटते हैं। इसे 'तुलसीदल' कहते हैं। भक्तों की दृष्टि में थोड़ा-सा 'तुलसीदल' चढ़ाने से ही भगवान प्रसन्न हो जाते हैं।

'संजीवनी' एक प्रकार की बूटी होती है, जिसमें मृत व्यक्ति को फिर से जिला देने का गुण बताया गया है। राम-कथा में हनुमान द्वारा 'संजीवनी बूटी' लाये जाने का वर्णन सूरदास ने किया है।

'लता' के लिए 'अष्टछाप-काव्य' में बेल, बेली, बल्ली आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। लताओं में कुंदलता, राजबेलि, राजबल्ली और लवंग लता प्रमुख हैं। 'राजबल्ली' का वर्णन अष्टछाप-काव्य में स्वतंत्र रूप से नहीं मिलता। नंददास ने 'मानमंजरी' में 'राजबल्ली' के कई नाम गिनाये हैं।

'लवंग लता' लौंग की बेल को कहते हैं। सूरदास ने अन्य पुष्प-वृक्षों के साथ 'लवंग लता' के फूलने का वर्णन किया है। लवंग की लता देखने में सलोनी तो होती ही है, साथ-साथ गोविंदस्वामी के अनुसार यह अति सुगंधदायिनी भी होती है। 'गुंजा' या 'घुँघुची' की भी लता होती है। इसमें लाल दाने निकलते हैं जिनका मुँह काला होता है। इनकी मालाएँ बनाकर पहनी जाती हैं। अष्टछापी कवियों ने भी 'गुंजाहार' या 'घुँघुचिनि की माल' का उल्लेख किया है; क्योंकि यह श्रीकृष्ण की प्रिय वस्तुओं में है। एक पद में तो परमानंददास ने कामना की है कि मुझे 'गुंजाबन-बेली' के रूप में ही जन्म क्यों न मिला जिससे मैं श्रीकृष्ण को प्रिय लगता। 'घुँघुची' का प्रयोग तौलने के लिए भी होता है। परमानंददास ने 'सोने' या स्वर्ण के साथ 'घुँघुची' के भी तौले जाने की बात लिखी है।

(ङ) पौराणिक वृक्ष—भारतीय पौराणिक कथाओं में 'कल्पवृक्ष'

और 'पारि - जात'के वृक्षों का उल्लेख हुआ है। 'कल्पवृक्ष' मनुष्य को उसकी इच्छानुकूल फल प्रदान करता है। इसलिए वह पूज्य है। 'कल्प-तरु' को पाने की इच्छा सभी करते हैं और सत्यभामा भी पति श्रीकृष्ण से इस वृक्ष के दर्शन कराने की प्रार्थना करती हैं। परमानंददास ने बताया है कि 'कामधेनु' और 'कल्पवृक्ष' से मनोवांछित फल प्राप्त हो सकता है।

समुद्र-मंथन से प्राप्त होनेवाले रत्नों में 'पारिजात' भी था जो देवताओं के राजा इंद्र को दे दिया गया था। सूरदास ने हिंडोला-वर्णन में 'पारिजातक' की डंडी का उल्लेख किया है।

(च) *वृक्षों का उपमान या प्रतीक-रूप में उल्लेख*—अष्टछापी कवियों ने पेड़-पौधों के केवल नाम गिना कर ही संतोष नहीं कर लिया, प्रत्युत उन्होंने मानव-जीवन की गति का सूक्ष्म अध्ययन करके अनेक स्थलों पर ऐसे तथ्यों का संग्रह किया है जिनकी सत्यता मन को मुग्ध कर लेती है। ऐसे स्थलों पर वृक्षों का तथ्यात्मक उल्लेख मात्र न करके उपमानों के रूप में उनकी चर्चा द्वारा जीवन के गहन तथा गूढ़ दर्शन को स्पष्ट किया गया है। उदाहरण के लिए सूर ने एक पद में राम-नाम के दो अक्षरों की 'धर्म रूपी वृक्षांकुर के दो दल' से उपमा दी है; दूसरे पद में उन्होंने संसार को 'द्रुम-डरिया' कहा है; तीसरे में तन को 'तरुवर' बताया है और चौथे में उन्होने मलय-वृक्ष की उदारता को आदर्श माना है, क्योंकि वह अपने काटनेवाले कुठार को भी सुगंधित करता है। इसी प्रकार अष्टछापी कवियों ने उलझी हुई 'सिवार' में सांसारिक बंधन, माया की जंजीरों और मोह - ममता की जकड़न का प्रतिबिंब पाया है। उनके लिए 'सेमर' संसार के झूठे आकर्षण का प्रतीक है। इसी प्रकार 'बबूल' का वृक्ष 'बुरे कर्म का बुरा फल' के सिद्धान्त का और 'आम' का वृक्ष शुभ कर्मों के सुफल का प्रतीक कहा गया है।

(छ) *फल*—अष्टछाप-काव्य में व्रज में उत्पन्न होनेवाले फलों की चर्चा तो है ही, 'खूबानी', 'सेव' आदि उन फलों का भी उल्लेख हुआ है जो दूसरे प्रदेशों में उपजते हैं। स्थूल रूप से उन कवियों द्वारा उल्लिखित फलों को चार वर्गों में रखा जा सकता है—मीठे फल, खट्टे फल, अन्य फल और सूखे फल या मेवा। स्वयं सूरदास ने अशोकवाटिका-प्रसंग में 'मृदुल, मीठे और खट्टे' फलों की चर्चा की है; सूखे फलों का वर्णन करने का वहाँ अवकाश ही नहीं था। अतएव उन सब की चर्चा अष्टछापी कवियों ने अपने आराध्य के भोजन-प्रसंग में ही प्रमुख रूप से की है।

(अ) मीठे फल—इस वर्ग के अंतर्गत अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित जो फल विशेष रूप से आते हैं, वे हैं—आम, अनार, ऊख, केला, खरबूजा, खूबानी, तरबूज, बेर, मेव, श्रीफल, सफरी आदि।

'अंब', 'अँबुआ', 'रसाल' आदि नामों से प्रसिद्ध 'आम' भारत का प्रमुख फल माना जाता है। बर्नियर ने भारतीय फलों में 'आम' की बड़ी प्रशंसा की है। 'आम' प्राचीन काल से ही भारत में पैदा होता रहा है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में फलों के अन्तर्गत उसका उल्लेख है। सूर ने कृष्ण को दिये जाने वाले 'कलेऊ' के फलों की लंबी सूची में 'आम' का नाम सम्मिलित किया है। परमानंददास के कृष्ण को 'आम' इतना प्रिय है कि आम बेचनेवाली की आवाज सुनकर वे माता यशोदा से 'आम' दिला देने का हठ करते हैं। पका आम तो मीठा तथा स्वादिष्ट होता ही है, कच्चे आम से भी अत्यंत स्वादिष्ट अचार तैयार किये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। सूर ने कृष्ण के भोजन में 'आम के अचार' का भी वर्णन किया है। बसंत के दिनों में 'अँबुआ' के वृक्ष में 'बौर' आने तथा उनकी सुगंध एवं उनके पराग पर लुब्ध भ्रमरों के मँडराने की बात सूरदास ने कही है। 'आम' अथवा 'अंब' को सूर ने 'सुफल' कहा है जिसे छोड़ कर 'सेमर' का फल कौन पसंद करेगा ?

'अनार' या 'दाड़िम' के फल के भीतर लाल, सफेद या गुलाबी रंग के दाने होते हैं। यह फल मीठा और खट्टा, दोनों तरह का होता है; पर मीठा फल ही अधिक रुचि से खाया जाता है। परमानंददास ने एक पद में 'अनार' का उल्लेख किया है। 'ऊख', 'ईख', 'गन्ना', 'गाँड़ा' आदि नाम से बताया जानेवाला पौधा भारत में प्रायः सर्वत्र होता है। इसके तने में ही 'रस' होता है जिसे कुचल कर 'रस' निकाला जाता है। इसे 'ऊख' या 'गन्ने का रस' कहते हैं। यह पेय अति प्रिय माना गया है। 'ऊख रस' से 'गुड़' और 'शकर' तैयार होती है। इसकी खेती भारत में प्राचीन काल से होती आयी है। पाणिनि और बाणभट्ट ने 'इक्षु-वन' का वर्णन किया है। 'ऊख' के तने को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर चूसा जाता है; इन्हें 'गँडेरी' कहते हैं। सूर के एक पद में हाथी को गन्ना प्रिय होने की बात का उल्लेख है। कृष्ण को 'ऊख का रस' प्रिय था और उनके 'कलेवे' में अन्य फलों के साथ इसे भी सम्मिलित किये जाने की बात सूरदास ने लिखी है।

'केला' या 'कदली' का फल अत्यंत मधुर और स्वादिष्ट होता

है। यह पवित्र भी माना जाता है। कृष्ण के 'कलेवे' में इसको भी स्थान मिलने की बात सभी कवियों ने लिखी है। आज भी भगवान के भोग में 'केला' ही उन्हें सबसे अधिक प्रिय माना जाता है। 'खरबूजा' भी एक लोक-प्रिय फल है। कृष्ण के कलेवे में 'खरबूजा' छील-काटकर धरे जाने की बात सूरदास ने लिखी है। ताजे फलों के अंतर्गत 'खुबानी' का भी नाम अष्टछाप-काव्य में आया है। अकबर के समय में अपने रंग के कारण यह 'जर्द आलू' कहलाता था। सूरदास ने 'अरुण- खुबानी' का उल्लेख किया है। तरबूज की चर्चा भी इसी प्रसंग में की गयी है।

उक्त फलों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में बेर, सेव, श्रीफल, सफरी या अमरूद आदि का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। इन फलों की चर्चा के संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें से 'अनार' या 'दाड़िम' और 'श्रीफल' का उल्लेख भोज्य पदार्थों के साथ अष्टछापी कवियों ने न करके क्रमशः दाँतों और उरोजों के उपमान-रूप में अधिक किया है।

(आ) खट्टे फल—अष्टछाप-काव्य में कुछ खट्टे फलों का भी उल्लेख हुआ है जो प्रायः अचार बनाने के काम आते हैं। इनका उल्लेख तरकारियों के साथ अधिक हुआ है। इनमें 'इमली', 'आँवला', 'करवँदा', 'करौंदनि' या 'करौंदा', 'निबुआ', 'निबुआनि' या 'नीबू' प्रमुख हैं। 'इमली' का स्वाद खट्टा और मीठा मिला हुआ होता है। सूरदास की सम्मति में इसके आगे 'पटरस' भी मात हैं। 'आँवले' का अचार बड़ी विधि से तैयार किया जाता था। उसमें हींग, हल्दी, मिर्च, तेल, अदरख आदि मिलाये जाने की बात सूर ने लिखी है। 'करौंदे' का अचार भी यत्न से तैयार होता है, जिसे कृष्ण चाव से खाते थे। 'नीबू' तो अपने गुणों के लिए प्रसिद्ध ही है। इसका अचार भी तैयार होता है जो कृष्ण को अत्यंत रुचिकर बताया गया है।

(इ) अन्य फल—इस वर्ग में ककड़ी, खीरा, सिंघाड़ा, पेठा, कंद-मूल आदि रखे जा सकते हैं जो या तो फाके होते हैं या जिनको पकाकर खाया जाता है। 'ककड़ी' पतली, मुलायम और स्वादिष्ट होती है। इसको नीबू-नमक के साथ खाते हैं। कोई-कोई ककड़ी 'कड़ई' निकल जाती है। सूरदास ने 'करुई ककरी' की चर्चा एक पद में की है। ककड़ी की जाति का दूसरा फल है 'खीरा' जिसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में कई स्थानों पर हुई है। 'सिंघाड़े' कच्चे खाये जाते हैं और सुखाकर भी। कच्चे सिंघाड़े

की तरकारी भी बनती है। 'आइने अकबरी' में 'सिंघाड़ों' का उल्लेख हुआ है। कृष्ण के कलेवे में प्रस्तुत किये गये फलों में 'सिंघाड़े' भी बताये गये हैं। 'पेठे' की 'बड़ियाँ' बनती हैं और इसका 'मुरब्बा' भी डाला जाता है। सूरदास ने कई प्रकार से 'पेठे' के बनाये जाने की बात लिखी है। 'कंदमूल' का उल्लेख परमानंददास ने किया है।

(ई) सूखे फल या मेवे—जिन सूखे फलों या मेवों की चर्चा अष्ट-छाप-काव्य में हुई है उनमें किसमिस, दाख, छुहारा, चिरौंजी, बादाम और खोपरा या 'गरी' और 'पिस्ता' प्रमुख हैं। 'किसमिस' नामक 'मेवा' अंगूर के सुखाने से तैयार होता है। अंगूर के बड़े दाने के सूखने पर वही 'दाख' या 'द्राक्षा' कहलाता है। परमानंद ने इसके लिए 'द्राच्छा' शब्द का प्रयोग किया है। श्रीकृष्ण के कलेवे में 'खारिक' या छुहारा, 'दाख', 'किसमिस', 'खोपरा' या 'गरी' के साथ-साथ 'चिरौंजी' और 'बदाम' का वर्णन भी सूरदास ने किया है। 'छुहारे' का उल्लेख भी 'दाख' के साथ 'सूरसागर' के ही एक पद में हुआ है। 'खोपड़ा' या 'खोपरा' नारिकेल या नारियल की 'गिरी' को कहते हैं। नारियल जब कच्चा और हरा होता है तो फल के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। यह मरुभूमि में और समुद्र के किनारे उत्पन्न होता है। भीतर से पोला होने के कारण यह मधुर तथा स्वादिष्ट जल से पूर्ण होता है। इसे तोड़ कर जल पी लेते हैं और इसकी कच्ची 'गिरी' खाते हैं। सूरदास ने अपने आराध्य के कलेवे में 'खोपरा' और 'पिस्ता' होने की बात लिखी है।

(उ) तरकारियाँ और साग—भोज्य पदार्थों में तरकारियों और सागों (शाक) का जो महत्व आज है, भारतवासियों को वह बहुत पहले से ज्ञात था। इस बात की पुष्टि दैनिक भोजन में इन वस्तुओं की प्रचुरता से होती है। फल और मेवों का आस्वादन अन्य दूरस्थ प्रदेशों से मँगाकर भी किया जा सकता था; परन्तु तरकारियाँ और साग तीन-चार शताब्दी पूर्व किसी प्रदेश में बाहर से मँगाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अतएव अष्टछाप-काव्य में उन्हीं तरकारियों और सागों का उल्लेख है, जो उर्वरा व्रजभूमि की देन रहे हैं।

(अ) तरकारियाँ—इस वर्ग में अष्टछापी कवियों द्वारा अपने काव्य में वर्णित ये तरकारियाँ आती हैं—अगस्त की फली या 'फरी', अदरख, अरुई या 'अरुहहिं', ककोरा, कचनार, करेला, कदुआ या कुम्हड़ा, कुनरू या कुँदरू, कचरी या कचरिया, चिर्चिडी या चिर्चिडा, खीरा, टेंटी,

ढेढ़स, परवल या 'परवर', पाकर की कली, पिंडारू, भंटा, भाँटा या बैंगन, भिंडी, मूली या 'मूरी', रतालू, सेम, सूरन आदि। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

'अगस्त' नाम का एक वृक्ष होता है जिसके फूल तरकारी बनाने के काम आते हैं। सूर ने इस फूल को 'फरी' कहा है, क्योंकि यह आकार में सेम या मटर की फली से मिलती-जुलती है। प्रायः इसे वेसन में लपेट कर तल लेते हैं। सूर का तात्पर्य इसी से है। उन्होंने इसका स्वाद अमृत के समान बताया है। 'अदरख' के पौधे की जड़ खायी जाती है। उसके छोटे-छोटे टुकड़े काट कर तरकारियों के साथ मिलाकर खाये जाते हैं। अचार और चटनी के साथ भी इसका प्रयोग होता है। सूरदास ने नींबू के साथ 'अदरख' के खाये जाने का स्वाद अच्छा बताया है।

'अरुहहि', 'अरुई' या 'अरवी' भूमि के भीतर होती है। इसकी तरकारी भी कई प्रकार से तैयार की जाती है। सूर ने इमली की खटाई के साथ 'अरुई' को बनाने का उल्लेख किया है। कटीले परवल को 'ककोरा' कहते हैं। इसकी तरकारी बड़ी स्वादिष्ट बनती है। कचनार वृक्ष का फूल तरकारी बनाने के काम आता है। सूर ने कृष्ण के भोजन में इसकी तरकारी का उल्लेख किया है।

'करेला' खाने में कड़वा होता है। इसकी भी तरकारी बना कर खायी जाती है। कड़वाहट दूर करने के लिए इसके ऊपरी भाग को छील कर उस पर नमक मलते हैं; फिर उसे घी में तल लेते हैं। सूर ने इसका उल्लेख करते हुए बताया है कि 'करेले' में नमक लगाकर तुरंत तल लेने से ये बहुत अच्छे बनते हैं। 'कदुआ' या 'कुम्हड़ा', 'सीताफल' भी कहलाता है। यह प्रत्येक ऋतु में पैदा होता है। यह आकार में काफी बड़ा होता है। इसकी तरकारी बनती है और इसे पेठे की तरह शकर में पागा भी जाता है। 'कदुआ' को शकर के साथ घी में पागे जाने का उल्लेख सूर ने किया है। एक ही खेत में धनिया, धान और 'कुम्हड़े' उत्पन्न न हो सकने की बात एक पद में सूर ने कही है। उपमान के रूप में भी 'कुम्हड़े' या 'कुष्मांड' का प्रयोग किया गया है। सूर की गोपियाँ योग के सिद्धांतों को ग्रहण करने में उसी प्रकार असमर्थ हैं जैसे बकरी के मुँह में 'कुष्मांड' नहीं समाता।

'कुनरू' परवल के आकार का होता है और बेल में लगता है। हरे 'कुनरू' की तरकारी कई प्रकार से बनती है जो खाने में स्वादिष्ट

होती है। पकने पर यह लाल रंग का हो जाता है, जिसे 'बिंबा' फल कहते हैं। 'ककोरा' के साथ 'कुनरू' की तरकारी का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। 'कचरी' या 'कचरिया' की तरकारी का उल्लेख परमानंददास और सूरदास ने किया है। यह ककड़ी की तरह की होती है। श्रीकृष्ण को यह इतनी प्रिय है कि वे नंद बाबा से स्वयं बन जाकर 'कचरिया' ढूँढ़ लाने का आग्रह करते हैं। 'चिचिंडी' या 'चिचिंडा' ककड़ी की जाति की तरकारी है; परन्तु यह लंबाई तथा मोटाई में ककड़ी से बड़ा होता है। अष्टछापी कवियों ने तरकारियों में इसका भी उल्लेख किया है। 'खीरे' की चर्चा 'फल' के अंतर्गत पीछे हो चुकी है; सूरदास ने 'खीरे' की तरकारी को इतना अच्छा बताया है कि जिसे खाने की रुचि न हो, वह भी इसे बड़ी रुचि के साथ खाता है।

'टेंटी' का फल व्रज में पायी जानेवाली करील की झाड़ी में लगता है। वहाँ के लोग इसकी तरकारी बना कर खाते हैं। सूरदास ने टेंटी को छीलकर तरकारी बनाने की बात कही है। टेंटी अथवा करील के फल का उल्लेख उद्धव-गोपी-संवाद में भी हुआ है और इसे कमल से हीन बताया गया है। 'करील के फूल' की सब्जी बनायी जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है। 'ढेढ़स' का उल्लेख टेंटी के साथ हुआ है। 'परवल' का नाम भी तरकारियों में गिनाया गया है।

'पाकर' या 'पकरिया' का वृक्ष 'गूलर' के समान होता है। इसकी कली का साग तैयार किये जाने की बात अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है। 'पिंडारू' 'सकरकंद' का ही एक प्रकार है। 'आइने अकबरी' में इसका नाम मिलता है। इसकी बेल के पत्ते पान के आकार के होते हैं। इसको जड़ खोद कर निकाल लेते हैं और उसे पका कर तरकारी बनाते हैं। सूरदास ने इसका उल्लेख किया है। 'भँटा', 'भाँटा' या 'बैंगन' की तरकारी कई तरह से बनाई जाती है; इसका बना हुआ 'भरता' भी स्वादिष्ट होता है। इसे आग में रखकर भून लेते हैं, फिर ऊपर का छिलका निकाल कर गूदे को मसल कर 'भरता' बनाते हैं। सूरदास ने 'भाँटे' के 'भरते' में खटाई मिलाने का उल्लेख किया है। परमानंददास ने कई शाकों के साथ 'बैंगन' के 'भुरते' के तैयार किये जाने की बात कही है।

'भिंडी' की तरकारी भी कई विधियों से तैयार की जाती है। भिंडी कड़ी हो जाने पर बेकार हो जाती है; मुलायम रहने पर अच्छी

बनती है। इसीलिए सूर ने कोमल भिंडी की तरकारी बनाये जाने की बात कही है। 'मूरी' या 'मूली' का उल्लेख सब्जियों में नहीं है। 'उद्धव-गोपिका-संवाद' में सूरदास ने 'मूरी' के पत्तों का उल्लेख किया है। 'मूली' की फली 'सिंगरी' के नाम से सूर ने गिनायी है। 'रतालू' देखने में सुन्दर होता है। सूर ने इसे घी या तेल में तल कर गर्म-गर्म खाने का उल्लेख किया है। परमानंददास ने भी इसका नाम लिया है।

'सेम' की लता में सेम की फली लगती है। इसकी तरकारी बनती है और इसका अचार डाला जाता है। सूर ने इसको 'छौंक' कर बनाने की बात कही है। 'सूरन' अथवा 'जिमीकंद' जमीन के भीतर उत्पन्न होता है। इसे कच्चा खाने पर मुँह में किनकिनाहट उत्पन्न हो जाती है। परमानंददास ने इसके साथ इमली की खटाई मिलाकर तरकारी बनाने का उल्लेख किया है। सूरदास ने भी 'सूरन' की चर्चा की है।

इन सबके अतिरिक्त 'लहसुन' का भी उल्लेख सूरदास ने एक पद में किया है। इसकी चर्चा साग-तरकारियों के साथ नहीं की गयी है। इसका प्रयोग वैष्णव लोग नहीं करते : संभवत: इसीलिए अष्टछाप के कवियों ने 'लहसुन' की उपेक्षा की है। यह दुर्गंधयुक्त होता है। सूर की सम्मति में कपूर की तुलना में 'लहसुन' का महत्व ठीक उसी तरह नहीं है, जैसे हंस की तुलना में काग का।

उक्त तरकारियों के अतिरिक्त अष्टछापी कवियों ने अन्य तरकारियों का भी उल्लेख किया है, जिनमें पिंडीक, फाँगी, बनकौरा, रामतोरई, सहिंजन के फूल आदि हैं।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित उक्त तरकारियों के नामों में 'कटहल' का अभाव खटकता है। यह प्राचीन काल में भी प्रचलित था। नंददास ने 'सिद्धांत पंचाध्यायी' में 'पनस' या कटहल के पेड़ का उल्लेख किया है; परन्तु अन्य कवियों ने इसका वर्णन नहीं किया है। आज भी कटहल उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में कम उत्पन्न होता है। संभवत: ब्रजप्रदेश में कम होने के कारण इसका उल्लेख नहीं हुआ है।

अ. *साग*—हरे पत्तों की बनी हुई तरकारी को 'साग' कहते हैं। इसके लिए 'शाक' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है। सूरदास ने विभिन्न प्रकार के 'सागों' का उल्लेख भोजन-प्रसंग में किया है जिनमें चौराई, चने, मरूसे, सरसों, मेथी, सोवा, पालक, पोई, लाल्हा आदि के 'साग' प्रमुख हैं।

'चौराई' एक छोटे पौधे के पत्तों का साग है। यह कई प्रकार का होता है, यथा—कटीला, हरा, लाल। कई प्रकार के पत्तों की 'चौराई' होती है। 'चौराई' को अन्य सागों के साथ मिलाकर और नींबू का रस उसमें निचोड़ कर खाने का उल्लेख हुआ है और इसे 'लाल्हा' तथा 'पोई' के साथ मिलाने की बात कही गयी है। 'चने' और 'मरुसा' के साग बनाने का भी उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार 'सरसों', 'मेथी', 'सोवा', 'पालक', 'पोई' और 'लाल्हा' आदि सागों की चर्चा सूरदास ने की है।

(ऋ) *फूल*—अष्टछाप-काव्य में साग-तरकारियों के समान मुख्यत: उन्हीं फूलों की चर्चा है, जो ब्रजप्रदेश में पैदा होते हैं। अष्टछापी कवियों की विशेषता यह है कि मथुरा, द्वारका अथवा अयोध्या के उपवनों या वाटिकाओं में उपजाये जानेवाले फूलों की चर्चा में उन्होंने इतनी रुचि नहीं ली है, जितनी ब्रज के वन-उपवनों में पैदा होनेवाले फूलों में ; अस्तु। अष्टछाप-काव्य में 'पुष्प' शब्द के लिए कई पर्यायों का प्रयोग हुआ है; जसे फूल, पुहुप, कुसुम आदि।

अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य में जिन फूलों की चर्चा विशेष रूप से की है, उनमें प्रमुख ये हैं—अतिसी, कमल, कदंब, कनिआरी, कनेल, कनीर, करना, कुमुद, कुमुदिनी, कर्निकार, केतकी, केवड़ा, कुर्बक, कूजा, गुलाब, चंपा, चमेली, जूही, टेसू, निवारी, पाटल, बंधूक, बकुल, मल्लिका, माधवी, मालती, मौलसिरी, सेवती, सेमर आदि। इन नामों में से कुछ एक दूसरे के पर्याय भी हैं ; परंतु सामान्य पाठक उनको स्वतंत्र समझता है। अतएव प्रत्येक को चर्चा स्वतंत्र रूप से करना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

'अतिसी' का फूल उन पुष्पों में है जिसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में बहुत कम हुई है। 'कमल' के लिए उसके अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में हुआ है ; यथा अरविंद, अंबुज, अंभोज, इंदीवर, कंज, सेसय, जलजात, जलरुह, जलज, पंकज, पद्म, राजीव, वारिज, सरोज आदि। कमल अनेक रंग के होते हैं। लाल रंग का कमल भारत के प्राय: सभी भागों में पाया जाता है। 'अंबुज' शब्द लाल कमल के लिए प्रयुक्त हुआ है। श्वेत कमल या 'पुंडरीक' काशी के आस-पास तथा नील कमल अथवा 'इंदीवर' या 'राजीव' तिब्बत और चीन में होता है। पीला फूल अमरीका और जर्मनी में भी होता है।

भारतीय संस्कृति में 'कमल' अपनी कमनीयता और कोमलता

के कारण बहुत मान पाता रहा है और भारतीय ललित कलाओं में भी उसे स्थान मिला है। काव्य में 'कमल' का प्रयोग मुख, नेत्र, हाथ, पैर आदि शरीरांगों के उपमान-रूप में हुआ है। अष्टछापी कवियों ने भी 'कमल' का उल्लेख मुख्यत: इसी रूप में किया है। सूरदास ने राधा के कोमल हाथों की तुलना 'अंबुज' से और कृष्ण के पैरों की तुलना 'पदुम' से की है। मुख की तुलना भी 'सरोज' से की गयी है। साँवले रंग के कृष्ण के बड़े-बड़े नेत्र अष्टछाप-काव्य में 'बारिज' के समान बताये गये हैं।

उपमान-रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'कमल' का वर्णन और भी कई प्रकार से अष्टछाप-काव्य में हुआ है। कमल की माला कृष्ण धारण करते हैं। शुद्ध प्रकृति-वर्णन में 'जलज', 'इंदीवर', 'राजीव', 'कुसेसे', 'सुकंज' आदि का प्रयोग आलोच्य कवियों ने किया है। 'कमल' के संबंध में प्रचलित परंपरागत विश्वासों का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में मिलता है। उदाहरण के लिए सूर्य के उदय होने पर 'जलजात' के खिलने, 'जलरुह' का चंद्रमा से बैर होने, रात में कमल के मुँदने पर 'अलि' तथा 'अरबिंद' का मिलन होने की बात उन कवियों ने लिखी है। 'कमल' पर अलिगण की भीड़ का उल्लेख छीतस्वामी ने किया है। 'कंज' अथवा 'कमल' के आसन की बात भी अष्टछाप-काव्य में कही गयी है।

'कदंब' ब्रजप्रदेश का मुख्य फूल है जिसकी चर्चा प्रकृति-वर्णन-प्रसंग में की गयी है। 'कनिआरी' भी प्रमुख फूलों में है। 'कुंद' का फूल सफेद रंग का होता है और बहुत बड़ी संख्या में फूलता है। अगहन-पूस इसके फूलने का समय है। सफेद होने के कारण 'कुंद' दाँतों का उपमान भी है। 'मेघदूत' में कालिदास ने कुंद पुष्प से अलंकृत केशराशि का वर्णन किया है। 'कनेल' का पुष्प पीले अथवा लाल रंग का होता है। सूर ने प्रमुख फूलों में इसकी गणना की है। 'कनीर' और 'करना' का उल्लेख भी अन्य पुष्पों के साथ हुआ है। 'कुमुद' और 'कुमुदिनी', दोनों फूल कवियों को कमल के समान ही प्रिय रहे हैं। कृष्णदास के अनुसार कुमुद-कुमुदिनी, दोनों चंद्रमा को देखकर रात्रि में फूलते हैं।

'करनिकार' या 'कर्णिकार' का पुष्प लाल, पीले और सफेद रंग का होता है। कविप्रसिद्धि के अनुसार वह पद्मिनी स्त्रियों के नृत्य से पुष्पित होता है। कालिदास ने पार्वती के केशों में 'कर्णिकार' के गुँथे होने का वर्णन किया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार संस्कृत

का 'कर्णिकार' हिंदी का 'अमलतास' है और 'कनेर' से भिन्न फूल है। 'आइने अकबरी' में 'कर्णिकार' को जहरीला बताया गया है तथा जो इसे सर पर धारण कर लेता है वह लड़ने लगता है। 'केतकी' का फूल सफेद होता है और कुँआर में फूलता है। इसका वर्णन सूरदास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी आदि ने किया है। 'केवरा' या 'केवड़ा' बड़ी अच्छी सुगंध का फूल है। इसका इत्र तैयार किया जाता है, जो लगाने तथा खाने के काम आता है। अबुलफजल ने कपड़ों को सुगंधित करने के लिए सूखा 'केवड़ा' रखने का उल्लेख किया है। चतुर्भुजदास और सूरदास ने सुगंधित पुष्पों के साथ 'केवड़े' का वर्णन किया है।

प्रकृति-वर्णन में 'कुरबक' अथवा 'कुर्वक' पुष्प का नाम कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने लिया है। 'कूजा' का उल्लेख सूर ने किया है। 'आइने अकबरी' मे यह गुलाब के समान बताया गया है। सम्भवत: यह 'मोतिया' या 'बेले' का ही नामान्तर है। कहीं-कहीं सूरदास ने 'खूभी' पुष्प का नाम लिया है। 'गुलाब' विदेशी फूल है जो मुगलों के भारत में आने पर लोकप्रिय हो गया। अष्टछाप के कवियों ने इसका वर्णन किया है, परन्तु 'गुलाब' को उन्होंने 'कमल' अथवा 'कुमुद' जैसा महत्व नहीं दिया है। अन्य फूलों के साथ 'गुलाब' को चित्रसारी में सजाने की बात गोविंदस्वामी ने कही है। चतुर्भुजदास ने भी गुलाब का उल्लेख किया है।

'चंपक' अथवा 'चंपे' का फूल भारतीय पुष्पों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसका उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी हुआ है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार 'चंपा' पद्मिनी स्त्रियों के हास्य से पुष्पित होता है। एक दूसरी कवि-प्रसिद्धि यह है कि चंपे के फूल पर भौंरा नहीं बैठता। सूरदास ने भी भौंरे को 'चपंक' न रुचने की बात कही है। एक अन्य पद में सूरदास ने 'नासिका' की तुलना 'चंपक - कली' से की है। छीतस्वामी, परमानंददास, कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने भी पुष्प-वर्णन में चंपक का उल्लेख किया है। 'चमेलि' अथवा 'चमेली' के फूल का नाम भी अष्टछाप-काव्य में आया है। संस्कृत में इसे 'जाही' अथवा 'मालती' कहते हैं। सूरदास ने सामान्य चमेली का और परमानंददास ने पीली 'चमेली' तथा उसकी सुगधि का वर्णन किया है। 'जई' या 'जाही' का फूल सामान्यतया श्वेत रंग का होता है। अबुलफजल ने इसके तिसाला फूलने तथा बेल के पेड़ से लिपट जाने का वर्णन किया है। 'जूही' का फूल भी उपर्युक्त फूलों के साथ अष्टछाप-काव्य में वर्णित हैं।

'टेसू' का सुंदर फूल 'पलाश' वृक्ष में पैदा होता है। यह लाल रंग का होता है। जिस समय 'टेसू' फूलता है, ऐसा जान पड़ता है मानो वन में आग लगी हुई हो। सूर ने 'टेसू' के फूलों से सुशोभित वन का वर्णन किया है। 'निवारी' के फूल का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने अन्य फूलों के साथ किया है। अबुलफजल ने बताया है कि इसका फूल एक पत्ते का होता है और 'रायवेलि' से ही मिलता-जुलता है। इसमें एक साथ इतने अधिक फूल आते हैं कि पौधे ढक जाते हैं।

'पाटल', 'पाँडल' या 'पाडल' पुष्प 'गुलाब' का ही भारतीय नाम है। इसका उल्लेख सूरदास और चतुर्भुजदास के पदों में हुआ है। 'बंधूक' के फूल का उपयोग प्राय: अधरों और मसूढ़ों के उपमान-रूप में हुआ है। कालिदास ने 'बंधूक' के लिया 'जपा' शब्द का भी प्रयोग किया है। 'आइने अकबरी' में इसके लिए 'अड़हुल' नाम आया है। 'बंधूक' पुष्प माला में नहीं गूँथा जाता; क्योंकि जन-विश्वास के अनुसार, सेही के काँटें की भाँति, यह 'घर' में लड़ाई करवाता है। परमानंददास ने 'बंधूक' के लिए 'जपा' शब्द का प्रयोग किया है। 'बकुल' के फूल का नाम अष्टछाप-काव्य में अनेक बार आया है। इसके लिए 'मोलश्री', 'मोलसिरी' और 'बोलसिरी' आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यह फूल पीले रंग का और सुंगधि से परिपूर्ण होता है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार 'बकुल' स्त्रियों के कुल्ले से पुष्पित होता है। 'आइने अकबरी' में इसका नाम 'मौलश्री' दिया हुआ है। 'बेले' के फूल का उल्लेख सूरदास, चतुर्भुजदास और परमानन्ददास ने किया है। इसकी कई किस्में होती हैं, जैसे 'मोतिया', 'मोगरा', 'रायबेलि' आदि। इसीका साहित्यिक नाम 'माधवी' है। अष्टछापी कवियों ने 'माधवी' का उल्लेख अपने काव्य में बहुत उल्लास से किया है; क्योंकि उसके विकास के समय प्रकृति में भी उल्लास छा जाता है। अष्टछाप-काव्य में भी 'माधवी' नाम आया है। इसी प्रकार 'मल्लिका', 'मालती', 'मरुवौ' और 'सेवती' आदि फूलों का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से 'सेवती' का उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी है। इसका रंग सफेद और इसकी आकृति 'गुलाब' जैसी होती है।

उपर्युक्त फूलों में से अधिकांश का उल्लेख अष्टछाप के कवियों ने ऋतु-वर्णन अथवा स्त्रियों के शृंगार के प्रसंग में किया है। शैय्या के सजाने, अंगों तथा स्थानों के अलंकरण में भी फूलों का वर्णन आया है। 'सेमर' जैसे फूल के उपमान द्वारा संसार के दुरंगेपन—बाह्यरूप में आकर्षक और

अन्दर से खोखला होने—का वर्णन करके उन कवियों ने संसार की असारता प्रदर्शित की है।

आ. पत्ते—अष्टछाप-काव्य में जिन 'पत्तों' का उल्लेख हुआ है, उनमें 'तुलसी-दल' प्रमुख है। इसके संबंध में पीछे विस्तार से लिखा जा चुका है। अन्य वृक्षों या पौधों के पत्तों का अलग अलग उल्लेख नहीं है। उनका केवल सामान्य रूप से वर्णन आया है। 'पत्ता' का 'पात' के लिए 'पल्लव' और 'किसलय' शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में किया गया है। जीवन की असारता, क्षणभंगुरता और एक बार ही मिलने वाले अवसर की ओर संकेत करने में 'पत्ते' का उदाहरण ही हमारे कवियों ने उपयुक्त समझा है।

ड़. मानवेतर प्राणी—

इस वर्ग में अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित वे पशु, जलचर, कीट-पतंग, पक्षी आदि आते हैं जिनका मानव से या तो संघर्ष रहा है या जिनको वश में करके और पालतू बनाकर उसने उनको अपने लिए उपयोगी सिद्ध किया है। ध्यान देने की बात यह है कि ऋतु-वर्णन, लीला-चर्चा तथा उपमान-रूप में अष्टछाप-काव्य में अनेक ऐसे पशु-पक्षियों का भी उल्लेख मिलता है जो आज तो ब्रज में पाये ही नहीं जाते। जो हो, इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि भारतीय संस्कृति में मानव-समाज के साथ-साथ मानवेतर प्राणियों के लिए भी सदा से स्थान रहा है।

अ. पशु—अष्टछाप-काव्य में वर्णित 'पशु वर्ग' को, स्थूल रूप से, दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्रथम वर्ग में 'वन्य पशु' आते हैं और द्वितीय में पालतू पशु जिनको पुनः दो वर्गों में रखा जा सकता है—सामान्य पालतू पशु और सवारी के पशु। इन सबके संबंध में अष्ट-छापी कवियों के विचार, संक्षेप में, नीचे दिये जाते हैं।

क. वन्य पशु—वन्य पशु सामान्यतया हिंसक, मांसभक्षी और भयानक होते हैं। इनके अन्तर्गत सिंह, सूकर, स्यार और रीछ आदि पशु आ जाते हैं जिनकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है। इनके कुछ पर्याय-वाची शब्द भी उसमें प्रयुक्त हुए हैं। पशुओं में प्रमुख 'सिंह' अथवा 'केहरी' सब से अधिक शक्तिशाली माना गया है; यद्यपि उसकी शक्ति भाग्य-बल के आगे निरर्थक सिद्ध होती है। सूर ने विनय-पदों में कहा है कि सिंह

शक्तिशाली होते हुए भी भाग्यहीन होने पर कभी-कभी भूखों मर सकता है।

'सिंह' की चर्चा उपमान-रूप में भी हुई है। उसका कटि-प्रदेश सुन्दर होता है; अतः मनुष्य के सुन्दर कटि-प्रदेश की तुलना 'सिंह' के कटि-प्रदेश से की गयी है। प्राचीन उपदेशात्मक पशु-कथाओं में एक ऐसी कथा है जिसमें 'सिंह' अपनी परछाई देखकर मूर्खतावश कुएँ में कूद पड़ता है। इस प्रसंग का कहावत के रूप में सूर ने उल्लेख किया है। 'सिंह' के साथ अष्टछाप-काव्य में 'बाघ' शब्द भी आया है। 'बाघ' एक क्रूर और घातक पशु है जो 'गाय' का घोर शत्रु है। अतएव उसकी सर्वत्र निंदा की गयी है और उसको मृगादि निर्बल पशुओं को सतानेवाले 'आततायी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

'सृगाल', 'स्यार', 'सियार' अथवा 'जंबुक' की गणना हीन पशुओं में की गयी है। 'सृगाल' अथवा 'शृगाल' कायरता का प्रतीक माना गया है। यह पशु शिकारी नहीं होता और प्रायः मृत शरीर का ही मांस खाता है। मनुष्य के शरीर की अंतिम गति 'स्यार' का भक्ष्य बनना भी है, जिसकी ओर संकेत करके सूरदास ने कहा है—इस मानव शरीर पर गर्व करना अनुचित है, क्योंकि मृत्यु के बाद 'स्यार' इसको नोच-नोच कर खा जायँगे। 'वृक' भी हिंसुक पशु है जो गायों के बछड़ों को मार कर खा जाता है। परमानंददास ने 'वृक' के भय से त्रस्त व्रजवासियों के कष्टों का उल्लेख किया है।

'सूकर' या 'बाराह' 'वनैले सुअर' को कहते हैं। यों तो यह गंदा तथा घातक पशु है, परन्तु पुराणों में वर्णित विष्णु के अवतारों में 'बाराह' अवतार के होने से यह पूज्य भी है। एक ओर अष्टछाप-काव्य में इस पशु का अवतार के रूप में उल्लेख है, दूसरी ओर 'सूकर' के जीवन को अधम बताया गया है और ईश्वर-भक्ति से विमुख जनों से उसकी तुलना की गयी है। 'रीछ' का नाम 'सूरसागर' में राम-कथा के प्रसंग में आया है। प्रसिद्ध योद्धा जांबवान को रीछ ही कहा गया है जो आज के वैज्ञानिक युग में असंगत जान पड़ता है। जांबवान राम के भक्त थे। वृद्धावस्था में भी वे बड़े पराक्रमी थे। उनकी 'रीछ' सेना ने राम-राक्षस-युद्ध में भाग लिया था।

त्र. *सामान्य पालतू पशु*—अनादि काल से मनुष्य और पशुओं का निकटतम संबंध रहा है। मानवीय सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में उनका भी योग रहा है और उनकी सहायता से मनुष्य को अनेक सुख-

साधन उपलब्ध होते रहे हैं। मनुष्य अनेक पशुओं को पालता रहा है। इनको पालतू बनाने के दो कारण हैं; प्रथम, व्यावहारिक जीवन में उनकी उपादेयता और दूसरे, उनके साथ सहानुभूति करने और उनसे सहानुभूति पाने के कारण रागात्मक संबंध का होना। कुछ पशुओं का पालन उनके रूप-रंग के प्रति आकर्षण से मनोरंजन प्राप्त करने की दृष्टि से भी किया जाता है।

पशुओं में 'बंदर' एक ऐसा पशु है जो रूप और आकार में मनुष्य के अधिक निकट है। इसके लिए अष्टछाप-काव्य में 'बानर', 'कपि', 'मरकट', 'साखामृग', 'लंगूर' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस पशु के संबंध में अष्टछाप-काव्य में दो प्रकार की बातें कही गयी हैं। एक तो बानर जाति के प्रति आदर प्रकट किया गया है; क्योंकि राम-कथा में हनुमान, अंगद, सुग्रीव आदि बानरों के वीरता-पूर्ण कार्य वर्णित हैं। यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है कि राम-रावण-युद्ध में अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित करने वाले 'बानर' कौन थे। वे मनुष्य जाति के थे या पशु, इसका निर्णय करना इतिहासकारों का काम है। अष्टछाप के कवियों ने तो उन्हें 'पशु' ही स्वीकार किया है। राम-रावण-युद्ध में वे 'बानर' मनुष्यों के साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर लड़े थे। दूसरी ओर 'बानर' का उपहास भी किया गया है। यह पशु मूर्ख होता है जो अच्छी या बुरी वस्तु का भेद नहीं जानता। वह 'मणि' को नष्ट कर देता है और 'कस्तूरी' को मिट्टी में फेंक देता है। हनुमान को 'साखामृग' कह कर, उनकी प्रिय वाणी की सीता ने प्रशंसा की है। 'बानर' खेल-तमाशे का साधन भी है। उसे पाल कर प्रशिक्षित किया जाता है और 'मदारी' उसे नचाता है। सूरदास ने 'कपि' वर्ग की इस मूर्खतापूर्ण विवशता की चर्चा भी की है। 'लंगूर' भी 'बंदर' की एक किस्म है। उसका मुख काला और दुम लम्बी होती है। राम-कथा-प्रसंग में इसका भी उल्लेख हुआ है।

'मृग', 'मिरग', 'मृगा', 'मृगी', 'कुरंग', 'सारंग', 'हरिन' आदि नामों से विख्यात पशु का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मुख्यत: संगीत-प्रेम के प्रसंग में हुआ है। इस पशु को संगीत से बड़ा प्रेम होता है और अष्टछापी कवियों ने 'संगीत' सुनकर मृग के आत्मविस्मृत हो जाने की बात कही है। कृष्ण की बंशी की तान सुनकर यह पशु घास चरना भी भूल जाता है। 'मृग' की आँखों के सौन्दर्य की ओर संकेत करते हुए कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने ब्रजबालाओं को 'मृगनैनी' या 'नैन कुरंगी' आदि कहा

है। अष्टछाप-काव्य में कहीं-कहीं 'मृग' शब्द पशु मात्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। यत्र-तत्र 'कस्तूरी मृग' की अज्ञानता का उल्लेख भी किया गया है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार किसी-किसी 'मृग' की नाभि में कस्तूरी होती है, जिसकी सुगंधि से वह इतना मुग्ध हो जाता है कि उसकी खोज में बन-बन दौड़ता फिरता है यद्यपि वह उसी की नाभि में वर्तमान रहती है। इसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति अपनी आत्मा में परमात्मा का आलोक न देखकर व्यर्थ के आडंबरों में फँसकर भटकता फिरता है। सूरदास ने राम-कथा प्रसंग में मृग के रूप में सीता को धोखा देनेवाले राक्षस का उल्लेख किया है। 'कपट कुरंग' और 'मृग' के अर्थ में 'सारंग' शब्द का प्रयोग भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है। अनेकार्थी होने के कारण 'सारंग' शब्द हिंदी कवियों के विशेष प्रिय रहा है। इसके आधार पर 'श्लेष' का चमत्कार उन्होंने खूब दिखाया है। इस शब्द को लेकर मध्यकालीन कवियों ने पूरे-पूरे पद लिख डाले हैं। सूर तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने भी इसी प्रकार पद-रचना की है।

'कूकर', 'स्वान' अथवा 'कुत्ता' पालतू पशु है जो प्राय: मनुष्यों की बस्तियों में रहना पसंद करता है और घरों की जूठन पर पलता है। 'कुत्ते' में स्वामिभक्ति की भावना रहने पर भी हमारे यहाँ इसे अधम ही माना गया है; इसका जीवन भक्तिभाव-विहीन निरुद्देश्य जीवन का उपमान बन गया है। अष्टछापी कवियों ने 'कूकर' के संबंध में ऐसे ही भाव प्रकट किये हैं। भोजन के पीछे कुत्ते को 'अस्म, लकुट और पद-त्रान' के प्रहार भी सहने पड़ते हैं।

'खर' अथवा 'गर्दभ', 'गधे' के नाम हैं। यह पशु बोझा ढोने के लिए प्रयुक्त होने के कारण उपयोगी तो है, परन्तु गंदा और मूर्ख होने के कारण असम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। सूरदास ने कहा है कि कहाँ अगर का सुगंधित अनुलेप और कहाँ 'खर'! गधे की सवारी अपमानजनक है; हाथी-घोड़े की तुलना में यह कहाँ ठहरता है! होली के अवसर पर अवश्य 'गधे' की सवारी किये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

भारतीय जीवन में 'गाय' की अत्यधिक उपयोगिता रही है जिसके फल-स्वरूप हिंदू उसे 'माता' मानते आये हैं। वेदकालीन भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार गाय ही है जिससे उसका बहुत महत्व था। यज्ञों, पर्वों और धर्मोत्सवों से लेकर भोजन तथा वाणिज्य-व्यापार तक में 'गाय' सभी अनुष्ठानों और क्रियाओं का केन्द्र थी और आज भी है। अष्टछाप-काव्य में 'गाय' को लगभग उतने ही महत्व का स्थान दिया गया है। गोचारण,

कवियों के आराध्यदेव कृष्ण की लीला का प्रमुख अंग रहा है। जिन ग्वाल-बालों के बीच वे पोषित हुए थे, वे गाय को 'गोधन' मानते थे; क्योंकि उनकी जीविका का प्रमुख आधार गाय ही थी।

अष्टछाप-काव्य में 'गाय' के लिए 'गाइ', 'गैया', 'गौ', 'धेनु', 'सुरभी' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। रंगों के अनुसार भी 'गायों' के अनेक नाम लिये गये हैं, जैसे धूमरि, धौरी, काजरि, राती, रौछी, पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी, दुलही, फुलही, भौंरी, भूरी आदि। सूरदास, चतुर्भुजदास, और गोविंदस्वामी के पदों में विभिन्न रंगों की गायों का उल्लेख है। व्यावहारिक दृष्टि से 'गाय' का आदर इसीलिए है कि यह दूध देती है, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत गुणकारी होता है। बच्चों के लिए तो यह दूध अमृत के समान जीवनदायक है। सामान्य विश्वास के अनुसार सबसे बढ़िया तथा उत्तम कोटि का दूध 'श्यामा' या 'कजरी' गाय का होता है और उससे उतर कर 'कत्थई' या 'लाल' रंग की गाय का। सूरदास ने 'कजरी' के दूध पीने पर कृष्ण की बेनी बढ़ने की बात कही है। गाय का गोबर भारत की उर्वरा भूमि के लिए बहुत उपयोगी खाद माना जाता है। यह भी उसके महत्व का एक कारण है।

अष्टछाप-काव्य में, कृष्ण-जन्म के साथ ही, 'गायों' का उल्लेख प्रारंभ हो जाता है। नंद के घर पुत्र-जन्म होते ही आनन्द का सागर उमड़ पड़ता है। इस अवसर पर 'गोदान' का उल्लेख है। दान में दी जानेवाली 'गायें' बढ़िया होती थीं। सूरदास के अनुसार नंद जी ने 'गायों' के खुर, ताँबे से; पीठ, चाँदी से; और सींग, सोने से मढ़वा कर उन्हें दान में दिया था। अनिष्ट-निवारण के लिए या अनिष्ट टल जाने पर भी 'गायें' दान में दी जाती हैं। जब कृष्ण असुरों का संहार करते हैं या वे संकटों से बच जाते हैं तो 'गायों' का दान किया जाता है। 'गोदान' की यह प्रथा आगे चलकर स्थायी हो गयी और मृत्यु के समय 'गोदान' इतना आवश्यक बन गया कि उसके अभाव में मनुष्य का 'वैतरणी' पार कर सकना असंभव माना जाने लगा; अस्तु।

कृष्ण के बड़े होने पर, 'गाय' उनके जीवन का प्रमुख अंग बन जाती है। 'गोपालन' नंद जी के परिवार का मुख्य व्यवसाय था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि कृष्ण भी इस कार्य में रुचि लेने लगे। माता यशोदा उन्हें गाय चराने के लिए बन जाने से रोकती हैं, पर वे बराबर हठ करते हैं। कुछ और बड़े होने पर वे ग्वाल-बाल के साथ, 'गायों' के झुंड लेकर बन

जाते हैं और लगभग सारा दिन वहीं व्यतीत करते हैं। गायों को चराने ले जाना, वापसी के समय या उनके बहुत दूर चले जाने पर ऊँचे चढ़कर उन्हें टेर कर बुलाना, घाट पर पानी पिलाना, दूध दुहना आदि सभी बातें कृष्ण सीखते हैं। गायें भी कृष्ण से प्रेम करने लगतीं हैं। कृष्ण का मुरली-वादन तो उन्हें विशेष रूप से प्रिय है। जब वे बाँसुरी बजाते हैं तो वे तृण चरना भूल जाती हैं। वे चाहे जितनी दूर चर रही हों, कृष्ण के वंशी बजाते ही, दौड़कर निकट आ जाती हैं। कृष्ण उनके पीछे-पीछे वंशी बजाते चलते हैं। उस समय उनके साँवरे मुख पर 'गो-पद-रज' सुशोभित रहती है। इस प्रकार जब तक कृष्ण व्रजभूमि में रहते हैं, गाय उनके जीवन का प्रमुख अंग बनी रहती है।

गाय के बच्चे को 'बछड़ा' कहते हैं। इसके लिए 'गोसुत', 'गोवत्स', 'बच्छ', 'बछरू', 'बछरुवा' आदि शब्द अष्टछाप-काव्य में आये हैं। गाय की भाँति इनके प्रति भी कृष्ण का परम स्नेह आलोच्य कवियों ने बताया है।

'छेरी' या 'अजा', जिसे प्रचलित भाषा में 'बकरी' कहते हैं, दूध देनेवाली पालतू पशु है। यद्यपि इसका दूध भी स्वास्थ्य की दृष्टि से गुणकारी होता है, परन्तु भारतीय समाज में इसे वह महत्व नहीं प्राप्त है जो गाय को है। अष्टछाप-काव्य में इस पशु की चर्चा केवल सामान्य रीति से की गयी है। सामान्य जीवन में बकरी, जब गाय से हो हीन समझी जाती है तब 'कामधेनु' की तुलना में तो सूरदास स्वभावत: उसे कोई स्थान नहीं देना चाहते।

'बिलार' या 'बिलाव' की चर्चा सूरदास ने यह समझाने के लिए की है कि विषय-वासना में लिप्त व्यक्ति की स्थिति काल के सामने वैसी ही रहती है, जैसी 'बिलाव' के सामने 'मूसे' की। इसी प्रकार 'भैंसे' या 'महिष' और 'मेढ़े' की चर्चा भी सूरदास ने विषय-वासना में लिप्त जीवन की अधमता बताने के लिए की है।

'बैल', 'वृष' या 'वृषभ' भी पालतू पशु है, जो गाय से ही उत्पन्न होता है। यह मुख्य रूप से खेती का हल चलाने और बोझा ढोने के काम आता है। इन दोनों कामों के लिए उपयोगी 'बैलों' का सामान्य रूप से अधिक आदर होता है। मेले या विशेष पर्व के अवसर पर बैलों को सजाया जाता है। उनके शरीर और सींग रँगे जाते हैं। इसके विपरीत, कोल्हू में जोते जानेवाले 'बैल' का जीवन बड़ा दुखपूर्ण माना गया है। उसकी आँखें

ढक दी जाती हैं और वह कोल्हू के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। सूरदास ने भक्ति-रहित तथा माया में फँसे मनुष्य की तुलना ऐसे ही 'बैल' से की है और एक अन्य पद में 'बिराने बैल' के दयनीय जीवन का मार्मिक वर्णन किया है।

ज्ञ. सवारी के लिए उपयोगी पालतू पशु—

अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित तीन ही पशु इस वर्ग में आते हैं—घोड़ा, हाथी और ऊँट। इनमें से प्रथम दो का उल्लेख युद्ध-प्रसंग, सेना-वर्णन और आवागमन के 'साधन' के रूप में हुआ है। 'घोड़े' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'अश्व', तुरंग', 'बाजि', 'तुरी', 'ताजी' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। विवाह-प्रसंग में सूरदास ने 'घोड़े' पर बैठने तथा उसकी जड़ाऊ जीन, झूल और साज-सज्जा का वर्णन किया है। इस अवसर पर अन्य व्यक्ति भी 'घोड़े' पर चढ़कर चलते बताये गये हैं। सूर ने 'अस्व' पर सवार होकर 'मृगया' के लिए श्रीकृष्ण के जाने की चर्चा की है। 'घोड़े' या 'तुरंग' को उन कवियों ने सदैव श्रेष्ठ पशु माना है। लंबी यात्राओं के लिए द्रुतगामी 'घोड़ों' वाले रथ पर जाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है। चौगान का प्रसिद्ध खेल 'घोड़ों' पर चढ़कर खेला जाता था। चौगान-प्रसंग में सूरदास ने 'घोड़ों' की अनेक किस्मों का उल्लेख किया है, जैसे 'उबैलखा', 'कुमैत' आदि। अष्टछापी कवियों के अनुसार दौड़ में घोड़ों की प्रतियोगिता भी हुआ करती थी।

'हाथी' के लिए अष्टछाप-काव्य में गज, कुंजर, गजेन्द्र, गयंद, गजराज, मतंग आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। सवारी ले जाने वाले पशुओं में हाथी सबसे अधिक मूल्यवान होता है और प्रायः इसे राजा-महराजा लोग ही पालते हैं। भक्ति-साहित्य में 'गजेन्द्र-मोचन' की कथा प्रसिद्ध है। गज और ग्राह के युद्ध में 'गज' की आर्त पुकार सुनकर भगवान उसकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ते हैं। इस कथा के उल्लेख द्वारा सूर तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने भगवान की भक्त-वत्सलता का चित्रण किया है। पशु के रूप में 'गज'-दान की बात चतुर्भुजदास ने कही है। 'हाथी के दाँतों' का विवरण परमानंददास के पदों में आया है। हाथी का स्वभाव है कि वह नहाने के बाद अपने शरीर पर फिर धूल चढ़ा लेता है। सूरदास ने विषय-रत मनुष्यों के स्वभाव की तुलना हाथी की इस प्रकृति से की है। मस्त हाथी की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में उपमान-रूप में की गयी है। मस्त हाथी 'महावत' के वश में नहीं रहता। उस पर लोहे के नुकीले 'अंकुश' से बार पर बार किये

जाते हैं, परन्तु वह नियंत्रण में नहीं आता। ऐसे हाथी से 'महावत' भी भयभीत रहता है। 'सिंह' और मस्त हाथी की शत्रुता का भी उल्लेख आलोच्य कवियों ने किया है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार मस्त हाथी के गंडस्थल से एक रस प्रवाहित होता रहता है। ऐसे गंडमद से सुशोभित काले हाथी का वर्णन सूर के काव्य में हुआ है।

'ऊँट' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में घोड़े और हाथी की तुलना में बहुत कम की गयी है। सूरदास के एक पद में भारवाही पशु वृष और भैंस के साथ 'ऊँट' का भी उल्लेख हुआ है जिसमें उसके जीवन को दुखपूर्ण होने की ओर ही संकेत है। बोझ ढोनेवाला अन्य पशु है 'गर्दभ' जिस पर सवारी करना, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, अच्छा नहीं समझा जाता।

आ. जलचर—जल में रहनेवाले अनेक प्रकार के जीव होते हैं जिनमें से कच्छप, मगर, नक्र, ग्राह, दादुर, मच्छ, मीन आदि की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। उनके काव्य में इन जलचरों का उल्लेख मुख्यत: उदाहरण-रूप में ही हुआ है।

'कच्छ' या 'कच्छप' के लिए 'कमठ', 'कूर्म' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में हुआ है। इसका उल्लेख विष्णु के अवतारों के प्रसंग में भी मिलता है। सूर ने 'कमठ' या 'कच्छप'-अवतार का वर्णन किया है।

'मकर', 'मगर', 'नक्र', 'ग्राह' आदि नामों से प्रसिद्ध भयानक जीव जल में रहकर अन्य जलचरों और थलचरों का शिकार किया करता है। पुराणों में वर्णित 'गज और ग्राह' की कथा प्रसिद्ध है जिसमें गज के पुकारने पर भगवान ने दौड़कर चक्र से 'ग्राह' को मार डाला था। अष्टछाप-काव्य में, भगवान की इस भक्तवत्सलता-वर्णन में 'ग्राह' का उल्लेख हुआ है। किसी-किसी कवि ने 'ग्राह' का स्मरण उपमान-रूप में भी किया है। सूरदास ने कामदेव को 'ग्राह' के समान माना है, जो मनुष्य को माया के जल में खींच कर ले जाता है और मार डालता है। अन्य स्थलों पर भी 'मगर' का उल्लेख हुआ है। कृष्ण के 'मकराकृत' कुंडलों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में अनेक बार हुआ है।

'दादुर' या मेढक जल में रहनेवाला जीव है। यह वर्षा ऋतु में निरंतर बोलता रहता है। वर्षा-वर्णन में अष्टछाप के कवियों ने इसका उल्लेख किया है। इसकी चर्चा उपमान-रूप में भी की गयी है।

'मच्छ', 'मछली', 'मीन', 'मत्स्य' आदि एक ही जीव के अनेक

नाम हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में विविध प्रसंगों में हुआ है। भगवान के अवतारों में 'मत्स्य' के अवतार का वर्णन सूरदास ने किया है। मछली को उपमान भी माना गया है। 'मीन' या 'मछली' पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती। इसलिए उसका आदर्श प्रेम कवियों को खूब भाया है। मछलियों में एक तिमिंगल नाम की मछली होती है, जो आकार में बहुत बड़ी होती है और अन्य मछलियों को उदरस्थ कर जाती है। इस तथ्य का उल्लेख नंददास ने किया है।

३. कीट-पतंग—

अष्टछाप-काव्य में जिन कीट-पतंगों का उल्लेख हुआ है, मुख्यतः उनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में भूमि पर रेंगनेवाले कीड़े आते हैं और द्वितीय में उड़नेवाले पतंगे।

क. कीट—

इस वर्ग में साँप, गिरगिट, पिपीलिका आदि वे कीट आते हैं जो भूमि पर रेंगकर या उससे सटकर चलते हैं।

'साँप' के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है, यथा—अजगर, अहि, उरग, नाग, पन्नग, फनिग, ब्याल, भुअंग, भुजंगम आदि। यों तो सभी सर्प भयानक होते हैं, परन्तु अजगर भीमकाय होने के कारण बड़ा भयंकर होता है। भारी होने के कारण वह चल नहीं पाता; एक स्थान पर ही पड़ा रहता है और अपनी साँस से शिकार को निकट खींच कर निगल जाता है। इस प्रकार बिना उद्यम किये ही 'अजगर' के 'उदर भरने' की बात सूरदास ने लिखी है और तर्क-रूप में यह कहा है कि भगवान के सहारे रहने पर प्राणी की सारी आवश्यकताएँ अपने आप पूरी हो जाती हैं। 'काला सर्प' बड़ा विषैला होता है जिससे कभी-कभी 'कृष्ण' की तुलना की गयी है। साँप के काटने पर 'गुर्नी' अर्थात् विष झाड़नेवाले को बुलाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में मिलती है। 'नागिनि' तो सामान्यतया और भी विषैली होती है। सूर ने रात्रि की उपमा 'नागिनि' से दी है। रात्रि यदि चाँदनी है तो जान पड़ता है कि नागिनि 'डसकर' उलटी हो गयी है। ऐसी नागिनि का विष जंत्र-मंत्र से भी नहीं उतरता। किसी-किसी अष्टछापी कवि ने 'काल' को भी 'ब्याल' कहा है। मलय या चंदन वृक्ष में 'नागों' के लिपटे रहने का उल्लेख सूर ने किया है। 'साँप' की ऊपरी खाल 'केंचुल' कहलाती है

जिसको वह छोड़ देता है, इस तथ्य की ओर भी अष्टछाप-काव्य में संकेत किया गया है। कुछ 'साँपों' के पास 'मणि' होने की कल्पना कवियों ने की है। सर्प इस मणि को प्राणों से अधिक चाहता है। यदि मणि खो जाय या छिन जाय तो वह निराश होकर अपना जीवन नष्ट कर डालता है। इसलिए इसे वह अपने 'फन' के नीचे छिपाये रखता है। कवियों ने प्रिय और बहुमूल्य वस्तुओं की तुलना सर्प की 'मणि' से की है। सूरदास को भगवान कृष्ण की बाल-लीला, उसी प्रकार 'प्रिय' है जैसे 'फनिग' को अपनी 'मणि'। अष्टछाप-काव्य में वेणी की तुलना 'नागिनि' से की गयी है। सूरदास के अनुसार, राधा की 'वेणी' से 'ब्याल' होड़ न ले पाते थे, परन्तु जब वे कृष्ण-वियोग में मूर्छित हो गयीं तो ये गर्व और हर्ष के साथ 'बिलों' से बाहर निकल आये।

अष्टछापी कवियों ने 'साँप' का उल्लेख 'काली' नाग के नाथे जाने के प्रसंग में भी किया है। सूरदास के अनुसार कृष्ण ने उसको 'नाथ' कर, उसके फन पर पैर रख कर, उसका गर्व चूर करके उसे 'उरगदीप' भेज दिया। अष्टछापी कवियों ने एक ऐसे साँप का भी उल्लेख किया है जो पानी में रहता है; उसे 'गुदरारों' कहते हैं। 'साँप' के साथ-साथ 'छछूँदर' का भी उल्लेख हुआ है। कहते हैं कि साँप जब भूल से 'छछूँदर' को पकड़ लेता है, तब न उसे छोड़ सकता है और न खा सकता है। सूरदास ने 'उरग' की ऐसी ही स्थिति की ओर एक पद में संकेत किया है।

रेंगनेवाले एक अन्य जीव, 'गिरगिट' की चर्चा शापग्रस्त राजा नृग के प्रसंग में की गयी है। रेंगने या भूमि पर चलने वाले क्षुद्र 'कीटों' के लिए अष्टछापी कवियों ने 'कीट' शब्द का प्रयोग किया है।

'पिपीलिका' या 'चींटी' की गणना भी रेंगनेवाले 'कीट'-वर्ग में करना उचित प्रतीत होता है। 'पिपीलिका' प्रसिद्ध ज्ञात कीटों में क्षुद्रकाय है और 'हाथी' विशालकाय। अतएव 'चींटी' से 'हाथी' तक कह देने से अष्टछापी कवियों का तात्पर्य समस्त चेतन जगत से रहा है।

ख. पतंग—

इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाले जिन जीवों की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है उनमें मुख्य ये हैं—पतिंगा, भौंरा, झिल्ली या झींगुर, मधुमक्खी आदि।

'पतिंगे' से तात्पर्य उड़नेवाले उन छोटे जंतुओं से है जो दीप-शिखा की ओर आकर्षित होकर दौड़ते हैं और उसी में जलकर भस्म हो जाते हैं। सूर आदि कवियों ने इस तथ्य को त्यागप्रधान तथा अनन्य प्रेम के समर्थन में उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया है।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित कीट-पतिंगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान 'भौंरे' को प्राप्त है। इसके अनेक नाम कवियों द्वारा व्यवहृत हुए हैं; यथा अलि, चंचरीक, छपद, भ्रमर, भृंग, भृंगी, मधुकर, मधुप, शिलीमुख, षटपद आदि। इतने अधिक पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से अष्टछाप-काव्य में भ्रमर-संबंधी वर्णनाधिक्य का प्रमाण मिलता है। 'भ्रमर' को लक्ष्य करके अन्योक्ति-रूप में सूरदास, नंददास आदि ने कृष्ण-कथा का एक पूरा प्रसंग लिख डाला है, जो 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रकृति-वर्णन में भी अष्टछापी कवियों ने 'भ्रमर' का उल्लेख अनेक प्रकार से किया है। खिले हुए कमलों पर 'चंचरीक' मँडराते और गुंजार करते हैं और कमल-दलों में रम जाते हैं। 'भ्रमर' काले तथा घुंघराले बालों का प्रसिद्ध उपमान है। कहीं-कहीं 'रोमावली' या 'रोमराजी' के वर्णन में भी 'भ्रमर' का स्मरण किया गया है। प्रेम के सच्चे और झूठे, दोनों पक्षों के स्पष्टीकरण में भी अष्टछापी कवियों ने 'भ्रमर' को उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया है। कमल के प्रति भ्रमर का प्रेम सहज और आदर्श होता है; क्योंकि वह कमल-कोष में बंद हो जाता है और कष्ट सहता है, फिर भी प्रेम नहीं छोड़ता। दूसरी ओर अनेक फूलों और लताओं पर भटकने के कारण कवियों ने स्वार्थी तथा लंपट कहकर 'भौंरे' की हँसी भी उड़ायी है। 'भ्रमर' तथा 'कमल' का रूपक बाँध कर अष्टछापी कवियों ने हरि-चरणों में मन लगाने का आदेश भी दिया है। कान के निकट 'अलि' का गूँजना सूरदास के अनुसार 'शकुन' में गिना जाता है।

मधु का संचय करने के लिए 'मधुमक्खी' प्रसिद्ध है। सूरदास ने उपमान के रूप में इसका प्रयोग किया है। 'झिल्ली' या 'झींगुर' को सामान्यतया संध्या के समय और विशेष रूप से वर्षा-काल में अपने निरंतर रव से रात्रि की निस्तब्धता भंग करने के कारण, अष्टछाप-काव्य में स्थान मिला है।

ज. पक्षी—

जिस प्रकार मनुष्य का पशुओं से घनिष्ठ संबंध रहा है, उसी

प्रकार पक्षियों से भी वह संबंधित है। अष्टछाप-काव्य में पक्षी के लिए 'पच्छी' या 'पंछी', 'बिहंग', 'खग', 'दुज', 'चिरिया' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। आलोच्य कवियों ने प्रकृति - वर्णन में नाना रंग के पक्षियों, उनकी बोलियों और क्रियाओं का वर्णन किया है। अष्टछाप-काव्य में जिन पक्षियों की चर्चा की गयी है उनको, स्थूल रूप से, दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग 'लोकप्रिय' पक्षियों का है जिनमें कोई सुंदर रूप के कारण और कोई विशेष गुण के कारण मानव-समाज को प्रिय रहा है। इस वर्ग के अनेक पक्षियों को पालने का भी प्रयत्न सदा से होता आया है। दूसरा वर्ग उन 'लोक-तिरस्कृत' पक्षियों का है जो अपनी गुणहीनता और दुष्ट स्वभाव के कारण मानव समाज में प्राय: तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते हैं।

अ. *लोकप्रिय पक्षी*—इस वर्ग में कपोत, कुलाल, कोयल, खंजन, गररी, चकवा, चकोर, चातक, तमचुर, नीलकँठीर, भरुही, मोर, लालमुनैया, सारिका, सुक, हंस, हारिल आदि पक्षी आते हैं। अष्टछाप-काव्य में इन पक्षियों में से कुलाल, गररी, नीलकँठीर, भरुही, लालमुनैया, हारिल आदि की सामान्य रूप से और शेष की विशेष रूप से चर्चा की गयी है।

'कपोत', 'कबूतर', 'परेवा' या 'पारावत' नामक पक्षी अपनी सिधाई और कुशाग्रबुद्धि-जनित स्मरण - शक्ति के कारण लोकप्रिय है। अष्टछाप-काव्य में कुछ स्थलों पर इस पक्षी का अन्य पक्षियों के साथ सामान्य रूप से उल्लेख हुआ है; अन्यत्र इसकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर इसका वर्णन किया गया है। 'कपोत' की गर्दन सुडौल होने के कारण सुंदर लगती है। कुंभनदास ने एक पद में ग्रीवा की सुडौलता का वर्णन करते समय 'कपोत' का स्मरण किया है। सूरदास ने 'परेवा' की प्रीति को आदर्श मानकर उसका बखान किया है। मधुर 'बानी' बोलनेवाले पक्षियों में भी 'कपोत' को अष्टछाप-काव्य में स्थान दिया गया है।

'कोयल', 'कोकिल', 'कोकिला' या 'पिक' नामक पक्षी वर्ण में तो कौए की तरह ही काला होता है; परंतु अपने स्वर की मधुरिमा के लिए बहुत लोकप्रिय है। अष्टछापी कवियों ने भी कहीं तो 'मधुर बानी' बोलनेवाले पक्षियों में कोकिल की गणना की है और कहीं स्वतंत्र रूप से उसकी 'सुहाई गिरा' की, उसके 'कूजने' और उसकी 'मधुर बानी' की प्रशंसा की है। हमारे कवियों ने कोकिल का संबंध मुख्य रूप से वर्षा और बसंत ऋतुओं से बताया है जब मोर, चातक आदि अन्य पक्षी भी

उन्मादक स्वर से बोलते हैं। कोकिल जैसी मधुर वाणी बोलनेवाले पक्षियों के बैकुंठ में न होने के कारण गोविंदस्वामी तो वहाँ जाना ही व्यर्थ समझते हैं। कोकिल की चतुराई भी हमारे कवियों का वर्ण्य विषय रही है। अपने अंडे स्वयं 'सेने' के कष्ट से उसका बचना और 'कौए' के घोसले में उन्हें रखकर 'कउई' द्वारा उनके सेये जाने की योजना बनाना, 'कोयल' की चतुरता का प्रमाण है जिसकी ओर सूरदास ने स्पष्ट संकेत किया है।

'खंजन' या 'खंजरीट' एक बहुत चंचल सुंदर पक्षी होता है जिससे कविगण नेत्रों की उपमा देते हैं। अष्टछाप-काव्य में भी नेत्रों के उपमान-रूप में 'खंजन' या 'खंजरीट' अनेक स्थानों पर उल्लिखित है।

'चकोर' और उसकी मादा 'चकोरी' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में चंद्रमा के प्रति अनन्य प्रीति रखने के कारण हुआ है। गोविंद-स्वामी के अनुसार, 'चकोर' का बोलना सारस, हंस आदि पक्षियों के स्वर के समान सुखदायी है। चकोर के संबंध में अंगार खाने की बात प्रसिद्ध है जिसकी ओर सूरदास के एक पद में संकेत किया गया है।

'चकवा', 'कोक', 'चकवाक' या 'चक्रवाक' पक्षी के लिए सामान्यतया जल के किनारे रहने और रात्रि में अथवा चंद्र-दर्शन से दुखी होने की बात हमारे कवियों ने लिखी है। रात में यह अपनी मादा 'चकई', 'कोकी' या 'चक्रवाकी' से बिछुड़ जाता है। इसी से सूरदास ने 'चकई' को उस दिव्य 'चरन-सरोवर' पर चलने की सलाह दी है जहाँ कभी 'भ्रम-निशा' होती ही नहीं। सूर्योदय होने पर यह पक्षी और इसकी मादा, दोनों बहुत प्रसन्न होते हैं; क्योंकि तभी दोनों का मिलन होता है। अतएव सूरदास ने चक्रवाक का रवि के 'वश' में ही सदा रहना बताया है।

प्रेम की अनन्यता और एकनिष्ठा के आदर्श पर चलनेवाले, चकोर, चक्रवाक आदि पक्षियों के क्रम में चातक भी आता है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार यह पक्षी केवल स्वाती नक्षत्र में बरसनेवाले पानी को पीकर ही अपनी प्यास बुझाता है; अन्यथा मर भले ही जाय, अन्य जल से अपनी प्यास बुझाने की बात वह कभी नहीं सोचता। सूर ने इस जन-विश्वास की ओर संकेत किया है और 'स्वाती' के प्रति उसकी प्रीति को आदर्श माना है। चातक को 'पपीहा', 'पपिहा' या 'पपैया' नाम भी हमारे कवियों ने दिये हैं। 'पपीहा' के काले रंग का प्रमाण सूर के एक पद में मिलता है। कहीं-कहीं पर भगवान के दर्शन के लिए भक्तों की

व्याकुलता चातक के सादृश्य से व्यक्त की गयी है। पपीहा अन्य पक्षियों की तरह दिन में तो बोलता ही है, कभी-कभी रात में भी बोलता है। उसका 'पी-पी' शब्द कानों में उतर कर सीधा हृदय में पहुँचता है। प्रिय के वियोग में दुखी प्रेमिका को यह शब्द मानों जलाता है; क्योंकि उससे प्रिय की स्मृति सजग हो जाती है। अष्टछापी कवियों ने प्रकृति-वर्णन में, अन्य पक्षियों के साथ-साथ, चातक का भी नाम लिया है।

'केकी', 'बरह', 'बरही', 'मयूर', 'सिखंडी', 'सिखी' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में 'मोर' नामक प्रसिद्ध पक्षी के लिए हुआ है। इस पक्षी को वर्षा ऋतु बहुत प्रिय है। वर्षा में यह अन्य पक्षियों के साथ बोलने लगता है। अष्टछापी कवियों के अनुसार वर्षा में घटा के घिर आने पर मोर बड़ा कोलाहल करते हैं। विरहणियों के लिए मोर का बोलना वर्षागम-सूचक होने के कारण दुखदायी भी है। इसी कारण कृष्ण-वियोग में विकल व्रजबालाओं को 'मोर' बैरी जैसे लगते हैं। मोर के पंख चंद्राकृति चिह्नों के कारण बहुत सुंदर लगते हैं; इन्हें 'मोरचंद्र', 'मोरचंद्रिका', 'मोरचँदवा' आदि कहते हैं। श्रीकृष्ण के मोरमुकुटधारी होने की बात तो प्रसिद्ध ही है, अतएव यह सम्मान या दुलार पाकर, सूरदास की गोपियों की सम्मति में, 'मोरवा' बहुत ढीठ हो जाते हैं। मोरपंखी के 'व्यजन' बनाये जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है जिसे देखकर सिंहासनासीन कृष्ण, व्रजवास की चर्चा न उठने देने के लिए, प्रसंग बदल देते हैं। सर्प और मोर में जन्मजात शत्रुता रहती है और उसे देखते ही यह खा जाना चाहता है। सूरदास ने मयूर की इस प्रकृति का भी वर्णन किया है।

'लालमुनिया' या 'लालमुनैया' नामक लाल चिड़िया का वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने किया है। यह चिड़िया बहुत छोटी होती है और एक पिंजड़े में कई-कई 'लालमुनियाँ' पाल ली जाती हैं। कृष्ण के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिए जानेवाली, वस्त्राभूषण से अलंकृता गोपियों को सूरदास ने पिंजड़ा छोड़कर एक साथ उड़नेवाली 'लालमुनियों'-जैसा बताया है। वृन्दावन की हरित भूमि में 'लालमुनियों' के झुंड रहने की बात भी सूरदास के एक पद में मिलती है।

'सारिका', 'सारी' या 'मैना' भी पिंजड़े में पाली जानेवाली चिड़िया है। इसकी वाणी मधुर होती है और सिखाने पर यह मनुष्य की बोली तोते की तरह ही सीख जाती है। गो० तुलसीदास की जानकी तोते की तरह पढ़ाने के लिए सारिका को भी सोने के पिंजड़े में पालती है। हमारे

कवियों ने 'सुक-सारिका' के साथ-साथ रहने का वर्णन किया है और श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के 'साकेत' का 'कीर' तो लक्ष्मण के द्वारा सिखाये जाने पर 'सलोनी सारिका' की कामना भी करता है। परंतु अष्टछापी कवि इन पक्षियों के पढ़ाये जाने की बात न कह कर वर्षा ऋतु में अन्य खगों के साथ इनके बोलने का ही वर्णन करते हैं।

'कीर', 'तोता', 'सुक', 'सुअना', 'सुआ', 'सुवा' आदि नामों से प्रसिद्ध पक्षी कदाचित इसीलिए पाला जाता है कि वह पढ़ाये जाने पर कुछ शब्दों का स्पष्ट उच्चारण कर लेता है। अष्टछापी कवियों ने भी 'सुक' के पढ़ाये जाने की बात का उल्लेख किया है और तोते को भगवन्नाम पढ़ाते-पढ़ाते तो 'गनिका' के तर तक जाने की बात उन्होंने लिखी है। तोते का रंग हरा होता है जिसके कारण सूरदास ने कृष्ण के गले में पड़ी हुई तुलसी-माला के उपमान-रूप में 'स्रेनिका सुक-जाल' का स्मरण किया है। नख-शिख-वर्णन में 'कीर' को नासिका का उपमान बताया जाता है। वसंत-वर्णन में अनेक पक्षियों के साथ 'कीर' या 'सुक' के बोलने की बात भी उन्होंने कही है। अष्टछापी कवियों के अनुसार सांसारिक सुखों की ओर जीव उसी प्रकार आँख मूँदकर आकृष्ट होता है जैसे 'तोता' सेमर के फूल की ओर; उनकी निस्सारता देखकर इसे निराशा भी होती है; फिर भी वह सचेत नहीं होता। संसार की स्वार्थ और कपटपूर्ण प्रीति भी सुक-सेमर के संबंध जैसी उन कवियों ने बतायी है। संसार में जन्म लेकर अपनी मूर्खतावश प्राणी का 'अपुनपौ' अथवा 'आत्मशक्ति' भूल जाना अष्टछापी कवियों ने 'नलिनी के सुक' अथवा 'सुवटा' के उदाहरण से समझाया है जो उलटा लटकते ही अपनी उड़ने की शक्ति को भूल जाने के कारण दूसरों के अधीन हो जाने का दुख भोगता है।

'मराल' अथवा 'हंस' एक प्रसिद्ध पक्षी है जो सरस्वती का वाहन होने के कारण भारत में सदा से सम्मान पाता रहा है। इसका प्रसिद्ध वासस्थान कैलास पर्वत पर स्थित मानसरोवर माना जाता है। कृष्ण का वृंदावन छोड़कर मथुरा जाना सूरदास की दृष्टि में वैसा ही है जैसे हंस मानसरोवर छोड़कर अन्यत्र चला गया हो। हंस के मोती या 'मुक्ताहल' चुगने की बात कवियों में प्रसिद्ध रही है। हंस का उज्ज्वल श्वेत वर्ण भी कवियों का वर्ण्य विषय रहा है। सूरदास के एक पद में बलराम को उज्ज्वल वर्ण के कारण 'मराल' ही कहा गया है। कवि-प्रसिद्धि है कि हंस नीर-क्षीर-विवेकी और कमल-दल-लोभी होता है। उसके स्वभाव

की इस दूसरी विशेषता का सूरदास ने एक पद में स्पष्ट उल्लेख किया है। गज की तरह हंस और हंसी की गति को सुंदर मानकर उससे सुंदर चाल की उपमा, जायसी आदि के साथ, अष्टछापी कवियों ने दी है। स्त्रियों के नूपुर, 'किंकिनी'-जैसे आभूषणों की मधुर ध्वनि को 'मराल छौने' के मधुर 'रव' के समान हमारे कवियों ने कहा है। कहीं-कहीं 'हंस' का सांकेतिक अर्थ 'प्राण' अथवा 'आत्मा' से भी उन्होंने लगाया है।

अब रह गये इस वर्ग के 'गररी', 'तमचुर', 'कुलाल', 'नीलकँठीर', 'भरुही', 'सूही', 'हारिल' आदि पक्षी जिनका सारे अष्टछाप-काव्य में एक-एक दो-दो बार ही उल्लेख हुआ है। 'गररी' का लड़ना सूरदास ने असगुन-सूचक बताया है। 'तमचुर' को प्रचलित भाषा में 'मुर्गा' कहते हैं। यह पक्षी दस-पाँच फीट से अधिक नहीं उड़ पाता। यों तो यह किसी भी समय बोल सकता है, लेकिन सामान्यतया उषाकाल में इसके बोलने के क्रम में निरंतरता रहती है। अष्टछापी कवियों ने अरुणोदय के आस-पास ही इसके बोलने का उल्लेख किया है। कृष्ण-वियोगिनी गोपियों को 'तमचुर का बोल' अप्रिय लगने की बात परमानंददास ने कही है। 'कुलाल' नामक पक्षी भी 'तमचुर' की ही जाति का होता है जिसे 'जंगली मुर्गा' कहते हैं। अष्टछापी कवियों में से केवल सूरदास ने इसका उल्लेख किया है।

'नीलकँठीर' और 'भरुही' का उल्लेख भी आलोच्य कवियों में से केवल सूरदास के काव्य में मिलता है। 'नीलकँठीर' संभवत: 'नीलकंठ' अथवा उसी से मिलता-जुलता नीलवर्ण का पक्षी है जिसका स्मरण सूरदास को श्रीकृष्ण का श्याम वर्ण देखकर ही आता है। 'भरुई' संभवत: 'भारद्वाज' पक्षी है जिसका अंडा, महाभारत के भयंकर युद्ध में भी नष्ट होने से बच जाने का उल्लेख सूर ने किया है; क्योंकि उस पर गज का घंटा 'टोप' की तरह जा गिरा था। इस प्रसंग में सूरदास ने भगवत्कृपा से घोर संकट में भी रक्षित रहने की बात कही है। 'सूही' का उल्लेख 'सूर-सागर' में वर्षाकालीन पक्षियों के साथ हुआ है।

'हारिल' पक्षी अपने हरे रंग के कारण 'हरियल' भी कहलाता है। सूरदास ने इसकी चर्चा वर्षा ऋतु में बोलनेवाले पक्षियों के साथ की है। इस पक्षी के स्वभाव की उल्लेखनीय विशेषता है हर समय लकड़ी का टुकड़ा या तिनका अपने पंजों में दबाये रखना। गोपियों ने अपने लिए कृष्ण को 'हारिल की लकड़ी' ही बताकर संकेत किया है कि हमने किसी

लोभ, स्वार्थ या कामना से नहीं, अपने सहज स्वभाव के अनुसार ही नंदनंदन को दृढ़ता से पकड़ रखा है।

आ. *लोक-तिरस्कृत पक्षी*—अष्टछाप-काव्य में वर्णित जो पक्षी इस वर्ग में आते हैं, उनमें उलूक, काग, गीध, बक, सचान, सारस आदि मुख्य हैं। यद्यपि इन पक्षियों से प्रत्यक्षतः मानव-समाज का कोई अहित नहीं होता जिससे इनका तिरस्कार किया जाय और 'कौआ' तो हर घर की छत पर दिन में किसी भी समय देखा जा सकता है, फिर भी इनमें से किसी के प्रति हमारे मन में वह सद्भाव नहीं रहता जो कपोत, कोयल, खंजन, चकवा, चकोर, चातक, मोर, सारिका, सुक, हंस आदि के लिए रहता है। यों तो प्रायः सभी पक्षी कीड़े-मकोड़े खाते हैं, परंतु इस लोक-तिरस्कृत वर्ग के प्रायः सभी पक्षी मांसाहारी हैं; कुछ मछलियाँ खाते हैं, कुछ छोटी चिड़ियां या चूहे आदि छोटे जंतुओं का शिकार करते हैं और कुछ मृतकों का मांस खाते हैं जो संभवतः उनके प्रति हमारी तिरस्कार-भावना का प्रथम कारण है। इस वर्ग के पक्षियों के तिरस्कृत होने का दूसरा कारण, प्रथम वर्गीय पक्षियां जैसा रूप-गुण आदि इनमें न होना भी हो सकता है।

तिरस्कार की दृष्टि से देखे जानेवाले पक्षियों में सर्वप्रथम है 'उलूक' या 'उल्लू'। इसका बोलना अशुभ माना जाता है और घर की छत पर बैठ जाना तो सर्वनाश का ही सूचक समझा जाता है। यह पक्षी सामान्यतया रात के अँधेरे में ही निकलता है। सूरदास ने उलूक की इस प्रवृत्ति का उल्लेख एक विनय पद में करते हुए बताया है कि आकाश में सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश के रहते हुए भी 'उलूक' अपनी टेव के अनुसार उसको पसंद नहीं करता।

'काग', कौआ', 'बायस' आदि नामों से प्रसिद्ध पक्षी अपने काले रंग और कर्कश स्वर के कारण निरादृत रहता है। प्रथम अर्थात् रंग-दोष के कारण हंस के साथ कौए का रहना अष्टछापी कवियों को कृष्ण-कुब्जा और कृष्ण-शिशुपाल जैसा लगा है। और द्वितीय दोष अर्थात् कर्कश स्वर के कारण वह कोकिल के सामने सदैव तिरस्कृत होता रहा है। यह पक्षी मूर्ख इतना होता है कि कोयल द्वारा सदैव ठगा जाता है और अपने बच्चे 'सेने' का काम वह 'कौए' की मादा से ही सदैव कराती है। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों ने ऊधव से उनके ऐसे ही व्यवहार की ओर संकेत किया है। 'काग' को अष्टछापी कवियों ने मृतक

मांस का भक्षी भी बताया है। अपना स्वभाव न बदल पानेवाले कुटिलजनों का वर्णन करते समय भी 'काग' का स्मरण उन कवियों ने किया है। बायीं ओर काग का बोलना, माथे पर होकर 'काग' का उड़ना अथवा रात में 'काग का बोलना' अष्टछापी कवियों ने कुसगुनों में गिनाया है। एक 'कौए' के मरने पर दूसरों का थोड़ी देर 'काँ काँ' करके उड़ जाना भी सूर के एक पद में वर्णित है। किसी संबंधी के आगमन का शकुन 'कौए' को उड़ाकर जानने का विश्वास भारतीय समाज में प्रचलित है। अष्टछाप- काव्य में इस विश्वास की ओर भी अनेक पदों में संकेत किया गया है। काग के द्वारा इस प्रकार के 'सगुन' जानकर प्रियतम कृष्ण के आने का समाचार पाने के लिए गोपियाँ 'बायस' को दिनभर उड़ाती रहती हैं जिससे उनकी बाहें थक जाती हैं। श्राद्धपक्ष में 'कौए' को 'बलि' खिलाने की प्रथा है जिसकी ओर बिहारी ने भी संकेत किया है; परंतु सूरदास के अनुसार कृष्ण के वियोग से पीड़ित व्रज में 'बायस' 'बलि' भी नहीं खाता।

'गीध' या 'गृद्ध' मृत पशुओं और मुर्दों का मांस खानेवाला पक्षी है। आकाश में यह बड़ी ऊँचाई तक उड़ान भरता है। इसकी दृष्टि बड़ी तेज होती है। रामकथा में जटायु और सम्पाती जैसे गिद्धों का वर्णन है। जटायु ने तो सीता की रक्षा के लिए रावण से लड़कर अपने प्राण दिये थे। सूरदास के अनुसार राम ने उसका 'शव-दाह' किया था। जिस व्यक्ति में भजन-भाव नहीं होता उसके जीवन को सूरदास ने 'गीध-गीधिनी' के सारहीन जीवन - जैसा कहा है।

'बक', 'बग', 'बगुला', 'बलाक' आदि नामों से प्रसिद्ध पक्षी का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने वर्षा ऋतु के अन्य खगों के साथ किया है। साधारणतया यह पक्षी सरोवर या जलाशय के समीप बैठता है और पंक्ति-बद्ध होकर आकाश में उड़ता है। अष्टछाप - काव्य में 'बग' के इस स्वभाव को लक्ष्य करके उसका उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। 'जल-सुत'-माला अथवा 'मुक्तामाल' के उपमान-रूप में भी 'बग-पाँति' का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। कृष्ण की 'रोमावली' भी सूरदास को 'बग-पाँति' सी जान पड़ती है। भजन-भाव से रहित गृहस्थ के सारहीन जीवन को 'सूरसागर' के एक पद में 'बग-बगुली' के जीवन-सा बताया गया है।

'सचान' या 'बाज' शिकारी पक्षी होता है। इसे 'शिकरा' भी

कहते हैं। इसके द्वारा अन्य पक्षियों का शिकार कराया जाता है। इसे सिखाकर आकाश में उड़ाते हैं और यह छोटे पक्षियों को पकड़ कर ले आता है। बिहारी ने एक दोहे में 'बाज' की इस प्रकृति की ओर संकेत किया है। सूरदास भी एक निरीह पक्षी पर आक्रमण के लिए तैयार 'सचान' का उल्लेख करते हैं।

'सारस' पक्षी वर्षा ऋतु में प्रायः जल से भरे हुए खेतों और अन्य जलाशयों के निकट दिखायी देता है। लंबी टाँगों वाले इस पक्षी की चोंच भी लंबी होती है जिससे यह जल-जीवों से अपना पेट भरा करता है। जायसी ने 'सारस' के जोड़े के साथ-साथ रहने की बात लिखी है और प्रसिद्धि यह है कि एक की मृत्यु होने पर दूसरा भी आजीवन वियोगी रहता है। अष्टछापी कवियों ने 'सारस' के संबंध में अधिक नहीं लिखा है, सरोवर या जलाशय-तट के पक्षियों में उसको गिनाकर ही उसकी चर्चा समाप्त कर दी है।

पौराणिक पशु-पक्षी और कीट—

अष्टछाप-काव्य में कुछ ऐसे पशु, पक्षी, कीट आदि का उल्लेख हुआ है जो रूप, रंग अथवा आकार में इस जगत के प्राणियों से मिलते-जुलते हैं; परंतु अपनी विशेषताओं के कारण इनसे भिन्न भी हैं। इन पशु-पक्षियों का वर्णन पुराणों तथा प्राचीन महाकाव्यों में आया है। सूर आदि अष्टछापी कवियों ने भी पौराणिक कथाओं के प्रसंग में उनका नाम लिया है। गुण और शक्ति में वे सब इस जगत के समवर्गीय प्राणियों से बहुत बढ़े-चढ़े बताये गये हैं। अकार-क्रम से उनके नाम इस प्रकार हैं—उच्चैश्रवा, ऐरावत, कामधेनु, गरुड़, तक्षक, वासुकि, शेषनाग आदि।

'उच्चैश्रवा' इन्द्र के घोड़े का नाम है। यह समुद्र से निकले चौदह रत्नों में था। इसके कान खड़े और मुँह सात थे। अष्टछाप-काव्य में इस घोड़े की चर्चा नहीं है; परंतु चौगान के खेल में श्रीकृष्ण और अन्य कुँवरों का उच्चैश्रवा-जैसे घोड़ों पर सवार होकर खेल खेलने निकलना बताया गया है।

श्वेत रंग का 'ऐरावत' हाथी देवराज इंद्र का वाहन है। यह समुद्र-मंथन से प्राप्त हुआ था और तब विष्णु ने जो पाँच रत्न इन्द्र को दिये थे उनमें 'ऐरावत' भी एक था। सूर ने आकाश-मार्ग से पृथ्वी की ओर तीव्र गति से आते हुए 'ऐरावत' का उल्लेख किया है। उनके एक अन्य

पद में भी 'ऐरावत' की चर्चा की गयी है। परमानंददास ने इंद्र द्वारा 'ऐरावत' आदि प्रस्तुत करके गंगाजल से कृष्ण का अभिषेक किये जाने की बात लिखी है।

'कामधेनु' या 'कामनाधेनु' भी 'सागर-मंथन' से प्राप्त चौदह रत्नों में थी जो सप्तर्षियों को दी गयी थी। सप्तर्षियों में परशुराम के पिता जमदग्नि भी थे; अतएव उनके यहाँ कामधेनु होने और सहस्रार्जुन द्वारा बलपूर्वक उसके छीन लिये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। रंक सुदामा की निर्धनता दूर करने के लिए भी 'कामधेनु' दिये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। परमानंददास के अनुसार गोवर्द्धन-पूजा के अवसर पर पराजित होकर देवराज इंद्र 'कामधेनु' आदि दिव्य पशु प्रस्तुत करके गंगाजल से श्रीकृष्ण का अभिषेक करता है। भूलोक-वासियों की चर्चा में 'कामधेनु' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में दो स्थलों पर हुआ है। प्रथम, नंद जी जिन दो लाख गैयों का दान करते हैं वे 'कामधेनु' से किसी प्रकार कम नहीं हैं। दूसरा प्रसंग रुक्मिणी-विवाह का है जिसमें उसको शिशुपाल से ब्याहना वैसा ही अमंगल बनाया गया है जैसे 'कामधेनु', 'खर' को सौंपी जा रही हो।

'गरुड़', पक्षियों का राजा और विष्णु का वाहन माना गया है। अष्टछाप-काव्य में गज-ग्राह-युद्ध में गज की रक्षा करने के लिए गरुड़ छोड़कर विष्णु के नंगे पैर ही दौड़ पड़ने की बात अनेक पदों में कहकर करुणामय प्रभु की भक्त-वत्सलता सिद्ध की गयी है। 'गरुड़' सर्पों का शत्रु माना गया है जिसके भय से कालियनाग के यमुना में आकर छिपने की बात अष्टछाप-काव्य में कही गयी है। कालियदह में कालियनाग के छिपने का कारण यह था कि गरुड़ को वहाँ जाने पर प्राण से हाथ धोने का शाप सौभरि ऋषि द्वारा दिये जाने की बात वह जानता था। अतएव कृष्ण का कृपापात्र बन कर आज वह ऋषि का परम उपकार भी मानता है।

'तच्छक' या 'तक्षक', 'वासुकि' और शेषनाग' प्रसिद्ध पौराणिक नाग हैं। प्रथम अर्थात् 'तक्षक' का उल्लेख शृंगी ऋषि द्वारा परीक्षित को दिये गये शाप के प्रसंग में हुआ है। 'वासुकि' की चर्चा सागर-मंथन-प्रसंग में की गयी है जिसमें उसकी 'नेति' बनायी जाने की बात का उल्लेख मिलता है। शेषनाग का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में दो प्रसंगों में हुआ है। प्रथम में यह शेषशायी विष्णु की 'शैया' बताया गया है। दूसरे प्रसंग में मथुरा के बंदीगृह से निकलकर वसुदेव जब शिशु कृष्ण को गोकुल ले जाते हैं तब

शेषनाग द्वारा उन पर अपने 'फन' फैलाकर उनकी रक्षा करते चलने की बात सूरदास ने एक पद में कही है।

समीक्षा—पशु-पक्षियों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अष्टछापी कवियों ने अनेक प्रकार के जीवों का उल्लेख उपमान-रूप में अथवा प्रकृति-वर्णन के साथ स्वतंत्र रूप से किया है। इन सभी प्रकार के वर्णनों के आधार पर तीन निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम, अष्टछापी कवियों ने पशु-पक्षियों के सामान्य जीवन को लेकर उनकी प्रवृत्तियों और प्रभावों का ज्ञान प्रदर्शित किया है। उदाहरण के लिए 'कपि गुंजा की नाई' से बंदर का स्वभाव प्रकट होता है। इसी प्रकार भ्रमर के फूल-फूल पर मँडराने; काग, स्वान, खर तथा मरकट का अपने स्वभाव को न छोड़ने आदि का उल्लेख भी उनकी प्रकृति से संबंधित है।

दूसरे, मनुष्य जिस प्रकार पशु-पक्षियों का अपने जीवन में उपयोग करने लगा है, उसको ध्यान में रखकर अष्टछाप के कवियों ने अनेक उक्तियाँ कही हैं जैसे 'तेली के बृप लौं नित भटकत' उक्ति द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि तेली के कोल्हू में जो बैल जोता जाता है, उसका जीवन कितना कष्टमय होता है। इसी प्रकार मनुष्य भी भक्ति का सहारा न लेकर माया-जाल में फँसा रहकर दुख पाता है।

तीसरे, अष्टछापी कवियों ने पशु-पक्षियों के पारस्परिक संबंधों, उन पर आनेवाले संकटों तथा उनकी प्रतिक्रियाओं से संबंधित कुछ बातें कही हैं; जैसे 'बृक ग्रसित अजा' आदि। पहले दोनों निष्कर्षों के अनुसार, अष्टछापी कवियों का जो ज्ञान प्रकट होता है, वह उतना अनुभवजन्य नहीं प्रतीत होता जितना तृतीय प्रकार की उक्तियों से ध्वनित है। प्रथम दोनों प्रकार की उक्तियों का आधार वे अनेक लोकोक्तियाँ हैं, जो मनुष्य-समाज में अनादि काल से प्रचलित रहकर हमारी जन-भाषा का स्थायी अंग बन गयी हैं। अतः इन कवियों ने उनका संग्रहमात्र किया है। इसके विपरीत, तृतीय प्रकार की उक्तियों से अष्टछापी कवियों की पर्यवेक्षण शक्ति तथा सूक्ष्म-ग्राहिणी प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। इनसे उनकी प्रतिभा और सूझबूझ का परिचय मिलता है। किसी सीमा तक उनकी ये उक्तियाँ मौलिक कही जा सकती हैं।

३ सामान्य जीवन-चित्रण

चेतन-जगत के समस्त प्राणियों की प्रमुख आवश्यकताएँ केवल तीन हैं—आवास, भोजन और वस्त्र। इनके लिए मनुष्य को व्यवहार की अनेक सामान्य और विशेष वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इनका प्रबंध हो जाने पर उसका ध्यान शृंगार के विविध प्रसाधनों की ओर जाता है। अतएव अष्टछाप-काव्य में चित्रित सामान्य जीवन का अध्ययन मुख्यत: सात उपशीर्षकों के अंतर्गत करना उपयुक्त होगा—१. आवास एवं अन्य विचरण-स्थान, २. खानपान, ३. वस्त्र, ४. आभूषण एवं शृंगार-प्रसाधन, ५. व्यवहार की सामान्य एवं विशेष वस्तुएँ, ६. धातु एवं खनिज पदार्थ और ७. वाहन।

१. आवास एवं अन्य विचरण स्थान—

सरल और छलकपटरहित प्रकृति के व्रजवासी गोवर्द्धन के निकटवर्ती वनों और उपवनों में बसे गोकुल और वृंदावन के ग्रामों में रहते थे। यद्यपि अन्य भारतीय ग्रामों की भाँति ही, उन ग्रामीणों के 'आवास' भी आर्थिक स्थिति के अनुसार विभिन्न स्तरों के होते होंगे, परंतु अष्टछापी कवियों ने सुदामा की 'मड़ैया' या मिट्टी के कच्चे घर के अतिरिक्त किसी निर्धन ग्रामीण की फूस की झोपड़ी या कच्चे घर की चर्चा नहीं की है। उन्होंने लंका और मथुरा के राजमहलों के अतिरिक्त दशरथ, नंदराय और वृषभानु के उन असाधारण और भव्य भवनों का उल्लेख किया है जहाँ उनके आराध्य और आराध्या निवास करते थे। इन वास-स्थानों को अष्टछापी कवियों ने 'अवास', 'आलय', 'गृह', 'घर', 'धाम', 'भवन', 'महल', 'मंदिर' आदि कहा है। इनके द्वारों की चौखटों का निचला भाग 'देहली' कहा गया है

जिसे पार करने में शिशु कृष्ण की कठिनाई का वर्णन अष्टछापी कवियों ने बड़ी रुचि से किया है। उन भवनों के निर्माण में 'कनक' का उपयोग बहुत अधिक होना कहा गया है यहाँ तक कि उनके आँगन तथा कमरों के गच भी सोने के होते थे जिनमें मणियाँ जड़ी रहती थीं। अष्टछापी कवियों ने नंद-भवन के मणिमय आँगन में बालकृष्ण को घुटनों चलते बताया है। घर की ऊँची छत को 'अटा' या 'अटारी' कहा गया है। परमानंददास ने 'अटा' पर चढ़कर कृष्ण के चंग उड़ाने का उल्लेख किया है। ऊँचे महलों में कँगूरे होते थे, जो देखने में बड़े सुन्दर लगते थे। परमानंददास ने राम-जन्म के समय लंका में सिंधु काँपने और महलों के कंगूरों के गिरने का वर्णन किया है। घरों में झरोखे होते थे, जिनके द्वारा भीतर का व्यक्ति बाहर का दृश्य देख सकता था। इनका प्रयोग अधिकतर स्त्रियाँ करती थीं। होली के पर्व पर स्त्रियों का इन्हीं के द्वारा पिचकारी से रंग फेंकना कहा गया है। मेले या उत्सवों के अवसर पर वे छज्जों पर बैठकर 'झरोखे' से बाहरी दृश्य देखती थीं।

कुछ गृहों में 'धरहरा' या 'धौरहर' होता था। यह खंभे की तरह का मकान का बहुत ऊँचा भाग होता था, जिस पर चढ़ने के लिए भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ होती थीं। इन पर चढ़कर बाहर की ओर देखने से दृश्य सुन्दर दिखायी देता था। धौरहर ऊँचा होने के कारण उसी प्रकार शीतल रहता था जैसे कैलास। ठंढक के लिए लोग 'बँगला' छवाते थे। चंदन से बने बँगले मे कृष्ण के बैठने का उल्लेख परमानंददास ने किया है। कुछ आवासों में धुजा, पताका आदि फहराने की बात अष्टछापो कवियों ने कही है।

भवनों के साथ 'उपवन', 'बाग' अथवा 'फुलवारी' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। एक स्थान से दूसरे तक जाने के लिए चौड़े जन-पथों को अष्टछापी कवियों ने 'मार्ग' और 'पंथ'; एवं सँकरे को 'खोरि', 'गलियारा', 'गली', 'गैल', 'बीथी' आदि कहा है। इसी प्रकार 'हाट-बाजार' की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में मिलती है।

२. *खानपान* -

अष्टछाप-काव्य में 'खानपान' की चर्चा विस्तार के साथ की गयी है। विषय की स्पष्टता के लिए तत्संबंधी विवरण का अध्ययन पाँच उपशीर्षकों में करना उचित जान पड़ता है—क. भोजन के समय और पदार्थ, ख. घी और तेल, ग. मसाले, घ. पेय पदार्थ और ङ. तांबूल।

क. *भोजन के समय और पदार्थ*—अष्टछाप-काव्य में व्रजवासियों के चार समय के भोजनों का उल्लेख हुआ है—अ. कलेऊ, आ. मध्यकालीन भोजन, 'इ'. छाक और 'ई'. 'बियारी', 'ब्यारी' या 'ब्यालू'।

अ. *कलेऊ*—प्रातःकालीन जलपान को 'कलेवा' या 'कलेऊ' कहा गया है। वल्लभ-संप्रदाय में इसके लिए व्यवहृत 'मंगलाभोग' शब्द परमानंददास के एक पद में मिलता है। सूरदास ने कृष्ण के 'कलेवे' का विस्तृत वर्णन तीन-चार पदों में किया है। उनमें 'कलेऊ' के लिए जो ताजे पदार्थ, मिठाई, पकवान, फल, मेवा आदि प्रस्तुत किये गये हैं, अकारक्रम से वे इस प्रकार हैं—अँदरसे, आम, ऊखरस, किसमिस, केरा, खजूरी, खाझा, खारिक, खिर लाडू, खीरा, खुबानी, खुरमा, खोपरा, खोवा, गरी, गाल-मसूरी, गूझा, घृतपूरी, घेवर, चिउरा, चिरौंजी, छुहारे, जलेबी, तरबूजा, दधि, दधिबरा, दाख, दूध, दूधबरा, पचकौरी, पिराख, पिस्ता, प्यौसर, फेनी, बादाम, मठरी, मधु, माखन, मालपूआ, मिठाई, मिसिरी, मोतीलाडू, रोटी, लाडू, श्रीफल, सक्करपारे, सफरी, साढ़ी, सीरा, सुहारी, सेव, हेसमि आदि। अन्य अष्टछापी कवियों ने कलेवे में मुख्य रूप से दही, दूध, मलाई, माखन, मिश्री, मेवा आदि होने की बात कही है। परमानंददास ने एक पद में 'घैया' का और दूसरे में 'मीसी की छोटी रोटी' माखन से खाने का उल्लेख किया है।

आ. *दोपहर का भोजन*—अष्टछापी कवियों में सूरदास ने इस समय के भोजन का वर्णन विस्तार से किया है। व्यंजनों, मिठाइयों और पकवानों के साथ-साथ इस समय के भोजन में तरह तरह की तरकारियों और फलों की भी उन्होंने चर्चा की है। उनके द्वारा गिनाये गये खाद्य पदार्थों की लम्बी सूची इस प्रकार है—अगस्त की फरी, अँचार, अँदरसा, अदरख, इँडहर, इमली की खटाई, उभकौरी, ककरी, कचनार, कचरी, कचौरी, कढ़ी, करवँदा, करील के फूल, करेला, कुनरू, केला, खाँड़ की खीर, खीचरी, खीरा, खोवा, गाल मसूरी, गोझा, घेवर, चने का साग, चिचींड़ा, चौराइे, छाँछ, छुँगारी, जलेबी, टेटी, ढरहरी, तोरई, दही, निबुआ, निमोना, पकौरी, परवर, पाकर की कली, पानौरा, पापर, पूरी, पेठा, फाँगफरी, फेनी, बथुआ, बरा, बरी, बेसन-सालन, भाँटा-भरता, भात, माखन, मालपूआ, मुँगछी, रतालू, राइता, रामतोरई, रोटी, लाडू, लपसी, लुचुई, सरसों, सहिजना के फूल, सिखरन, सींगरी, सुहारी, सूरन, सेम, सोवा आदि।

परमानंददास ने दोपहर के भोजन में 'षटरस व्यंजन' कंचन थाल में

परोसे जाने की बात कही है। उनके 'लाल को 'मीठी खीर' बहुत प्रिय है। मधु, मेवा, पकवान, मिठाई, दूध, दही, घृत, ओदन आदि पदार्थ उन्होंने इस समय के भोजन में गिनाये हैं। अन्य अष्टछापी कवियों ने इस प्रकार की लंबी सूचियाँ प्रस्तुत करने में अधिक रुचि नहीं ली है।

इ. *छाक*—वन में गाय चरानेवाले ग्वाल-बालों के लिए दोपहर या तीसरे पहर भेजा जानेवाला भोजन 'छाक' कहलाता है जिसका वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने बड़ी रुचि से किया है। घर से 'छाक' लेकर जानेवाली प्रायः कोई 'स्त्री' ही कही गयी है। 'छाक' में माखन, दधि, मधु, मेवा, पकवान, मिष्टान्न, भात, शिखरन, टेंटी, शाक, सँधानो आदि पदार्थ भेजे जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। चतुर्भुजदास ने 'छाक' में 'छप्पन भोग' और 'छत्तीसों व्यंजन' होना बताया है और परमानंददास की यशोदा तो 'छाक' में इतना सामान भेज देती थी कि कभी कभी काँवर भर कर जाती थी। केवल कृष्ण के यहाँ से ही नहीं, सभी ग्वाल-बालों के यहाँ से 'छाक' आती थी और इस प्रकार खट्टे, मीठे, सलोने, सभी प्रकार के व्यंजन एकत्र हो जाते थे। यों तो संभवतः श्रद्धावश परमानंददास ने 'जगमगाते-कनक थालों' में 'छाक' भिजवायी है, पर अन्य कवियों ने वन में 'पनवारे', 'कमल-पत्र' या 'पलाश के दोनों' में, जाति-पाँति, धनी-निर्धन का सारा भेद-भाव भुलाकर एक दूसरे के हाथ में छीन कर 'छाक' खाने का उल्लेख किया है। यहाँ तक कि कभी कभी शाम हो जाती है, गैया इधर-उधर हो जाती हैं, फिर भी 'छाक' का सम्मिलित भोज चलता रहता है।

ई. *बियारी*—रात्रि का भोजन 'बियारी', 'ब्यारू' या 'बियारू' कहा गया है। सूरदास ने 'बियारी' के व्यंजनों की जो सूची दी है, वह इस प्रकार है—अँदरसा, अथानौ, अमिरती, इलायचीपाक, उरद की दाल, कढ़ी, करौंदा, काचरी, कूरबरी, केरा, कौरी, खजूरी, खरबूजा, खारिक, खाँड़ की खीर, खाजा, खूआ, गरी, गाल-मसूरी, गिंदौरी, गोभा, गुड़बरा, गोंदपाक, घेवर, चने की भाजी और दाल, चिचीड़ा, चौराई, जलेबी, झोरी, तिनगरी, दाख, दूध, दूधबरा, निमोना, पतबरा, पिंड, पिंडारू, पिंडीक, पिठौरी, पूआ, पेठापाक, पोई, पौर, फुलौरी, फेनी, बथुआ, बदाम, बनकौरा, बरी, बाटी, बेसन-दोने, बेसनपुरी, भात, भिंडी, मसूर की दाल, मिथौरि, मूँग की दाल, मूँग पकौरा, मूरा, मेथी, मैदा की पूरी, मोती लाडू, रोटी, लापसी, लाल्हा, लावनि-लाडू, लुचुई, लोनिका, सरसों, सीरा, सूरन, सेव और सोवा आदि। इनके अतिरिक्त 'हींग-हरद-मिर्च' आदि मसाले डाल कर

अदरख, आँवरे और आँब के टुकड़े मिलाकर, तेल में छौंके और कपूर से सुवासित किये हुए अनेक प्रकार के सालनों की चर्चा भी सूरदास ने की है।

अन्य अष्टछापी कवियों ने अपने आराध्य को खुरमा, खाजा, पापर, फेनी, मधु, मिश्री, मेवा, लड़ुआ आदि के साथ दार, भात, कढ़ी भी 'ब्यारू' में खिलायी है। 'बियारी' के समय नींद के आलस्य में भरे सूरदास के बालक कृष्ण बार-बार जमुहाते हैं, तब माता मुख पखराकर पौढ़ाने की बात कहती है।

ख. घी और तेल—भोजन को स्वादिष्ट और पौष्टिक बनाने के लिए घी और तेल का उपयोग किया जाता है। खाने के उपयोग में आने वाले मीठे और कड़ुये, दो प्रकार के तेलों की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। सूरदास ने मीठे तेल में चने की भाजी तैयार करायी है तो परमानन्ददास ने 'करुए तेल' में पापड़ तलवाये हैं। इन दोनों प्रकार के तेलों से घी या घृत अधिक पौष्टिक माना जाता है और इसका मूल्य भी अधिक होता है। इस कारण उच्च वर्गों में तेल की अपेक्षा घी का प्रचलन अधिक रहता है। सूरदास ने एक पद में इसी बात को ध्यान में रखकर कहा है कि जो तेल खाता है, वह घी का स्वाद क्या जानेगा; घी के सामने तेल को कैसे पसंद करेगा ?

ग. मसाले—भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए 'मसालों' का उपयोग किया जाता है। अष्टछाप-काव्य में मसालों की चर्चा दो-तीन रूपों में हुई है। प्रथम 'दानलीला-प्रसंग' में उनकी सूची दी गयी है जिसकी चर्चा 'वाणिज्य-व्यवसाय' के अन्तर्गत आगे की जायगी। दूसरे, तरकारियों तथा अन्य व्यंजनों में पड़नेवाले 'मसालों' का उल्लेख 'भोजन-प्रसंग' में हुआ है। ऐसे मसालों में अजवाइन, इमली की खटाई, जीरा, मिर्च या म्रिच, राई, लोन या सेंधा, सोंठ, हरद या हर्दि, हींग आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त सूरदास ने तरकारियों के साथ-साथ जल को 'कपूर' से सुवासित करने की बात लिखी है। दूध और पान में कपूर डालकर पीने-खाने की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है जिसके उदाहरण पीछे दिये जा चुके हैं। मृगमद और चंदन के साथ कपूर मिलाकर तिलक लगाने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

मसालों की चर्चा का तीसरा रूप स्फुट प्रसंगों में मिलता है। ऐसे मसालों में 'धनियाँ', राई-लोन और हल्दी मुख्य हैं। इनमें एक स्थान पर तो 'हल्दी' अच्छत, दधि, दूब, फल-फूल आदि के साथ पूजन की शुभ

वस्तुओं में गिनी गयी है और दूसरे स्थान पर दधि के साथ 'हरद' मिलाकर परस्पर छिड़कना कहा गया है। उबटन में तेल के साथ 'हरदी' मिलाने की भी चर्चा है। हल्दी और चूना मिलने से उसका रंग 'लाल' हो जाता है जो 'अनुराग' के रंग का स्मरण कराता है। गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी वैसी ही गहरी प्रीति होने की बात कही है।

घ. *पेय पदार्थ*—प्राणी का सर्वप्रधान और सर्वप्रिय पेय है जल जो कपूर आदि से सुवासित होने पर रुचि से पिया जाता है। भारत जैसे गरम देश में शीतल जल सभी को प्रिय होता है। सूरदास के कृष्ण माता से वही माँगते हैं। कुछ देर रखा रह जाने पर 'शीतल जल' गरम हो जाता है और पीने में स्वादिष्ट नहीं लगता। इसीलिए परमानंददास की यशोदा ऐसे 'तातो' जल को पीने से लाल को रोकती और भोजन के समय ताजा जल भर लाने की बात कहती है। कूप, जमुना और गंगा के जलों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है। इनमें 'गंगाजल' सर्वश्रेष्ठ है जिसको छोड़कर, जल के लिए उसी के तीर पर रहनेवाले प्यासे का 'कूप' खनाना सूरदास को सर्वथा मूर्खता का काम जान पड़ता है। वृन्दावन-वासियों के लिए जमुना-जल पीने की बात भी उन्होंने कही है जो नितान्त स्वाभाविक है।

दूसरा पेय पदार्थ है दूध। अष्टछाप के परम आराध्य जिन लोगों के बीच पले थे, गाय पालना ही उनका मुख्य कार्य था; इसलिए 'दूध' उनका प्रिय पेय होना ही चाहिए; क्योंकि वह उन्हें जल की भाँति सुलभ भी था। यों तो अष्टछापी कवियों ने प्रातःकालीन भोजन के साथ 'सद्य' या ताजा और अन्य भोजनों के साथ 'अधावट' 'दूध' पीने की बात कही है, परंतु 'वियारी' के पश्चात् अच्छी तरह औटाया हुआ गरम गरम दूध फूँक मारकर अपने आराध्य को पिलाये जाने की चर्चा उन्होंने बड़ी रुचि से की है।

तीसरा पेय 'मधु' कहा जा सकता है; क्योंकि 'रामायण-काल' में इसकी गणना 'पेयों' में की जाती थी। नंददास और गोविंदस्वामी ने 'मधु-पान' का उल्लेख विशेष रूप से किया है।

'मदिरा', 'वारुणी' या 'सुरा' की गणना 'मादक पेयों' में है जिसका पान कुछ वर्गों में सदा से प्रचलित रहा है। सामान्य वर्ग यद्यपि विशेष अवसरों पर उसका पान करता है, तथापि साधारणतया उसके लिए मदिरा-पान वर्जित रहा है। नंददास ने 'द्विजवर' के लिए सुरापान करने के बाद पछताने की बात कही है जिससे स्पष्ट है कि उस वर्ग के लिए मदिरा-

सेवन वर्जित रहा है। सूरदास ने सुरापान किये जानेवाले स्थान को कलियुग का वास-स्थान बताया है। विशेष पर्वोत्सवों पर आनंदातिरेक में 'वारुणी' आदि का थोड़ा-बहुत प्रयोग सभी वर्ग के लोग करते हैं। परमानंददास ने 'होली' पर बलराम के वारुणी पीने की बात कही है जिसमें उनके नैन 'रसमसे', कच ढीले, पाग लटपटी और भौंहें चढ़ी-चढ़ी हो जाती हैं। सूरदास ने निशाचरों को सदा मदपान करनेवाला बताया है।

नशीले 'पेयों' में 'विजया' भी है जिसको पीकर ग्वालिनि के 'बौरी' हो जाने की बात परमानंददास ने लिखी है।

ङ. *तांबूल*—प्रतिदिन के चारों भोजनों—कलेऊ, मध्याह्न का भोजन, छाक, और बियारी—के अंत में कपूर और कस्तूरी से सुवासित 'तमोल' या 'पान' दिये जाने की बात सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। पुराने पीले पान अधिक स्वादिष्ट होते हैं। सूरदास ने एक पद में अपने आराध्य के लिए पुराने पानों के बीड़े लगवाये हैं। 'पान' या 'नागबेलि' चबाती मदमाती ग्वालिनि की भी चर्चा उन्होंने की है। 'प्रसाद' में पान का 'बीड़ा' दिये जाने का उल्लेख परमानंददास ने किया है।

अष्टछाप-काव्य में 'पान' या 'तँबोल' का उल्लेख दो रूपों में और हुआ है। प्रथम रूप में उसकी गणना दूब, दधि, रोचन आदि पूजन-सामग्री के साथ की गयी है और द्वितीय रूप में 'पान का बीरा' लेकर किसी महत्वपूर्ण कार्य करने का दायित्व लेना समझा जाता है। राम के सेवक हनुमान सीता की खोज कर लाने का दायित्व लेते समय 'तँबोर' लेते हैं। कंस भी कृष्ण को मारने का 'बीड़ा' सकटासुर को देता है।

समीक्षा—

दिन के प्रत्येक भोजन में खाद्य पदार्थों की जो विविधता अष्टछापी कवियों के उक्त वर्णन से ज्ञात होती है उससे स्पष्ट है कि केवल संपन्न व्यक्तियों के लिए ही उनका प्रबंध करना संभव रहा होगा। अष्टछापी कवि स्वयं संपन्न नहीं थे और न उनको संपन्नता की कामना ही थी; अतएव अपने परमाराध्य के लिए छप्पन प्रकार के व्यंजनों को प्रस्तुत करने के मूल में उनकी प्रेममयी भावना ही थी। पुष्टिमार्गीय सेवा में 'छप्पन-भोग' का महत्व होने से भी इस प्रकार के वर्णनों के लिए उनको प्रेरणा मिली होगी। जो हो, ऐसे उल्लेखों से यह तो स्पष्ट होता ही है कि वल्लभ-संप्रदायी मंदिरों की आर्थिक स्थिति बहुत उत्तम थी, जहाँ भोजनों का राजसी प्रबंध

सहज ही किया जा सकता था। आज भी कुछ मंदिरों में उस परंपरा का निर्वाह बड़े उल्लास से किया जाता है। अष्टछापी कवियों का तत्संबंधी वर्णन निस्संदेह उनको इस बीच में बराबर प्रोत्साहित करता रहा होगा। प्रतिदिन के सामान्य और पर्वोत्सवों के विशेष भोजन-आयोजनों में जिस प्रकार का अंतर जनसाधारण के घर में देखा जाता है, वैसा ही आयोजन इन मंदिरों में भी रहता है। सूरदास आदि ने जो सूचियाँ प्रस्तुत की हैं, वे विशेष आयोजनों की ही जान पड़ती हैं, जिनके आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि अष्टछाप के आराध्य के भोजन का प्रतिदिन किया जानेवाला प्रबंध भी असाधारण ही रहा होगा और भक्तों की श्रद्धा-भावना वैसा करके ही सदैव संतुष्ट होती रही है।

३. *वस्त्र*—

आवास और भोजन की प्रारंभिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् मानव को शरीर-रक्षा के लिए 'वस्त्र' चाहिए जो ऋतु, स्थान और पद या स्थिति के अनुकूल हों। दैनिक वस्त्रों के अतिरिक्त पर्वोत्सवों या संस्कारों के शुभ और हर्ष के अवसरों पर विशेष रूप से सुंदर और आकर्षक वस्त्र पहनने के सुख का अनुभव भी मानव-समाज सहस्रों वर्षों से करता आया है। अष्टछाप-काव्य में अपने परमाराध्य और आराध्या के तो सामान्य और विशेष, दोनों अवसरों के वस्त्रों की चर्चा बड़ी रुचि से की गयी है; शेष पात्रों के वस्त्रों में दीन सुदामा के 'कुचील चीर' या 'जीर्न बसन' और साधुओं के 'कंथा' की तरह ही उन व्रजवासियों के वस्त्रों की चर्चा भी बहुत चलते ढंग से की गयी है जिनके बीच में श्रीकृष्ण पले थे।

सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों में प्रथम दो का ही उल्लेख अष्टछाप-काव्य में अधिक है। 'ऊनी' वस्त्रों में ग्वाल-बालों की तरह कृष्ण के भी 'कंबर', 'कमरी' या 'कामरि' का उल्लेख कई पदों में मिलता है, जिसके एक एक रोम पर श्रीकृष्ण ने चीर-पटंबर तक वारने की बात कहकर मोटे वस्त्र की महिमा बतायी है।

वस्त्र के लिए अष्टछाप-काव्य में 'अंबर', 'चीर', 'पट', 'पटंबर' या 'पाटंबर', 'बसन', 'वस्त्र' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। बिना धुले हुए कपड़े को 'कोरा कापरा' कहा गया है। जिन सूती कपड़ों के वस्त्र अष्टछाप-काल में प्रसिद्ध थे, उनमें 'तनसुख', 'ताफता', 'खासा' आदि मुख्य हैं। दक्षिण के 'चीर' का भी उल्लेख सूरदास और गोविंदस्वामी ने किया है।

अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित वस्त्रों का अध्ययन करने के लिए उनको, मुख्य रूप से, चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—बालकों, पुरुषों, बालिकाओं और स्त्रियों के वस्त्र।

क. बालकों के वस्त्र—अष्टछाप-काव्य के अनुसार 'कुलह', 'कुलही' या 'कुलहिया', 'चौतनिया', या 'चौतनी', 'टिपारा' या 'टिपारो' और 'पाग', 'पगा', 'पगिया' या 'पागरी' आदि बालक सिर पर पहनते थे। अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों ने बालकों के अन्य प्रमुख वस्त्रों में उपरैना, कछनी या काछनी, चोलना, झगा, झगुलि या झगुलिया जो सादा या 'कंचन तगा' से बना होता था, तनिया, निचोल, पटुका, पामरी, पिछौरा या पिछौरी, पितंबर या पीतांबर, बागा या बागे, सूथन आदि का उल्लेख हुआ है।

ख. पुरुषों के वस्त्र—पुरुषों के वस्त्रों में मुख्य रूप से 'धोती' और 'पिछौरा' का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है। पटुका, पीतांबर आदि पुरुषों के अन्य वस्त्रों का उल्लेख बालकों के वस्त्रों के प्रसंग में हो चुका है।

ग. बालिकाओं के वस्त्र—अष्टछापी कवियों ने व्रज की किसी बालिका के वस्त्रों की चर्चा नहीं की है। परमानंददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी आदि जिन कवियों ने राधा के जन्मोत्सव, 'पलना' आदि का वर्णन किया है, वे भी वस्त्रों के प्रसंग में मौन रहे हैं। सूरदास ने कृष्ण से बालिका राधा का नहीं, किशोरी राधा का परिचय कराया है। उस अवस्था में राधा के केवल दो वस्त्रों का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। प्रथम है 'फरिया' और द्वितीय है 'चूनर' या 'चूनरिया'। 'फरिया' से आशय कहीं 'लहँगे' से लिया जाता है और कहीं 'ओढ़नी' से। सूरदास ने 'फरिया' का उल्लेख 'किशोरी राधा' के छोटे लहँगे के अर्थ में ही किया जान पड़ता है। किशोरियों के 'सूथन' और उसके 'नाराबंद' का उल्लेख भी सूरदास ने किया है। बालिकाओं के ओढ़ने के वस्त्रों में 'उढ़निया' या 'ओढ़नी' का उल्लेख तो कम हुआ है और 'चुनरिया', 'चूनरि' या 'चूनरी' का अधिक।

घ. स्त्रियों के वस्त्र—स्त्रियों के प्रमुख वस्त्र तीन हैं—लँहगा या सारी, कंचुकी और ओढ़नी जिनके अनेक प्रकारों का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है। 'लहँगा' साधारण रूप में वर्णित है और 'तिपाड़' का भी बताया गया है। 'सारी' का, जिसे 'सट' या 'साटक' भी कहते हैं, उल्लेख भी सामान्य और विशेष, दोनों रूपों में हुआ है; विशेष रूप में 'सुरँग' और 'पँचरँग' सारी की चर्चा मिलती है। चतुर्भुजदास ने 'चुनरी की सारी' और 'तनसुख की सारी' का उल्लेख किया है तथा सूरदास, परमानंददास तथा

कुंभनदास ने 'झूमक सारी' का। रेशमी साड़ी को सूरदास ने 'पटोरी' कहा है। सूरदास और परमानंददास की ब्रजबालाएँ लाल किनारे या 'ढिगनि' की सारी पहनती हैं। 'सारी', 'चुनरी', 'दुपटिया' आदि के पल्ले का किनारा 'खूँट' कहलाता है। 'सारी' तथा 'अंचलपट' से 'घूँघट' काढ़ने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

'कंचुकी' के लिए 'अँगिया', 'आँगी', 'कंचुकी', 'चोली' आदि शब्द अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं जिनमें मिलाई या बनावट के कारण प्रायः अंतर होता है। सूरदास ने 'कटाव की अँगिया' के साथ-साथ 'जड़ाऊ अँगिया' का भी उल्लेख किया है। परमानंददास 'कंचन-सूत' और 'रत्नों के धागे' वाली 'आँगी' का वर्णन करते हैं। सूरदास ने 'नील अँगिया' के साथ उसके आगे के तिकोने साज अर्थात् 'माड़नी' का 'राती' या 'लाल' होना भी कहा है, तो गोविंदस्वामी ने राधा को खुली कंचुकी की 'माँड़नि' पीली बतायी है। 'कंचुकी' में बंद लगे होते हैं जिनके कसने की बात सूर ने लिखी है। 'चोली' में सामान्यतया 'बंद' या 'तनी' नहीं होती, परंतु सूरदास ने 'चोली-बंद' तोड़े जाने की बात लिखी है तो परमानंददास और कुंभनदास ने उसमें 'तनी' का वर्णन किया है। परमानंददास और चतुर्भुजदास ने 'कटाव की अँगिया' की तरह 'कटाव की चोली' का भी उल्लेख किया है। गोविंदस्वामी के काव्य में कसीदा-कढ़ी 'कंचुकी' का वर्णन मिलता है। सूरदास ने 'अँगिया' में जुड़ी नाभि तक लटककर पेट को ढकनेवाली पट्टी का भी, जो 'अँनरौटा' कहलाती है, 'माया' के वर्णन में उल्लेख किया है जिसे देखकर असुर मद-माते हो जाते हैं।

स्त्रियों के ओढ़ने के वस्त्रों में 'उपरैना' का उल्लेख 'माया' के वस्त्रों में किया गया है। 'उपरना' गोपियों का भी वस्त्र था जिसे छीनकर कृष्ण द्वारा डालों में लटकाये जाने की बात सूरदास ने कही है। स्त्रियों के ओढ़ने के वस्त्रों में 'दुपटिया', 'उढ़निया' और 'चूनर' का उल्लेख बालिकाओं के वस्त्रों में हो चुका है।

समीक्षा वस्त्रों के संबंध में अष्टछापी कवियों के जो विचार ऊपर दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि अपने आराध्य के तत्संबंधी विवरण में ही उन्होंने विशेष रुचि ली है और सामान्यतया उनके उसी रूप का वर्णन उन्होंने किया है जो दीर्घकाल से भारतीय जनता का परिचित रहा है। हाँ, 'तनसुख', 'ताफ्ता', 'खासा'-जैसे कपड़ों से यह अवश्य सूचित होता है कि अष्टछाप-काल में इनका अच्छा प्रचार था। ऐसे उल्लेख ही वस्तुतः

सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं और अष्टछापी कवियों ने प्राय: सभी विषयों से संबंधित ऐसी सामग्री उपस्थित करके अध्येताओं के कार्य को सुगम ही नहीं, रोचक भी कर दिया है।

४. शृंगार-प्रसाधन—

शृंगार के सोलह अंग कहे गये हैं- उबटन, मंजन, मिस्सी, स्नान, सुवसन, केश-विन्यास, माँग भरना, अंजन, महावर, बिंदी, ठोढ़ी पर तिल बनाना, मेंहदी, गंध-द्रव्य, आभूषण, फूलमाला और पान रचाना। अष्टछाप-काव्य में पुरुषों के शृंगार में मुख्यत: छह अंगों, यथा: उबटन, स्नान, सुवसन, आभूषण, फूलमाला और पान रचाना, का वर्णन किया गया है। इनमें से 'मंजन' और 'मिस्सी' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं की गयी है और 'सुवसन' के संबंध में, इसी परिच्छेद में, पीछे लिखा जा चुका है। अतएव 'पुनरावृत्ति' से बचने के लिए स्त्री और पुरुष, दोनों के 'शृंगार' के शेष अंगों की चर्चा, अष्टछाप-काव्य के आधार पर, साथ-साथ की जायगी।

क. उबटन—अष्टछाप-काव्य के अनुसार माता यशोदा श्रीकृष्ण को स्नान कराने के पूर्व सदैव 'उबटन' लगाती हैं। 'उबटन' के स्थान पर कभी कभी 'तेल' लगाने की बात भी कही गयी है। राधा तथा अन्य सखियों के 'उबटन' लगाये जाने की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है।

ख. स्नान—'उबटन' या 'तेल' लगाने के पश्चात् 'स्नान' किया जाता है। सामान्य धार्मिक कृत्य के रूप में गंगा या जमुना-स्नान की चर्चा तो उसी प्रसंग में आगे की जायगी, यहाँ उस पर संक्षेप में ही विचार करना है। बालक कृष्ण के स्नान के लिए माता यशोदा ऋतु के अनुसार शीतल या उष्ण जल का प्रबंध करती हैं। स्त्रियों के स्नान का जल सुगंधित करने के लिए परमानंददास ने जल में 'केसर' घोले जाने की और नंददास ने 'अष्टगंध' मिलाये जाने की बात कही है।

ग. केश-विन्यास—स्त्रियों के लंबे, घने और काले बाल शोभा-वृद्धि में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सूरदास ने स्नान के समय गीली लट की शोभा का वर्णन किया है। राधा के बाल 'ऐंड़ी' तक पहुँचनेवाले बताये गये हैं। केशों को चमकीला बनाने के लिए उनमें 'तेल' लगाया जाता है। सूरदास ने गोपियों के बालों में 'कनक-कटोरा' भर 'तेल-फुलेल' डालने की बात कही है। सुगंधों और फुलेलों का उपयोग बालों को सुगंधित करने के लिए उन्होंने कराया है। बिना 'तेल' के बालों की 'लटें' बँध जाती हैं। विरहिणी

गोपियों को कृष्ण के प्रवास-काल में 'केश-विन्यास' नहीं सुहाता, बालों में वे तेल तक नहीं डालतीं, इससे उनके बालों की 'लटें' 'बट-लट' सी हो जाती हैं। घुँघराले बालों के लिए 'अलक' और 'कुंतल' शब्दों का ही नहीं, 'जुल्फों' तक का प्रयोग किया गया है।

सामान्यतया बाल 'वेणी' या 'चोटी' के रूप में बाँध लिये जाते हैं; उनका खुला रखना दुख, शोक, रोग, अरुचि आदि का सूचक माना जाता है। इसी से परमानंददास की विरहिणियों के बाल खुले रहते हैं, उन्हें बाँधने में उनको रुचि ही नहीं होती। बँधे हुए बालों के लिए अष्टछाप-काव्य में 'चोटी', 'बेनी', 'कबरी' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और उसे बनाने के लिए 'गूँथना', 'गुहना' आदि कहा गया है। चोटी में 'फुँदना' झूलने की बात भी परमानंददास ने लिखी है। 'बेनी' में चंपे आदि फूलों का गूँथा जाना उन्होंने कहा है और तीन लड़ों में गूँथी जाने वाली 'मेढ़ी' का भी उल्लेख किया है।

घ. *माँग*—बालों को सुलझाकर चोटी करके 'माँग' निकाली जाती है जिसे 'मंग', 'माँग', 'सीमंत' आदि कहा गया है। 'माँग' निकालने के लिए 'पाटी' या 'पटिया' 'पारना' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'माँग' को मोती आदि से भरने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। सधवा हिंदू स्त्रियाँ सेंदुर से 'माँग' भरती हैं जिसका उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में मिलता है।

ङ. *अंजन*—नेत्रों में 'अंजन' या 'काजल' लगने से सामान्यतया उनकी शोभा बढ़ जाती है। अष्टछापी कवियों ने भी सुंदरी गोपियों के नेत्रों में 'अंजन' या 'काजल-रेख' का वर्णन किया है और परमानंददास की विरहिणी गोपी ने तो निश्चय कर लिया है कि नंदनंदन के नयनों से 'नयना' मिलने पर अर्थात् उनका दर्शन होने पर ही नेत्रों में काजल लगाऊँगी।

च. *महावर*—पैरों में 'महावर' या 'जावक' लगाने की बात अष्टछापी कवियों ने अनेक स्थलों पर लिखी है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर यशोदा के पैरों में 'महावर' लगाने के लिए 'नाइन' को बुलाने की बात सूरदास कहते हैं। उनकी गोपियाँ तो शृंगार करते समय 'महावर' या 'जावक' लगाना कभी भूलती ही नहीं।

छ. *बिंदी और तिलक*—अष्टछापी कवियों की गोपियाँ 'सेंदुर' या 'बंदन', 'रोरी' या 'रोली', 'चंदन' आदि की 'बिंदियाँ' और 'मृगमद',

'केसर' आदि का 'तिलक' या 'टीका' लगाती हैं जिससे उनके गोरे मुख की शोभा और भी बढ़ जाती है। कभी कभी 'सिंदूर' आदि की बिंदी के साथ साथ 'कस्तूरी' या 'मृगमद' का आड़ा तिलक लगाये जाने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। कुंभनदास ने काजल का तिलक लगाया जाना लिखा है। सूरदास ने 'बिंदी' और 'तिलक' के चारों ओर लाल 'चूनी' भी लगाये जाने का वर्णन किया है। शुभ अवसरों पर 'गोरोचन' या 'रोचन' के तिलक लगाने की भी बात उन्होंने कही है।

ज. *तिल*—गोरे मुख की 'ठोढ़ी' पर काला 'तिल' सुंदर लगता है। अष्टछापी कवियों ने भी 'चिबुक' पर 'तिल' अथवा 'काजल-बिंदु' की शोभा का वर्णन किया है। सूरदास ने गोरे मुख पर श्यामल 'तिल' की प्राकृतिक शोभा की ओर संकेत किया है। चिबुक पर 'तिल' बनाने के अतिरिक्त कपोलों पर विविध रंगों से चित्र बनाये जाने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। कहीं कहीं कृष्ण के अंगों पर भी इसी प्रकार के चित्र बनाये जाने का उल्लेख मिलता है।

झ. *मेंहदी*—हाथ-पैरों में मेंहदी रचाने का प्रचलन भी बहुत समय से रहा है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने इसका उल्लेख किया है।

ञ. *गंध-द्रव्य*—स्नान के पश्चात् शरीर को विविध द्रव्यों से सुगंधित करना इस देश की स्त्रियों को बहुत प्राचीन काल से प्रिय रहा है। अष्टछाप-काव्य में भी उनकी इस रुचि की चर्चा अनेक स्थलों पर की गयी है। जिन सुगंधित द्रव्यों का इसके लिए उपयोग किया जाता रहा है, अष्टछापी कवियों के अनुसार वे अकारक्रम से ये हैं—अगरु, अरगजा, कपूर, कस्तूरी या मृगमद, केसर, चंदन, चोवा आदि।

४. *आभूषण*—स्त्री और पुरुष, दोनों सदा से आभूषण-प्रेमी रहे हैं और कभी-कभी तो आभूषण ही उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के द्योतक मान लिये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में भी आभूषणों का उल्लेख बहुत हुआ है जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि तत्संबंधी लौकिक वैभव के जिस आदर्शतम रूप की कल्पना मानव-समाज कर सकता था, वह सभी अष्टछापी कवियों ने अपने परम आराध्य और उनकी प्रियाओं के लिए सहज ही सुलभ कर दिया है। श्रीकृष्ण, राधा, गोपी तथा अन्यान्य स्त्रियों के आभूषण अष्टछापी कवियों ने 'कंचन' या 'हाटक' के साथ-साथ मोती, रत्न, मणि-माणिक्य, लाल आदि के बताये हैं। इन बहुमूल्य धातुओं

और रत्नों के अतिरिक्त कहीं-कहीं 'काँच की मनियाँ' आदि का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है; अस्तु। जिन आभूषणों की उसमें चर्चा है, उनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—पुरुषों के आभूषण और स्त्रियों के आभूषण।

क. *पुरुषों के आभूषण*—अष्टछापी कवियों ने पुरुषों में मुख्यत: श्रीकृष्ण के आभूषणों की चर्चा की है। अतएव इनको पुरुषों के आभूषण न कहकर वास्तव में बालक या किशोर के आभूषण कहना चाहिए। इनमें सबसे प्रमुख है सिर का 'मुकुट', जिसको सामान्यतया 'मोरमुकुट' कहा गया है। सूरदास ने सोने के 'जड़ाऊ मुकुट' का भी वर्णन किया है। माथे के आभूषण-रूप में परमानंददास ने घुँघरवाले बालों के साथ 'गजमोती' लटकने की बात कही है तो सूरदास ने सामान्य 'लटकन' का वर्णन किया है। 'कनछेदन' के अवसर पर कानों में 'दुर' नामक आभूषण पहनाये जाने की बात भी उन्होंने लिखी है; यों सामान्य रीति से कृष्ण सदैव 'मकराकृत स्वर्ण-कुंडल' ही कानों में पहने बताये गये हैं। श्रीकृष्ण के गले के आभूषणों में 'कठुला' और 'पदिक', 'हँसुली' और 'मोतीमाला' का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। बाहु के आभूषण 'अंगद' और 'केयूर' बताये गये हैं। बालकों के हाथ में 'चूरा' और 'पहुँची' भी अष्टछापी कवियों ने पहनायी है और कमर में 'करधनी', 'किंकिनी' या 'क्षुद्रघंटिका'। बालकों के पगों में 'नूपुर' और 'पैंजनिया' या 'पैजनी' पहनाये जाने का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

ख. *स्त्रियों के आभूषण*—सूरदास ने एक पद में स्त्रियों के 'द्वादश आभरणों' का उल्लेख किया है, परन्तु अन्यत्र उन्होंने तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने सोलह आभूषण धारण करने की बात कही है। स्त्रियों के बारह आभूषण ये हैं—शीशफूल, टीका, बाली, बेसर, कंठश्री, हार, बाजूबंद, चूड़ी, कंगन, अँगूठी, किंकिणी तथा नूपुर; परंतु थोड़े-बहुत अंतर से अष्टछाप-काव्य में वर्णित उनके भेदों और उनसे मिलते-जुलते आभूषणों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। स्थूल रूप से उनको नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—शीश, माथे, कान, नाक, गले, बाहु, कलाई, कटि और पैर के आभूषण।

अ. *शीश के आभूषण*—'टीका' या 'शीशफूल', 'माँगपाटी', 'चंद्रक' या 'चंद्रिका' आदि शीश के आभूषणों की चर्चा अष्टछापी कवियों

ने की है। इनके अतिरिक्त मोतियों की लड़ों से माँग को अलंकृत करने की भी बात उन्होंने लिखी है।

आ. माथे के आभूषण—अष्टछाप-काव्य में माथे के मुख्य आभूषण के रूप में 'बेंदी' या 'बेना' का उल्लेख हुआ है।

इ. कान के आभूषण—'अवतंस', 'कर्णफूल', 'खुटला', 'खुंभी' या 'खुभी', 'झुमका' या 'झूमक' आदि आभूषण कान के बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त 'ताटंक' भी कान का ही आभूषण है जिसे 'तरकी', 'तरिवन', 'तरयौना' आदि भी कहा गया है। 'बीरा' भी 'ताटंक' से मिलता-जुलता ही आभूषण है जिसका उल्लेख सूरदास ने किया है।

ई. नाक के आभूषण—अष्टछापी कवियों ने नाक के आभूषणों में 'नथ', 'बेसरि' या 'बुलाक' आदि का उल्लेख किया है।

उ. गले के आभूषण—स्त्रियों के सभी अंगों के आभूषणों से अधिक संख्या अष्टछाप-काव्य में गले के आभूषणों की मिलती है। एक एक आभूषण के कई कई नाम भी उन कवियों ने लिखे हैं। अकार-क्रम से गले के प्रमुख आभूषण और उनके लिए प्रयुक्त पर्यायवाची शब्द ये हैं—कंचनहार, कंठश्री या कंठसिरी, खँगवारी, गज-मोतिनि-हार, चौकी, टीक, तिलरी, तौक या तौकी, दुलरी, नौसरिहार, पदिक, मनिमयजटित हार, मुक्तामाल, मुक्तावली, मोतिसिरी, मोतीमाला, हमेल, हाँसु, हार, हारावली आदि।

ऊ. बाहु के आभूषण—अष्टछाप-काव्य में स्त्रियों की बाहु के आभूषणों में केवल तीन का प्रमुख रूप से उल्लेख हुआ है—टाँड़, बहूँटा और बाजूबंद।

ए. कलाई के आभूषण—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित कलाई के प्रमुख आभूषण और उनके लिए प्रयुक्त अन्य नाम इस प्रकार हैं—अँगूठी, कंकन या कंगन, कड़ा, चूरा, चूरी, पहुँचिया, पहुँची या पोहोंची, बलय, मुँदरी, मुँदरिया, मुद्रिका आदि।

ऐ. कटि के आभूषण—कटि का केवल एक प्रमुख आभूषण है 'करधनी' जिसके लिए 'किंकिनी', 'छुद्रघंटिका', 'छुद्रावली' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है। इनके अतिरिक्त 'करधनी' के लिए 'काँची', 'दाम', 'मेखला' और 'रसना' शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। इनमें से अष्टछाप-काव्य में 'मेखला' और 'हेमदाम' का उल्लेख प्रमुख रूप से मिलता है।

ओ. पैर के आभूषण—'घुँघरू', 'जेहरि', 'झाँझ', 'नूपुर', 'पायल', 'पैंजनी' आदि पैर के आभूषणों का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। इनके अतिरिक्त पैर के अँगूठे में 'अनवट' और उँगलियों में 'बिछिया' या 'बिछुवन' पहनने की बात भी कही गयी है।

ठ. फूल-माल—इस देश के शृंगार-प्रसाधनों में फूलों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है और व्रज में तो 'फूलमंडली' नाम से फूलों का उत्सव भी मनाया जाता है जिसमें श्रीकृष्ण और राधा का सारा शृंगार फूलों से ही होता है। इसकी चर्चा 'उत्सवों' के अंतर्गत आगे की जायगी। फूलों की 'माला' धारण करने की बात भी अष्टछापी कवियों ने बराबर लिखी है।

ड. पान रचाना—'पान' की कुछ चर्चा पीछे की जा चुकी है। अष्टछापी कवियों ने शृंगार-प्रसाधन के रूप में भी उसका वर्णन किया है. कपोल आदि पर जिसकी पीक का वर्णन 'खंडिता'-संबंधी पदों में मिलता है।

शृंगार में सहायक 'दर्पण'—शृंगार करने के लिए 'दर्पण' या 'आरसी' अत्यंत आवश्यक है। केवल यथोचित शृंगार करने के लिए ही नहीं, स्वरूप को देखकर स्वयं ही मुग्ध होने की मानवीय कामना भी 'दर्पण' या 'आरसी' देखने पर ही पूरी होती है। अष्टछापी कवियों में छीतस्वामी ने शृंगार के समय दर्पण दिखाये जाने का वर्णन किया है तो सूरदास ने शृंगार करके दर्पण में स्वप्रतिबिंब देखकर राधा के इतना मुग्ध होने की बात कही है कि वह उसे व्रज की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी समझकर उस पर कृष्ण के रीझने के डर से खीझने तक लगती है। सूरदास की यह कल्पना कितनी कमनीय और साथ ही कितनी अद्‌भुत है, सहृदय ही समझ सकते हैं।

समीक्षा—अष्टछापी कवियों के शृंगार - प्रसाधन के प्रमुख अंग, अलंकार-वर्णन से स्पष्ट है कि उन्होंने सामान्य लौकिक नर-नारियों की कल्पना से परे समृद्धिशाली नायक-नायिकाओं का चित्रण किया है। 'दान-प्रसंग' के एक पद में गोपियों के लगभग बीस आभूषणों की चर्चा श्रीकृष्ण ने की है जिससे खीझकर गोपियाँ कहती हैं कि जितना हम आज पहनकर आयी हैं, उससे दूना अभी घर पर है। निस्संदेह यह समृद्धि उन्हीं व्रजवासियों की हो सकती है जहाँ सिद्धियाँ और निधियाँ बिखरी फिरती हों। जो हो, अष्टछापी कवियों के शृंगार-वर्णन से व्रज के समकालीन युग की जन-मनोवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और उससे

उनके समाज के सर्वाधिक समृद्धिशाली वर्ग का चित्र भी सहज ही सामने आ जाता है।

५. व्यवहार की सामान्य वस्तुएँ—

अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित इस वर्ग में आनेवाली वस्तुओं को मुख्य रूप से पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—क. दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, ख. पात्र, ग. बैठने और सोने के उपकरण, घ. लिखने के उपकरण और ङ रंग।

क दैनिक उपयोग की वस्तुएँ—इस वर्ग में आने वाली वस्तुओं में सर्वप्रथम है 'इँडुरी' जिसके लिए अष्टछापी कवियों ने 'इँडुरिया', 'इँडुरी', 'ईडुरी', 'गिंडुरी', 'गेंडुरी', 'बहनिया' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इस वर्ग की अन्य वस्तुएँ ईंधन, उलूखल या ऊखल, कुठार, कुलुफ, चाक, चूल्हा, छुरी, छींका, दीप या दीपक, पिंजरा या पींजरा, मथनिया या मथनी अथवा मथानी, संदूख, साँकरि आदि हैं।

ख. पात्र—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित पात्र, स्थूल रूप से, दो वर्गों में रखे जा सकते हैं:—अ. दैनिक व्यवहार के पात्र और आ. अन्य पात्र।

अ. *दैनिक व्यवहार के पात्र*—इस वर्ग में कचौरा, कटोरा या कटोरी, कूँड या कूँडी, कोपर, झारी, ढकनिया, तष्टी अर्थात् तश्तरी आदि पात्र आते हैं जो दैनिक व्यवहार के लिए आवश्यक होते हैं। कमोर या कमोरी, गगरी, गगरिया, गागर, गागरिया या गागरी; थार, थारी, थाल, थालिक एवं दोहनी भी इसी वर्ग के पात्र हैं।

आ. अन्य पात्र—इस वर्ग के पात्रों में कमंडल या कमंडली, कलश, बेला, मटकी या मटुकिया अथवा मटुकी या माट, हँड़िया या हाँड़ी आदि पात्र आते हैं।

ग. बैठने और सोने के उपकरण—बैठने के उपकरणों में अष्टछापी कवियों ने आसन, चौकी, बैठकी, पटुली और पीढ़ा का उल्लेख किया है। सोने के उपकरणों में सर्वप्रचलित है चारपायी जिसको शिशु या बालकों के लिए 'खटोला' कहा गया है और वयस्कों के लिए खाट, पर्यंक या पलँग, पलिका, सेज या सेज्या। 'तकिया' और 'तल्प' भी सेज से संबंधित उपकरण हैं।

घ. *लिखने के उपकरण*—अष्टछाप-काव्य में अनेक स्थलों पर 'पत्र' या 'पाती' लिखने का उल्लेख हुआ है। ये पत्र 'कागद' या कागर' पर लिखे बताये गये हैं, यद्यपि प्राचीनकाल की तरह रुक्मिणी की 'लगन' 'ताड़पत्र' पर लिखी जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है। लिखने के अन्य उपकरण लेखनी और मसि हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

ङ. *रंग*—अष्टछापी कवियों ने अरुन या लाल, काले, कुसुंभी, गुलाबी, नीले, पीले, श्वेत या स्वेत, हरे आदि रंगों की चर्चा की है। रंगों के हल्के और गहरेपन को ध्यान में रखकर उन्होंने 'चटक', 'चुहि-चुहि', 'डहडहे' आदि भेदों का वर्णन किया है। एक ही वस्त्र का कई रंगों से रँगा जाना, जैसे 'पँचरँग' सारी का उल्लेख भी उनके काव्य में मिलता है। 'नवरंग' शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण का बहुनायकत्व सूचित करने के लिए किया गया है। 'केसर', 'टेसू', 'मजीठ' आदि से रंग बनाये जाने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है।

६. *धातु एवं खनिज पदार्थ*—

धातुओं में सर्वाधिक उल्लिखित है 'कंचन' जिसके लिए 'कनक', 'सोना', 'हाटक', 'हेम' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है। शुद्ध कंचन को 'बारह बानी' कहते हैं और मिलावटवाले को 'खोटा'। इन दोनों का प्रयोग सूरदास की गोपियों ने अपने और ऊधव के लिए किया है। 'सुहागा' डालकर सोना पिघलाये जाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में कही गयी है। परमानंददास की मानिनी राधा को मनाती हुई दूती कहती है कि 'सुहागा' डालकर तो 'जड़ कंचन'भी पिघला लिया जाता है, पर तू कैसी है कि इतनी खुशामद पर भी द्रवित नहीं होती। 'पारे' की सहायता से 'रासायनिक' द्वारा सोना बनाये जाने का उल्लेख सूरदास ने किया है। आँच में तपाकर सोने को पिघलाने की बात भी उनके ऊधव-गोपी-संवाद में कही गयी है। 'कंचन' के आभूषण तो बनते ही हैं, सूरदास जी ने नंद और बसुदेव जी द्वारा दान में दी गयी गायों के सींग भी 'सोने' से 'मढ़े' जाने का उल्लेख किया है।

सोने के अतिरिक्त प्रमुख धातुओं में 'चाँदी' या 'रजत' और 'ताँबे' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। 'चाँदी' या 'रूपे' से दाम या 'सिक्का' बनाने एवं 'मरूवा-मयारि' तथा दान में दी जानेवाली गायों

की पीठ, मढ़ी जाने की बात सूरदास ने लिखी है। ऐसी गायों के खुर 'ताँबे' से मढ़ा जाना कहा गया है।

अन्य धातुओं में अष्टछापी-कवियों ने 'काँच', 'पारा', 'लोहा' आदि का उल्लेख किया है।

खनिज पदार्थों में इंद्रनील या नीलम, पन्ना, पिरोजा, प्रवाल या विद्रुम, वज्र या हीरा, मरकत, माणिक्य, मुक्ता, लाल आदि रत्नों के साथ साथ अबीर, गेरू और फटिक या स्फटिक का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

७. *वाहन—*

जल, थल और आकाश, तीनों स्थानों में विचरण की कामना मनुष्य में आदि काल से रही है जिसके लिए विविध वाहनों का निर्माण वह करता आया है। अष्टछापी कवियों ने भी तीनों स्थानों के वाहनों की चर्चा की है। थल के वाहनों में प्रमुख है 'रथ' जिसके लिए 'स्यंदन' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। आर्थिक स्थिति के अनुसार 'कंचन रथ' होने की बात सूरदास ने लिखी है तो परमानंददास ने अपने आराध्य को हीरे-मोती जड़े 'रथ' में बैठाया है। 'सारावली' में घोड़े जुते 'रथ' के साथ साथ 'गज-रथ' का भी उल्लेख मिलता है। स्थल मार्ग से सामान लाद कर ले जानेवाली गाड़ी को 'शकट' कहा गया है जिस पर ब्रजवासी गोवर्द्धन-पूजा की सामग्री लादकर ले जाते हैं।

जल के वाहनों में 'नाव' या 'नौका' और 'जहाज' या 'पोत' अथवा 'बोहित' के साथ-साथ 'बेड़े' का भी उल्लेख हुआ है। आकाश-मार्ग का प्रमुख वाहन 'विमान' कहा गया है। देवगण विमानों पर बैठकर ही आकाश से फूल बरसाते हैं और राम की, लंका से अयोध्या-यात्रा भी विमान पर ही होती है। मानवों की 'विमान-यात्रा' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है, क्योंकि पाश्चात्य अविष्कारकों को वायुयान के निर्माण में अष्टछाप-काल तक सफलता नहीं मिली थी।

४ पारिवारिक जीवन-चित्रण

अष्टछाप-काव्य में पारिवारिक जीवन का जो चित्रण हुआ है, उसका अध्ययन मुख्यत: चार शीर्षकों के अंतर्गत करना उचित प्रतीत होता है—१. परिवार का संगठन और संबंधी, २. पारिवारिक जीवन-चर्या, ३. पारिवारिक शिष्टाचार और ४. पारिवारिक उत्सव तथा संस्कार।

१. परिवार का संगठन और संबंधी

प्राणी का जन्म परिवार में ही होता है जिसके अनेक सदस्यों से, उसके जन्मते ही आयु और पद के आधार पर अनेक प्रकार के संबंध स्थापित हो जाते हैं। अन्य प्राणियों में इन संबंधों की मर्यादा के निर्वाह की वैसी बुद्धि नहीं होती जैसी मानव में होती है। फलत: जहाँ अन्य प्राणी एक ही पीढ़ी के रक्त-संबंध का भी ध्यान नहीं रख पाते, वहाँ मानव तीन और चार पीढ़ियों के संबंधों का सरलता से निर्वाह कर लेता है। मनुष्य की यह मनोवृत्ति या बुद्धि ही आरंभ से संयुक्त परिवार के संगठन का मूल रही है। विभिन्न कारणों से रक्त का संबंध रखनेवाले व्यक्ति चाहे साथ न भी रह सकें, तथापि आयु और पद की मर्यादा का ध्यान परस्पर सबको सदा रहता है। वर्तमान युग में संयुक्त परिवारों की संख्या हर देश में घट जाने पर भी मनुष्य की यह मनोवृत्ति सर्वत्र देखी जाती है।

अष्टछाप-काव्य में जिन परिवारों का चित्रण है, उनमें तीन मुख्य हैं—दशरथ का संयुक्त परिवार, नंद का स्वतंत्र परिवार और श्रीकृष्ण का परिवार। इनके अतिरिक्त वृषभानु, सुदामा और कौरव-पांडवों के साथ-साथ कुछ अन्य पौराणिक परिवारों की चर्चा भी यत्र-तत्र की गयी

है। इन सभी परिवारों में सामान्यतया तीन पीढ़ियों के—दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता, सास-ससुर, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री तथा इनके समवर्गीय-स्त्री-पुरुषों की चर्चा की गयी है।

क. दादा-दादी—दादा के रूप में अष्टछाप-काव्य में कौरव-पांडवों के केवल भीष्म पितामह की चर्चा हुई है जिनके पद और जिनकी आयु का सम्मान उनके संबंधी ही नहीं, उनके संपर्क में आनेवाले सभी व्यक्ति करते हैं। अपने अंतिम समय में भीष्म पितामह युधिष्ठिर की विनम्रता देख कर सुखी होते हैं और बहुमूल्य उपदेश देते हैं। परमानंददास ने भी एक पद में 'पितामह' द्वारा 'मन्मथराज' का तिलक किया जाना लिखा है। किसी 'दादी' का चित्रण अष्टछाप-काव्य में नहीं है।

ख. नाना-नानी—मातृ-पक्ष में नाना-नानी का पद दादा-दादी के समकक्ष होता है। अष्टछाप-काव्य में श्रीकृष्ण के नाना उग्रसेन की चर्चा की गयी है, परंतु उनकी पत्नी का उल्लेख नहीं है। श्रीकृष्ण के प्रति नाना-नानी के सहज वात्सल्यपूर्ण व्यवहार के दर्शन भी अष्टछाप-काव्य में नहीं होते। 'नानी-नानन' (नाना) का प्रयोग अवश्य गोपियों ने एक पद में सामान्य अर्थ में किया है और कृष्णदास भी एक स्थल पर उन्हें स्मरण करते हैं।

ग. माता-पिता—माता जन्मदात्री होती है, अत: उसे जननी या जननि कहा जाता है। इसके अतिरिक्त 'माता' के लिए सात-आठ अन्य शब्द अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं, जैसे महतारी, मा, माई, मात, माता, मातु, माय और मैया। 'माता' की तुलना में 'पिता' का पद छोटा समझा जाता है; अत: इसके लिए चार-पाँच शब्द ही अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं; जैसे पिता, पितु, बाप, तात, गुसाई। 'पिता' के लिए 'गुसाई' शब्द अत्यंत आदरसूचक होने पर भी प्राय: अप्रचलित ही है।

घ माता-पिता के समवर्गीय—इस वर्ग में सास-ससुर, विमाता, चाचा-चाची या काका-काकी, ताऊ-ताई, बुआ (फूफी) फूफा, मामा-मामी, मौसा-मौसी आदि आते हैं। इनमें से अष्टछाप-काव्य में 'सास-ससुर', 'काकी', 'फूफी', 'मामा' और 'मौसी' का ही उल्लेख हुआ है। 'सास-ससुर' के लिए अष्टछाप-काव्य में मुख्य रूप से तीन शब्द आये हैं—सास, सासु, ससुर। 'फूफी' शब्द का प्रयोग कम हुआ है, राधा के विवाह के अवसर पर उसकी 'फूफी' और 'काकी' बड़ी ममता से उसे गले लगाती हैं। मथुरा का राजा कंस श्रीकृष्ण का 'मामा' था; परंतु उसके लिए

'मातुल' शब्द का प्रयोग अधिक किया गया है। किसी 'मामी' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है। 'मौसी' शब्द अवश्य दो-एक पदों में प्रयुक्त हुआ है।

ङ. *भाई-भावज*—'भाई' के लिए ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं—बंधु या बंधू, भाई, भैया, भ्रात, भ्राता, बीर और सहोदर। 'बड़े सहोदर' के लिए 'अग्रज' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त 'बड़े भाई' के लिए 'ददा' या 'दादा' शब्द भी व्यवहृत हुआ है। परमानंददास ने बलराम के लिए इसका प्रयोग कराया है। बड़े भाई की स्त्री को 'भाभी' या 'भावज' कहते हैं। यद्यपि लक्ष्मण के लिए 'देवर' शब्द का प्रयोग हुआ है, परंतु सीता के लिए 'भावज' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। राधा की 'भाभी' अवश्य उसके विवाह के अवसर पर गले से लगाकर गद्गद हो जाती है।

च. *बहन-बहनोई*—'बहनोई' की अपेक्षा 'बहन' शब्द के अधिक पर्यायवाची शब्दों को अष्टछाप के कवियों ने प्रयुक्त किया है जिनमें ये प्रमुख हैं—बहिन, भगिनि या भगिनी, भैनी, सखि, स्वसा या सुसा। 'छोटी बहन' के लिए 'अनुजा' शब्द का प्रयोग हुआ है। बहन के पति अर्थात बहनोई को 'भगिनी-भर्त्ता' कहा गया है। बहन की बेटी के लिए नंददास ने 'भनेजी' शब्द का प्रयोग किया है।

छ. *पति-पत्नी*—परिवार में पति-पत्नी का स्थान कदाचित् सबसे महत्वपूर्ण होता है और संभवतः इसी कारण साहित्य में उनके लिए प्रयुक्त शब्दों की संख्या भी सबसे अधिक होती है। 'पति' के लिए अष्टछाप-काव्य में जिन सारगर्भित शब्दों का प्रयोग हुआ है उनमें कंत, पति, पिय, प्रानपति, प्रीतम आदि प्रमुख हैं। पति सर्वत्र गृह का स्वामी होता है; इसलिए उसे 'गृहपति' भी कहा जाता है। 'पति' के लिए 'खसम' शब्द का भी प्रयोग सूरदास और परमानंददास ने किया है। 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्दों की संख्या 'पति' के लिए प्रयुक्त शब्दों से लगभग दुगुनी है। 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त प्रमुख शब्द ये हैं—अर्धंगी, घरनी, तिया, तिरिया, दारा, पत्नी, बनिता, बाम, भामिनी, सजनी, स्वामिनी, त्रिय आदि। पति-पत्नी के लिए प्रयुक्त होनेवाले उक्त शब्द गृहस्थी में उनकी स्थिति और अधिकार के भी द्योतक हैं। घर के आंतरिक क्षेत्र में पत्नी का ही पूर्ण अधिकार होता है; अतः उसे 'स्वामिनी', 'घरनी'

आदि की संज्ञा प्रदान की गयी है। पत्नी को पति की 'अर्धंगी' या 'अर्धांगिनी' भी कहा गया है।

ज. *देवर-देवरानी*—पति का छोटा भाई 'देवर' कहलाता है और उसकी पत्नी देवरानी। 'देवर' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है, 'देवरानी' की नहीं।

झ. *ननद-ननदोई*—पति की बहन को 'ननद' या 'ननदी' कहते हैं। पति की बहन का पति 'ननदोई' कहलाता है, परंतु अष्टछाप के कवियों ने इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

ञ. *पुत्र-पुत्रवधू*—पुत्र के लिए कुँवर, छोरा, छोहरा, डिंभ, ढोटा, तनय, नंदन, पुत्र, पूत, बालक, बेटा, लरिका, लला, लालन, सुत आदि शब्द अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार पुत्र-वधू को बहुरिया, बधु या बधू कहा गया है।

ट. *पुत्री-जामाता*—अष्टछाप के कवियों ने पुत्री को कुँवरि, तनया, नंदिनी, बिटिया, बेटी, लली, सुता आदि शब्दों से संबोधित किया है। पुत्री का पति 'जामाता' कहा गया है। परिवार में 'जामाता' का पर्याप्त आदर किया जाता है; वह 'मान्य' होता है। वसुदेव-देवकी के विवाह के अवसर पर जब कंस बहन-बहनोई का अपमान करने को आगे बढ़ता है तभी लोग उसको दोनों के 'मान्य' होने की बात समझाते और उनका अपमान करने से रोकते हैं।

ठ. *अन्य संबंधी*—समधी-समधिनि और सौति का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में और हुआ है जो ऊपर के वर्गों में नहीं आ सके हैं। अतएव उनकी चर्चा स्वतंत्र रूप से करना है।

अ. *समधी-समधिनि*—वर और कन्या पक्ष के गुरुजन परस्पर 'समधी' कहलाते हैं। 'समधी' वर्ग की पत्नियाँ 'समधिनि' कही गयी हैं।

आ. *सौति*—यों तो अनेक पौराणिक राजाओं की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है जिनकी कई-कई पत्नियाँ परस्पर 'सौति' थीं, स्वयं श्रीकृष्ण की ही अनेक रानियों का नामोल्लेख अष्टछाप-काव्य में है; परंतु वे परस्पर 'सौति' नहीं कही गयी हैं। इस शब्द का प्रयोग तो दो प्रसंगों में विशेष रूप से हुआ है। पहले प्रसंग में सीता वनवासिनी स्त्रियों से कहती हैं कि सासु की 'सौति' ने हमको वन भेजा है। दूसरे प्रसंग में 'सौति' शब्द का

प्रयोग गोपियों ने उस कुब्जा के लिए किया है जो श्रीकृष्ण का प्रेम पाकर अपने सौभाग्य पर इठला गयी है और 'चाम के दाम' चलाने जैसा अन्याय का कार्य कर रही है। दोनों प्रसंगों से स्पष्ट है कि अष्टछापी कवि 'सौति' का प्रयोग ईर्ष्यालु या कलहप्रिय सपत्नियों के अर्थ में करते हैं, सामान्य सपत्नी के अर्थ में नहीं।

इ. *अनेक संबंध-सूचक 'तात' शब्द*—अष्टछाप-काव्य में 'तात' शब्द का प्रयोग कई संबंधों के लिए हुआ है, जिनमें तीन मुख्य हैं—पिता, पुत्र और प्रभु।

त्र. *पिता के लिए*—श्रीराम छोटे भाई भरत को समझाते हुए कहते हैं—

चौदह बरस तात (पिता) की आज्ञा मोपै मेटि न जाई।

त्र. *पुत्र के लिए*—नंद जी पुत्र श्रीकृष्ण के संबंध में यशोदा से कहते हैं—

कहत नन्द जसुमति सुनि बात
अब अपने जिय सोच करति कत, जाके त्रिभुवन पति से तात।

ज्ञ. *प्रभु अथवा स्वामी के लिए*—पतित भक्त अपने 'प्रभु' से कहता है—

जानिहौं अब बाने की बात।
मोसौं पतित उधारौ प्रभु जौ, तौ मनिहौं निज तात।

ड. *संबंध-स्थान सूचक शब्द*—प्रमुख संबंधों के आधार पर संबंधियों के घर का भी नामकरण कर लिया जाता है। इसीसे नानी के घर को 'ननिहाल' या 'ननसार', लड़की के माता के घर को 'मायका' या 'प्यौसार' और ससुर के घर को 'पतिगृह' कहा गया है।

ढ. *परिवार के दास-दासी*—अत्यधिक संपर्क में रहने के कारण दासी, दास, सेवक आदि भी परिवार के ही अंग हो जाते हैं। इनके लिए अष्टछाप-काव्य में दास, दासी, भृत्य, लौंडी, सेवक आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

ण. *परिवार के अतिथि*—भारतीय परिवार में अतिथि का सत्कार विशेष आदर और श्रद्धा से किया जाता रहा है। अष्टछाप के कवियों ने भी 'अतिथि' के लिए 'पाहुनो' और उसके स्त्रीलिंग-रूप 'पाहुनी' का प्रयोग किया है।

२. *पारिवारिक जीवन-चर्या*—

अष्टछाप-काव्य में व्रजवासियों का ही अधिक वर्णन मिलता है। व्रज के अधिकतर निवासी जाति के अहीर थे। उनका मुख्य व्यवसाय गोपालन, दूध-दही बेचना आदि था। स्त्री-पुरुष दोनों को ही दिन भर कार्य करना पड़ता था। छोटे बालक भी गृह-कार्यों में सहायता करते थे।

क. पुरुषों के कार्य—पुरुष प्रात:काल उठकर गायों की सानी-पानी करके, खरिक में ले जाकर उन्हें दुहते हैं। सभी ग्वाले इस कार्य को बड़ी तत्परता से करते हैं। गोपों के प्रधान नंद जी भी अपनी गायों को स्वयं ही दुहते हैं और कृष्ण को भी वैसा करना सिखाते हैं। अन्य ग्वाल-बाल भी बालक कृष्ण को प्रात होते ही गाय दुहने आने को उत्साहित करते हैं। गायें दुहने का कार्य प्रात: और सायं, दोनों ही समय होता है। उसके बाद ग्वाल-बाल गायों को चराने ले जाते हैं। यह कार्य सभी ग्वालों के बालक करते हैं। नंदनंदन कृष्ण, भाई बलराम के साथ समस्त ग्वाल-बालों को लेकर गाय चराने जाया करते हैं।

ख. स्त्रियों के कार्य—स्त्रियों का कार्य प्रात:काल दही से माखन निकालना है। गोप-वधुएँ और बालाएँ दही मथने लगती हैं। घर-घर से 'रई' चलने की आवाज आती है। प्रात: ही राधा जब यशोदा के घर जाती है तो वह उससे दधि मथने के लिए कहती हैं। दधि-मंथन के पश्चात् गोप-बालाएँ गोरस, दधि या दही, माखन और घृत के माट भरकर बेचने के लिए निकटस्थ नगर मथुरा को जाती हैं। गोपियों का यही मुख्य दैनिक कार्य है जिसका वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। कृष्ण की दान-लीला मुख्यत: इसी कार्य से संबंधित है। दही बेचने जाती हुई गोपियों को जब कृष्ण दही-माखन खाने के लिए रोकते हैं तब गोपियाँ इसी कारण खीझती हैं कि उन्हें दही बेचने की देर हो रही है।

दूध-दही बेचकर घर लौटने के बाद गोपियों को अन्य गृह-कार्य भी करने पड़ते हैं। अपने कार्य में बाधा डालनेवाले श्रीकृष्ण से वे कहती हैं कि तुम भले ही खाली हो, हमें तो रात-दिन घर के कार्य करने पड़ते हैं। बाल-बच्चों की देखभाल के अतिरिक्त नदी से पानी भरने का काम भी स्त्रियों को ही करना पड़ता है। इसके लिए पास-पड़ोस की सब स्त्रियाँ एकत्र होकर पनघट जाती हैं। श्रीकृष्ण की पनघट-लीला में भाग लेने का सौभाग्य पनघट पर जानेवाली गोपियों को ही प्राप्त होता है।

३. पारिवारिक शिष्टाचार—

सामान्यतया पारिवारिक शिष्टाचार का विशद चित्रण प्रबंध-काव्यों में ही सुचारु रूप से होता है, गीतिकाव्य में कथा-प्रसंगों की न्यूनता के कारण उसके लिए कम अवकाश रहता है। प्राय: समस्त अष्टछाप-काव्य मुक्तक गेय रूप में होने के कारण पारिवारिक शिष्टाचार-परिचायक स्थल उसमें बहुत कम हैं। नंददास के जिन दो-एक काव्यों में—यथा भ्रमरगीत, रासपंचाध्यायी आदि—एक ही प्रसंग को अधिक विस्तार दिया गया है, वहाँ भी कथा के सामान्य पारिवारिक या लौकिक पक्ष पर कवि की दृष्टि न रहने के कारण शिष्टाचार के उदाहरण उसमें भी नहीं के बराबर ही हैं। अन्य विषयों की तरह इस विषय के भी सबसे अधिक उदाहरण अंधकवि सूरदास के ही काव्य में मिलते हैं।

यों तो पारिवारिक सुख-शांति के लिए सभी को एक दूसरे के साथ प्रेम और आदर का व्यवहार करना वांछनीय होता है, तथापि मर्यादा-निर्वाह की दृष्टि से परिवार में जो व्यक्ति आयु या पद में बड़े होते हैं, छोटों का उनके प्रति सम्मान दिखाना और शालीन व्यवहार करना ही 'शिष्टाचार' के अंतर्गत आता है। छोटों की व्यावहारिक शालीनता देखकर बड़ों को संतोष होता है और उनके हृदय से जो आशीर्वाद निकलता है वह छोटों के लिए सदैव कल्याणकारी समझा जाता है।

क. *अभिवादन के विविध रूप*—बड़ों के प्रति आदर प्रदर्शित करने का सबसे प्रचलित रूप है अभिवादन करना। पारिवारिक गुरु-जनों को अभिवादन करने के लिए अष्टछाप-काव्य में 'पालागन', 'प्रनाम' और 'जुहार' करने और 'हाथ जोड़ने' का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है।

अ. *पालागन*—अभिवादन के लिए 'पालागन' कहने में पूज्य व्यक्ति के चरण-स्पर्श करने का भाव निहित रहता है, यद्यपि यह कहने के साथ चरणों का स्पर्श किया नहीं जाता। इसी 'पालागन' को और स्पष्ट करके इसके स्थान पर कभी-कभी 'पायँ लगना' भी कहा जाता है। जो व्यक्ति सामने नहीं है उसके प्रति भी विनम्रता सूचित करने के लिए 'पालागन' या 'पायँ लगने' की बात अष्टछाप-काव्य में अनेक स्थानों पर कही गयी है। लक्ष्मण की भाभी सीता जब अशोकवाटिका में हैं तब हनुमान आकर उनका 'सविनय पालागन' सीता से कहते हैं। पंथी द्वारा नंदरानी ने देवकी को 'पालागन' कहलाया है। श्रीकृष्ण ऊधव के द्वारा पिता नंद और माता यशोदा के लिए 'पालागन' कहलाते हैं।

'पालागन' का शब्दार्थ लेकर स्त्रियाँ जिनके प्रति आदर रखती हैं उनके 'पायँ लगने' की बात कहती हैं। श्रीकृष्ण जब मथुरा जाते हैं और उनका मामा कंस उनसे शत्रुता का व्यवहार करता है, तब मथुरा के स्त्री-पुरुष उसके आचरण को अनुचित बताते हुए उसे अपनी बहन देवकी के 'पायँ लगने' की सलाह देते हैं। इसी प्रकार गोपियों ने ऊधव के द्वारा श्रीकृष्ण से 'पायँ लगने' की बात बड़ी अनुनय-विनय के साथ कहलायी है। श्रीकृष्ण के पास संदेश भेजती हुई यशोदा ऊधव से बिनती करती हुई 'पा लगने' की और देवकी के प्रति 'पालागन' करने की बात कहलाती है। जिस ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पास प्रेम-पत्र भेजती हैं ; पहले 'पालागौं' कहकर उसका अभिवादन करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती हैं।

'पालागन' कहने या 'पायँ लगने' का ही एक रूप है 'चरण' स्पर्श करना या पकड़ना। पूज्य व्यक्ति के प्रति सामान्य स्थिति में श्रद्धा प्रकट करने के लिए तो 'चरण स्पर्श' करने की बात कही ही जाती है, परंतु भावावेश की दशा में विनयी व्यक्ति पूज्य पुरुष या स्त्री के 'चरण पकड़' भी लेता है। श्रीकृष्ण का संदेश लेकर जब अक्रूर पांडवों के पास जाते हैं, तब श्रद्धा के आवेश में वे उनकी माता कुंती के चरण 'पकड़' लेते हैं। इसी प्रकार अत्यधिक भावावेश में चरणों से लिपट जाने की बात अष्टछाप-काव्य में कही गयी है। चित्रकूट में अग्रज राम के दर्शन करते ही अनुज भरत भक्ति-विह्वल होकर उनके चरणों से 'लिपट' जाते हैं।

आ. *प्रणाम या प्रनाम*—कभी कभी 'पालागन' के स्थान पर 'प्रनाम' शब्द भी कहा जाता है। अष्टछापी कवियों ने सामान्यतया इस शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों से कराया है जो सादर हैं। चित्रकूट में भरत और शत्रुघ्न अयोध्यावासियों के साथ जब राम, सीता और लक्ष्मण से विदा लेते हैं तब दोनों भाई अग्रज को 'प्रनाम' करते हैं। ऊधव द्वारा पत्र और संदेश भिजवाते हुए श्रीकृष्ण सबसे पहले पिता नंद को 'प्रनाम' कहलाते हैं।

इ. *जुहार*—पारिवारिक शिष्टाचार के रूप में 'जुहार' करने की बात अष्टछाप-काव्य में कम मिलती है। पंथी के द्वारा संदेश भेजते हुए नंद महर, श्रीकृष्ण की माता देवकी के प्रति 'जुहार' कहलाते हैं।

ई. *हाथ जोड़ना और बिनती करना*—छोटों द्वारा बड़ों को किये गये प्रत्येक अभिवादन में यों तो विनय का भाव निहित रहता ही है और

उसका प्रदर्शन प्रायः हाथ जोड़कर किया जाता है, परंतु कभी - कभी, विशेप कर बड़ों को पत्र लिखते समय, इन बातों का स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। ऊधव के द्वारा नंद-यशोदा को पत्र भिजवाते समय श्रीकृष्ण पिता से 'बिनै' और माता से 'कर जोरने' की बात लिखते हैं।

ख. *आशीर्वाद के विविध रूप*—अभिवादन—पालागन, प्रणाम, जुहार आदि—के उत्तर में गुरुजन अथवा जिन्हें अभिवादन किया गया है वे, आशीर्वाद या असीस देते, आलिंगन करते और प्रीति जनाते हैं।

अ. *आशीर्वाद या असीस*—छोटे जब अभिवादन करते हैं तो बड़े उनकी कल्याण-कामना करते हुए प्रत्युत्तर में आशीर्वाद या असीस देते हैं। किसी स्नेह-भाजन को जब संदेश कहलाया जाता है, तब भी आशीर्वाद या असीस देकर अपनी बात कहने की प्रथा भारतीय परिवार में सदा से प्रचलित रही है। लक्ष्मण जब सीता को 'पालागन' कहलाते हैं तब उनके सामने न रहने पर भी सीता अपने सूर्यवंशी देवर को सूर्यदेव को साक्षी करके असीस देती हैं। श्रीकृष्ण को ऊधव द्वारा संदेश भेजती हुई यशोदा भी सबसे पहले उनको असीस ही कहलाती हैं।

आ. *आलिंगन करना (कंठ लगाना)*—समवयस्क स्त्री-पुरुष सखा-सखियों को भावावेश में प्रायः कंठ, गले या छाती लगाकर अर्थात् उनका आलिंगन करके अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं। कभी कभी प्रणामकर्ता यदि विनयावेश में अथवा अन्य किसी कारण से पैरों पर इस प्रकार गिर पड़ता है कि स्वयं नहीं उठता तब आयु में बड़ा व्यक्ति उसे उठाकर छाती या गले से लगा लेता है। चित्रकूट में पहुँचकर भरत जब अग्रज राम के चरणों से लिपट जाते हैं तब राम उन्हें उठाकर हृदय से लगा लेते हैं। ऊधव द्वारा व्रजवासियों को भिजवाये गये पत्र में अपने सखाओं गोप-ग्वालों को श्रीकृष्ण ने 'हिलि-मिलि कंठ लगाने' की बात लिखी है। इसी प्रसंग में श्रीदामादि ग्वालों को 'कौरौ भेंटने' की बात भी उन्होंने कही है। श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये अक्रूर पांडवों को बड़े प्रेम से 'गले लगाते' हैं।

इ. *प्रीति जनाना*—जो प्रेम या स्नेह-भाजन सामने नहीं होते, उनको किसी प्रकार का संदेश भेजते या पत्र लिखते समय उनके प्रति 'प्रीति जनाने' की बात अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है जिसका तात्पर्य है संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों को सप्रेम स्मरण करना। ऊधव द्वारा भेजे गये पत्र में व्रज के नर-नारियों के प्रति श्रीकृष्ण 'प्रीति जनाते' हैं।

ग. *पत्र-संबंधी शिष्टाचार*—आत्मीय जनों के प्रवास-काल में पत्र-व्यवहार की आवश्यकता विशेष रूप से होती है जिससे अपना कुशल-समाचार दिया जा सके और दूसरों का जाना जा सके। पत्र लिखते समय यों तो शिष्टाचार का निर्वाह करने के लिए अभिवादन के सामान्य रूप ही व्यवहृत होते हैं, तथापि पत्र-प्रेषक और पत्र-प्राप्तकर्त्ता, दोनों के लिए उनके अतिरिक्त कुछ अन्य बातों का भी निर्वाह करना वांछनीय होता है। यद्यपि यह ठीक है कि पत्र-लेखन का जो सौंदर्य गद्य में परिलक्षित होता है वह काव्य, विशेषत: गीतिकाव्य, में नहीं; तथापि शिष्टाचार-संबंधी कुछ संकेत पद्य में लिखे गये पत्र में भी रहते ही हैं। अष्टछाप काव्य में पत्र-प्रेषक के लिए शिष्टाचार की जिन बातों का परोक्ष रूप से उल्लेख किया गया है, उनमें सबसे प्रमुख बात है स्वयं ही पत्र लिखने की। किसी परम आत्मीय जन को दूसरों से लिखवाकर पत्र भेजना शिष्टाचार के प्रतिकूल समझा जाता है और स्वयं पत्र लिखना उसके अनुकूल। श्रीकृष्ण मथुरा जाने पर नंद-यशोदा और व्रजवासियों को ऊधव द्वारा जो पत्र भेजते हैं वह उन्होंने 'स्वयं बनाकर' अर्थात् बड़ी आत्मीयता के साथ लिखा है। इसी प्रकार ऊधव को व्रज जाते सुनकर देवकी-वसुदेव भी नंद-यशोदा को 'आपु सौं पाती' लिखते हैं। राधा और अन्य गोपियों को कुबिजा ने भी अपने हाथ से ही पाती लिखी है।

अपने प्रियजन का पत्र उसके मिलन से कम सुखदायी नहीं होता। इसी कारण पत्र की प्राप्ति पर किया गया व्यवहार उसके प्रति हमारे व्यवहार का द्योतक होता है। परोक्ष रूप में किसी के पत्र के प्रति किये गये हमारे आचरण का संबंध शिष्टाचार से भी होता है। किसी के पत्र को छाती से लगाना, किसी को सर-आँखों से लगाना, किसी को स्वयं पढ़ना, किसी को दूसरे से पढ़वाना, किसी को ललककर दोनों हाथ से लेना, किसी को बायें हाथ में लेना आदि बातें पत्र-प्रेषक के प्रति हमारे व्यवहार के साथ-साथ हमारे संबंध की घनिष्ठता-अघनिष्ठता की भी द्योतक हैं। अष्टछाप-काव्य में जिन दो-तीन पत्रों की चर्चा है उनमें व्यावहारिक शिष्टाचार की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है गोपियों को लिखा गया श्रीकृष्ण का पत्र जिसकी सूचना पाते ही व्रजबालाएँ घर से दौड़ पड़ती हैं, उसे बार-बार छाती से लगाती हैं, नेत्रों से लगाती हैं; फिर भी उनकी प्रेम-तृषा नहीं बुझती। अपने प्रियजन के हाथ की लिखी हुई 'पाती' पाकर हमें वास्तव में बड़ा संतोष होता है; क्योंकि इससे अपने

प्रति प्रियजन की आत्मीयता का परिचय पाकर हम आश्वस्त हो जाते हैं। इसीलिए गोपियाँ स्वयं श्रीकृष्ण के हाथ की लिखी 'पाती' पाकर अत्यंत प्रफुल्लित हो जाती हैं, उसकी चर्चा बड़े गर्व से करती फिरती हैं और कोई-कोई गोपी तो स्वयं श्याम के ही पत्र लिखने की बात बार-बार सुनने के लिए ऊधव से पूछती है—क्या यह 'पाती' कन्हाई की ही लिखी हुई है ?

४. *संस्कार*—

'संस्कार' से आशय शास्त्रविहित उन मांगलिक कृत्यों से है जो मानव के सर्वांगीण विकास के लिए किये जाते हैं। इन कृत्यों का आरंभ जन्म के पूर्व से ही हो जाता है और अंत शरीरांत के साथ होता है। संस्कारों की संख्या के संबंध में भारतीय संस्कृति के विद्वान एकमत नहीं हैं; किसी ने मनु के अनुसार उनकी संख्या बारह मानी है और किसी ने सोलह। सोलह संस्कारों के नाम ये हैं—१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नामकरण, ६. निष्क्रमण, ७. अन्नप्राशन, ८. चूड़ाकर्म, ९. कर्णबेध, १०. उपनयन, ११. वेदारंभ, १२. समावर्त्तन, १३. विवाह, १४. वानप्रस्थ, १५. संन्यास और १६. अंत्येष्टि।

उक्त संस्कारों में प्रथम तीन प्रारंभिक हैं जिनका स्पष्ट वर्णन अष्टछाप-काव्य में नहीं मिलता। बंदीगृह में जन्म होने के कारण कृष्ण के ये प्रारंभिक संस्कार हुए भी नहीं थे। इसी प्रकार समावर्त्तन, वानप्रस्थ, संन्यास आदि संस्कारों का वर्णन भी अष्टछाप-काव्य में नहीं है। अतएव जिन संस्कारों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है, वे दस हैं—१ जातकर्म, २ नामकरण, ३ निष्क्रमण, ४ अन्नप्राशन, ५ कर्णवेध, ६ चूड़ाकर्म, ७ उपनयन, ८ वेदारंभ, ९ विवाह और १० अंत्येष्टि। इन संस्कारों का सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। परमानंददास के काव्य में भी 'अंत्येष्टि' को छोड़कर शेष संस्कार वर्णित हैं; केवल 'निष्क्रमण' संस्कार का उल्लेख उन्होंने 'भूमि-उपवेशन' के रूप में किया है। अष्टछाप के शेष कवियों ने दो-एक संस्कारों का ही वर्णन किया है जिनमें राधा और कृष्ण अथवा किसी एक के जन्म-संस्कार का वर्णन तो सभी के काव्यों में मिलता है। छीतस्वामी और चतुर्भुजदास ने केवल जन्म-संस्कार का वर्णन किया है। कुंभनदास ने जन्म के साथ सगाई अथवा विवाह-संस्कार की चर्चा संक्षेप में की है। नन्ददास के काव्य में जातकर्म, नामकरण, विवाह और

अंत्येष्टि, चार संस्कारों का उल्लेख हुआ है। गोविंदस्वामी ने केवल जन्म के अवसर पर 'बधाई' और 'सोहिले' गाये हैं।

शास्त्रविहित उक्त संस्कारों की भाँति ही इनसे मिलते-जुलते कुछ और कृत्य भारतीय परिवारों में अत्यंत निष्ठा से किये जाते हैं जिन्हें 'कुलाचार' कह सकते हैं। उदाहरणार्थ छठी और वर्षगाँठ को संस्कारों के रूप में तो मान्यता नहीं प्रदान की गयी, फिर भी ये उत्सव संस्कारों के समान ही अत्यंत उत्साह से मनाये जाते हैं। अधिकांश अष्टछापी कवियों ने 'छठी' का और कनछेदन के पूर्व 'वर्षगाँठ' का वर्णन किया है। जन-समाज में इस प्रकार की परम्परागत रीतियों की मान्यता शास्त्र-सम्पादित आधारों से कम नहीं होती और इनके वर्णन से तत्कालीन व्रज-संस्कृति का अच्छा परिचय मिल सकता है। अतएव विषय की स्पष्टता और क्रमबद्धता के लिए उक्त संस्कारों के वर्णन के साथ 'छठी' और 'वर्षगाँठ' को भी सम्मिलित करके इनकी भी चर्चा क्रमानुसार की गयी है।

क. *जन्मोत्सव*—अष्टछाप-काव्य में राम, कृष्ण, राधा तथा गोसाईं गिरिधर के जन्म का वर्णन हुआ है। सूरदास ने श्रीकृष्ण के जन्म संस्कार का वर्णन बहुत विस्तार से किया है। सर्वप्रथम वे देवकी और यशोदा की गर्भावस्था का वर्णन करते हैं। हरि के गर्भ में आते ही देवकी का शरीर उजला (या पीला) होने लगता है और वह हर समय अलसायी-सी रहती है। इसी प्रकार यशोदा की गर्भावस्था के वर्णन में आठ मास चंदन और नवें में कपूर पीने की बात उन्होंने लिखी है। दसवें मास श्रीकृष्ण का जन्म होता है। नंददास ने भी गर्भावस्था में देवकी के प्रकाशपूर्ण तथा हर्ष और शोकयुक्त होने की बात लिखी है।

पुत्र-जन्म की शुभ सूचना पाकर जाति-बंधु और ग्वाल-बाल बधाई देने आते हैं। उनकी प्रसन्नता का ओर-छोर नहीं है। कोई मंगल-सूचक दधि-दूब सिर पर रखता है, कोई आवेश में पैरों पर लोटा जाता है, कोई परस्पर बधाई देता है और कोई प्रसन्नता से गा उठता है। कोई नाचता-गाता, कलोल करता और परस्पर 'हरद दही' छिड़कता है तथा कोई 'दधि-गोरोचन-दूब' दूसरे के शीश पर रखकर शिशु की मंगल-कामना करता है। स्त्रियों का हर्ष तो और भी बढ़ा-चढ़ा है। अत्यधिक प्रसन्नता के कारण अंचल तक सम्हालने की उनको सुधि नहीं है और वे फूल बरसाती हुई नंद महर के घर भागी चली जा रही हैं। उनके आगमन की सूचना पाते ही सबको भवन में बुला लिया जाता है। पुत्र की

सलोनी सूरत देखकर सब उसके पैर पड़ती हैं, बार बार उसका मुँह खोल-कर देखती और प्रफुल्लित होकर शुभ आशीस देती हैं। 'हरद-दही' आदि परस्पर छिड़कने में भी वे पुरुषों से पीछे नहीं हैं। व्रजजन बजाते-गाते तरह-तरह के उपहार लेकर शिशु का मुख देखने आते हैं। बधाई के लिए लाये हुए दूध, दही, तेल आदि की मात्रा इतनी अधिक है कि व्रज में उनकी सरिता बहने लगती है। कंचन-कलशों को केशर-चर्चित करके बंदनवारें बाँधी जाती हैं।

नंद महर के घर पुत्र होने पर दाई अपने नेग के लिए झगड़ा करती हुई यशोदा से कहती है कि मणि-जटित हार मिल जाने पर ही मैं 'नार-छेदूँगी', पहले नहीं। हार पाकर दाई नार छेद कर बधाई देती है और कंचन के आभूषण तथा मोतियों से भरा थाल लेकर जाती है। इस अवसर पर होम, द्विज-पूजा और घर लीपने का कई बार उल्लेख है। बारिनि या मालिनि बंदनवार और तोरना बाँधती है और हार गूँथती है।

ख. *जातकर्म और जन्मोत्सव*—बालक का जन्म होने पर पिता द्वारा देव- पितर-पूजन, ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवचन आदि जो कार्य किये जाते हैं वे 'जातकर्म' कहलाते हैं। श्रीकृष्ण का जन्म होने पर नंद जी ब्राह्मणों को सादर बुलाते हैं जो उनके यहाँ पधार कर वेद-पाठ करते, पितर और देव-पूजन कराते तथा 'स्वस्तिवचन' पढ़कर आशीर्वाद देते हैं। पुत्र के जन्म-लग्न की गणना करके आचार्य गर्ग द्वारा जन्मपत्री बनाये जाने की बात भी इसी प्रसंग में आती है। नंद जी स्नान करके कुश हाथ में लेकर नांदी मुख श्राद्ध और पीतरों का पूजन करते हैं। इसके पश्चात् वे चंदन घिसकर विप्रों का तिलक करते और उनको तथा गुरुजनों को वस्त्रादि पहनाकर उनके चरण छूते हैं।

इसके अनंतर दान का क्रम आरंभ होता है। सबसे पहले ब्राह्मणों को बहुत सी अन्य सामग्री के साथ दो लाख गायें दान में दी जाती हैं। जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर नंद जी अपने इष्ट-मित्रों और बंधु-बांधुओं को सादर निमंत्रित करते हैं और कपूर-चंदन-कस्तूरी का तिलक लगाकर अपनी प्रीति एवं प्रसन्नता प्रकट करते हैं। इस प्रकार उनके द्वार पर भारी भीड़ एकत्र हो जाती है जिसमें जाति बंधुओं के साथ-साथ पुरजन, प्रजाजन, याचक, बंदीजन आदि सभी हैं। नंद जी सभी को यथायोग्य गाय, वस्त्र, आभूषण, नग-रत्न, पुहुप-माल, चंदन, दूब-रोचना आदि देकर सबका सम्मान करते हैं। याचकों और ढाढ़ी-ढाढ़िनि को इतना अधिक सामान

दान में मिलता है कि वे उसे गयंद पर लादकर ले जाते हैं। अनेक याचक तो मार्ग में जाते हुए 'राजा' के समान प्रतीत होते हैं; क्योंकि वे कंचन-मणि-भूषण पहने हैं और नाना प्रकार के वस्त्र धारण किये हैं। कपिला धेनु, सींगों को सोने से मढ़ाकर रत्न, भूमि, वस्त्राभूषण आदि के साथ विप्रों को दान में दी जाती हैं।

राधा के जन्म पर वृषभानु-भवन में भी याचकगण मणि, कंचन, मुक्ता, पट-भूषण आदि दान में पाते हैं।

कुछ भारतीय परिवारों में शुभ संस्कारों के अवसर पर गाली गाने की प्रथा है। श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर 'गाली', 'गारी' या 'गारि' भी गायी गयी हैं। ढाढ़ी-ढाढ़िनि भी मनचाहा नेग पाकर बधावा और बकसीस गाते हैं।

जिस स्थान पर बालक का जन्म होता है वह 'सूति-गृह' कहलाता है। उसके द्वार पर स्त्रियाँ सींक से सथिया (स्वस्तिक चिन्ह) बनाती हैं। पुत्र-जन्म के शुभ अवसर पर असीम प्रसन्नताद्योतक उक्त कार्यों के साथ-साथ ताल, मृदंग, मुरज, बेनु, पखावज, ढोल, तूर, दमामा, भेरी, विस्वान, सहनाई आदि विविध वाद्य बजते हैं।

इनके अतिरिक्त घर-घर से 'टीका' आता है। गोपगण नाना प्रकार के वस्त्राभूषण और उपहार लेकर दूध दही आगे करके लाते हैं। परमानंददास ने राम-जन्मोत्सव पर लोगों के पान-फूल, उपहार आदि लेकर आने का वर्णन किया है।

कृष्ण-जन्म पर केवल व्रजवासी ही नहीं, देवता भी प्रसन्न होकर पुष्प-वर्षा करते और नगाड़े बजाते हैं। अष्टसिद्धि और नवनिधि जन्मोत्सव में भाग लेती हैं। वे उनका द्वार बुहारती और 'सथिये' रखती हैं।

ग. *छठी*—छठी (सं० षष्ठी) का उत्सव जन्म के छठे दिन होता है। यह उत्सव मुख्यत: सूतिगृह की स्वच्छता का है। स्त्रियाँ स्वयं इसके प्रमुख कार्य कर लेती हैं। बच्चे की बुआ 'सोबर' (सं० शोभागृह) के द्वार पर गोबर से लिपे चौक पर गोबर और जौ से सथिया (सं० स्वस्तिका) रखती है और बच्चे के काजल लगाती है। वह बच्चे के लिए वस्त्र, खिलौने आदि लाती है और शिशु की जननी (अपनी भावज) से 'नेग' के लिए झगड़ती है।

कृष्ण के जन्म के छठे दिन व्रजनारियाँ और यशोदा उनकी छठी

मनाती हैं। सभी स्त्रियाँ इकट्ठी होकर 'सोहर' गाती और 'काजर-रोरी' से छठी का 'चार' करती हैं। नाइन यशोदा के पैरों में महावर लगाती है और पुरस्कार में 'लाख टका' और 'झुमका' पाती है। व्रजनारियाँ बधाई लेकर आती हैं। इस अवसर पर सोहिले, बधाई तथा मंगलचार गाने का भी वर्णन हुआ है। 'सोहिलो' का लोक-गीतों में महत्वपूर्ण स्थान है। इसे जनबोली में 'सोहर' कहा जाता है। इस गीत में ननद, सास, जिठानी, देवर आदि के 'नेगों' और उस समय पर होनेवाली प्रसन्नता का उल्लेख विशेष रूप से होता है। इसी प्रकार 'बधाई' के गीत मांगलिक अवसरों पर गाये जानेवाले बधाई-सूचक होते हैं। राधा के जन्म पर रावलि में और कृष्ण-जन्म पर नंद महर के यहाँ बधाई गायी गयी है। कृष्णदास ने चंद्रावली जी की बधाई गायी है और कुंभनदास ने राधा का 'सोहिलो' गाया है। सूरदास कृष्ण-जन्म पर और गोविन्दस्वामी राम-जन्म पर 'सोहिलो' गाते हैं। घर-घर से सब स्त्रियाँ टोल बनाकर सजधज कर आती हैं और 'सोहिलो' गाती हैं।

छठी के अन्य मांगलिक कार्यों में 'मंडप रचाने', 'घृत-दीप' जलाने और अंबा देवी के सामने मंगल-दीप तथा 'लेखनी-मसिदानी' रखने आदि का उल्लेख भी 'परमानंदसागर' में मिलता है। उसके एक पद में चंडी का पूजन 'खंग' और 'लेखनी-मसिदानी' सहित द्विजवर द्वारा कराने का उल्लेख भी 'छठी' के उत्सव के अंतर्गत हुआ है।

इस अवसर पर शिशु की कल्याण-कामना के लिए कुलदेवी या देवता की पूजा भी की जाती है। माता यशोदा कृष्ण को नहलाकर कुल-देवी के पाँव पड़ाती और विविध व्यंजनों का भोग लगाती हैं। पीले वस्त्राभूषण धारण किये, 'ऐपन' की पुतली-सी बनी व्रजनारियाँ बधाई लेकर आती और नंद-पुत्र के तिलक करती हैं। छठी के अवसर पर 'चहरका' नामक गीत-विशेष भी गाया जाता है जिसमें बच्चे की माता को 'गालियाँ' दी जाती हैं। यह गीत प्राय: रात में सबसे बाद में गाया जाता है।

उक्त आचारों के पश्चात् गर्ग मुनि शिशु कृष्ण के उच्च ग्रहों की स्थिति और प्रभाव की व्याख्या करके उनके परमोज्ज्वल भविष्य की शुभ सूचना देते हैं।

घ. *नामकरण*—इस संस्कार में बालक का नाम रखा जाता है और यह जन्म के दसवें या बारहवें दिन सम्पन्न होता है। इसी से इस संस्कार को जनबोली में 'दष्ठौन' (सं० दशोत्थापन) या 'बरही' भी कहते

हैं। इस संस्कार को सम्पन्न करने के पूर्व मुहूर्त निकलवाया जाता है। नंद के घर बलराम और श्रीकृष्ण के नामकरण-संस्कार के लिए मुनिवर गर्ग जी आते हैं। नंद जी कंस के भय से चुपचाप 'स्वस्तिवाचन' और 'अग्निहोत्र करके' बालकों का नामकरण-संस्कार करने का निवेदन करते हैं। परमानंददास ने इस अवसर पर 'मोतियां से चौक पूरने' तथा 'मंगलगान करने' का भी वर्णन किया है। नंद जी के सबको सावधान करने के पश्चात् भी नामकरण-संस्कार के दिन गोकुल में बड़ा कोलाहल होता है। गर्ग जी नामकरण के अवसर पर कृष्ण के विमल यश का वर्णन करते हैं। रोहिणी-पुत्र बलराम के साथ उन्होंने नवजात शिशु कृष्ण के अनेक नामों का उल्लेख किया है। तदनंतर नंद जी के द्वारा यथेष्ट दान-मान पाकर याचक सन्तुष्ट होते हैं। व्रजवासियों को कृष्ण के गुणों के बारे में सुनकर हार्दिक प्रसन्नता होती है।

ङ. *निष्क्रमण*—यह संस्कार बालक के चार महीने का हो जाने पर किया जाता है। बालक को खुली हवा में भूमि पर बैठाया जाता है। केवल परमानंददास ने श्रीकृष्ण को गोद से उतार कर भूमि पर बैठाने का वर्णन किया है। अन्य कवियों ने इस संस्कार को विशेष महत्त्व नहीं दिया है।

च. *अन्नप्राशन*—जब शिशु की आयु छ: महीने की हो जाती है तब उसको पहली बार अन्न चखाने के लिए 'अन्नप्राशन संस्कार' सम्पन्न होता है। श्रीकृष्ण के 'कुछ दिन कम षटमास' के होने की शुभ सूचना पाकर नंद जी उनका 'अन्नप्राशन' करने की सोचते हैं। ब्राह्मण को बुलाकर संस्कार का मुहूर्त दिखाया जाता है। दिन निश्चित हो जाने पर सखियों को निमंत्रित किया जाता है। व्रज की बधुएँ मंगल-गीत गाती हैं। विविध प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं और अपनी पाँति की व्रजवधुओं की ज्योनार की जाती है। माता यशोदा अत्यंत उल्लासपूर्वक बालक कृष्ण को उबटन मलकर नहलाती हैं; बदन में झगुली, सिर पर चौतनी और हाथ-पैरों में 'चूड़ा' पहनाती हैं। नंद बाबा अपनी मंडली के बीच कृष्ण को गोद में लेकर बैठते हैं। सोने का थाल खीर भर कर रखा जाता है। उसमें घृत और मधु डाला गया है। वही बालक को चटाया जाता है। छहों रसों से उस दिन श्रीकृष्ण का मुख जुठराया जाता है। इसके बाद ज्योनार होती है। परमानंददास की यशोदा भी श्रीकृष्ण का अन्नप्राशन-संस्कार बड़े उत्साह से करती हैं कि वह शीघ्र ही छह मास का हो जाय। तब वे

देव, कुल-देवी और ब्राह्मण की पूजा करती, दान देती, मागध-भाट आदि का यथोचित सम्मान करती, कुटुम्ब के लोगों को खाना खिलाती और वस्त्राभूषण पहिराती हैं।

छ. *वर्षगाँठ*—शिशु जब एक वर्ष का होता है तब उसकी पहली 'वर्षगाँठ' मनायी जाती है। श्रीकृष्ण भी जब साल भर के होते हैं तब उनकी पहली 'वर्षगाँठ' मनाने का वर्णन आलोच्य कवियों ने किया है। स्त्रियों का मंगलगान करना, आँगन को चंदन से लीपना, मोतियों से चौक पूरना, तूर बजना, विप्र द्वारा शोधी हुई शुभ घड़ी में, अक्षत-दूर्वादल गाँठ में बाँधना आदि 'वर्षगाँठ' के अवसर पर होनेवाले विभिन्न चार हैं। यशोदा बच्चे को उबटन लगाकर स्नान कराती हैं तथा चौतनी टोपी, निचोल आदि नये वस्त्र और विविध आभूषण उसे पहनाती हैं। प्रत्येक जन्म-दिन पर एक डोरे में गाँठ बाँधी जाती है और एक गाँठ आयु के एक वर्ष की प्रतीक मानी जाती है। सूर ने इस प्रथा की ओर भी संकेत किया है। इस प्रथा से ही संभवतः 'बरष-गाँठि' शब्द बना है। आज भी अधिकांश भारतीय परिवारों में 'वर्षगाँठ' इसी प्रकार मनायी जाती है; परंतु डोरे में गाँठ बाँधने की प्रथा कहीं-कहीं लुप्त हो गयी है।

कुंभनदास ने 'गिरिधरन लाल' की वर्षगांठ के पुनः कुशलपूर्वक आने की प्रसन्नता का वर्णन किया है। माता यशोदा पुत्र को तिलक लगाकर अक्षत लगाती हैं। सखियाँ कृष्ण को पीताम्बर और आभूषण पहना कर उनका शृंगार करती हैं। पश्चात् बड़े हर्षोल्लास के बीच वर्ष-गाँठोत्सव संपन्न होता है।

ज. *चूड़ाकर्म*—इस संस्कार में जन्म के पश्चात् पहली बार सिर के सब बाल मूँड़ दिये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में गभुआरे और झँडूले बालों का उल्लेख तो है, पर चूड़ाकर्म-संस्कार का वर्णन नहीं है।

झ. *कर्णवेध*—यह संस्कार बालक के तीसरे या पाँचवें वर्ष में होता है। इसमें बालक के कान छेदे जाने की प्रथा है। निपुण ज्योतिषियों को बुलाकर माता यशोदा तिथि, नक्षत्र, घड़ी आदि का विचार कराकर मुहूर्त निकलवाती हैं। बालक के कष्ट की पूर्व आशंका से वात्सल्यमयी माता का हृदय स्वभावतः ही काँप उठता है। माता यशोदा के हृदय में भी धुकधुकी होती है कि मेरे कान्ह को कनछेदन के अवसर पर कष्ट न हो और वह मचल न जाय। उसका ध्यान हटाने के लिए सुहारी, पूरी और गुड़ उसे पकड़ा दिया जाता है। माता बच्चे को गोद में लेकर

बैठ जाती है। द्विजवर सुई लेकर मंत्र पढ़ते हैं जिससे बालक को जरा भी कष्ट न हो। सींक से 'रोचन' का निशान लगाकर चतुर नाई सोने की सुई से शीघ्र ही कान छेद देता है। तब कानों में कंचन के 'दुर' पहनाये जाते हैं। कोमलहृदया माता की आँखों में 'कर्णवेध' देखकर आँसू आ जाते हैं; किंतु बालक की आँखों में आँसू देखकर वह नाई को घुड़की देती है। नंद जी समस्त व्रजवासियों के साथ आँख में आँसू और मुख पर हँसी लिये यह दृश्य देखते हैं।

'कर्णवेध' के बाद कृष्ण के ऊपर से मणि, मुक्ता आदि निछावर किये जाते हैं। नंद जी अपनी जाति और कुटुंब के लोगों को पहरावनी बाँटते हैं। अन्नदान, गोदान, धन आदि दान भी इस अवसर पर दिये जाते हैं।

ज. उपनयन (यज्ञोपवीत)—बालक के सात वर्ष का होने पर उसका उपनयन या यज्ञोपवीत-संस्कार करके उसे विद्याभ्यास के लिए गुरु के पास भेजने की प्रथा भी उच्च वर्गीय समाज में रही है। श्रीकृष्ण का यह संस्कार उचित अवसर पर नहीं हो पाया था। परमानंददास ने एक पद में श्रीकृष्ण का उपनयन संस्कार गोकुल में न हो सकने का उल्लेख किया है। इसलिए जब कृष्ण, वसुदेव और देवकी के पास मथुरा गये तब उनका 'यज्ञोपवीत-संस्कार' कराया गया। इस संस्कार के द्वारा लौकिक और वैदिक कार्यों का अनुष्ठान किया जाता है। इसी से वसुदेव जी कुल-व्यवहार का विचार करके हरि-हलधर का जनेऊ करते हैं। उस समय गर्ग जी दोनों भाइयों को गायत्री मंत्र सुनाते हैं। वसुदेव जी विविध अलंकारों से अलंकृत करके अनेक गायें ब्राह्मणों को दान में देते हैं। स्त्रियाँ उल्लासपूर्वक सामूहिक रूप से मंगलगान गाती हैं। विभिन्न वाद्य बजाये जाते हैं और हर्षातिरेक में माता देवकी विभिन्न मूल्यवान वस्तुएँ न्यौछावर करती हैं। राजा के घर जनेऊ होने के उपलक्ष में देश-देश से 'टीका' भी आता है।

'उपनयन' या 'यज्ञोपवीत'-संस्कार के अवसर पर भिक्षा माँगने की प्रथा भी कहीं-कहीं देखने में आती है। इस संस्कार के पश्चात् विद्याध्ययन का आरंभ होना माना गया है जिसके लिए बालक गुरुकुलों में जाते थे जहाँ गुरु की आज्ञा से उन्हें भिक्षा माँगने भी जाना होता था। संभवत: इस संस्कार के अवसर पर उसी परंपरा की ओर संकेत 'ब्रह्मचारी' या 'बटु' (जिसका यज्ञोपवीत हो रहा हो) द्वारा भिक्षा माँगने की प्रथा में है। अष्टछापी कवियों ने इस परंपरा के संबंध में कुछ नहीं लिखा है, केवल

'सारावली' में यज्ञोपवीत के अवसर पर 'भिक्षा' माँगने की रीति का वर्णन किया गया है जिसमें सब देवता बालक को भिक्षा देते हैं।

ट. *वेदारंभ*—'उपनयन' संस्कार के पश्चात् बालक की शिक्षा आरंभ होती है। प्रारंभ में शिक्षा में वेदों का प्रमुख स्थान था, संभवत: इसी से विद्यारंभ को 'वेदारंभ'-संस्कार कहा जाता है। बहुधा यह संस्कार उपनयन के दूसरे दिन सम्पन्न होता है। मथुरा में कृष्ण के यज्ञोपवीत के बाद ही 'वेदारंभ' संस्कार करके उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए अवन्तीपुरी भेजे जाने का उल्लेख 'सारावली' में हुआ है, अन्य कवि इस संबंध में मौन हैं।

ठ. *विवाह*—मानव-जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार 'विवाह' है जिसका भारतीय धर्मशास्त्रों में बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है। 'मनुस्मृति' में आठ प्रकार के—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापात्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच—विवाह माने गये हैं। भारतीय संस्कृति में विवाह को सामान्य समझौता नहीं, ऐसा महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है जिसमें युवक-युवती का जन्म-जन्मांतर का संबंध भाग्य द्वारा निश्चित किया हुआ समझा जाता है। विवाह के लिए 'पाणिग्रहण' और 'कन्यादान' शब्द भी प्रचलित रहे हैं तथा इस्लामधर्मावलंबियों के भारत में आने के बाद 'शादी' शब्द भी उसी अर्थ में प्रचलित हो गया, यद्यपि अष्टछाप-काव्य में उसका प्रयोग नहीं हुआ है। विधिवत् विवाह के अवसर पर किये जानेवाले मंगल कार्यों, कुलाचारों और शास्त्रविहित कृत्यों का भी विशद वर्णन भारतीय धर्माचार्यों ने किया है और उनकी संख्या चालीस से भी अधिक बतायी है।

अष्टछापी कवियों में सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास और नंददास ने विवाह-संस्कार का वर्णन जितने विस्तार से किया है, अन्य कवियों ने नहीं। नंददास ने रूपमंजरी, देवकी, राधा और रुक्मिणी के विवाहों का; कुंभनदास ने केवल राधा-कृष्ण की सगाई का और परमानंददास ने वाग्दान, सगाई, टीका आदि वैवाहिक कुलाचारों के साथ-साथ राधा-कृष्ण-विवाह का वर्णन किया है। सूरदास विवाह-संस्कार के विशद वर्णन में अन्य अष्टछापी कवियों से बहुत आगे हैं। उन्होंने 'सूरसागर' के चतुर्थ स्कंध में शिव-पार्वती के, नवम में हलधर-रेवती और राम-सीता के, दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में वसुदेव-देवकी और राधा-कृष्ण के, एवं दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में रुक्मिणी, जांबवती, सत्यभामा, पंचपटरानी—

कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा—के साथ कृष्ण के विवाह के, तथा प्रद्युम्न, अनिरुद्ध-उषा, सांब-लक्ष्मणा एवं अर्जुन-सुभद्रा के विवाहों का उल्लेख किया है। इन विवाहों में सीता के स्वयंवर में धनुष तोड़ने की और सत्या के विवाह में सात बैल एक साथ नाथने की प्रतिज्ञा पूरी करने पर विवाह हुआ है। रुक्मिणी का पत्र पाकर देवी-मंदिर से बाहर आने पर उसका हरण करके और लक्ष्मणा का स्वयंवर से हरण करके श्रीकृष्ण ने उनसे राक्षस विवाह किया है। दुर्योधन की पुत्री का सांब ने और श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन ने भी हरण ही किया है। शेष विवाहों के सामान्य रीति से होने का वर्णन है जिनमें पिताओं ने अपनी कन्याएँ योग्य पात्रों को इच्छा-अनिच्छा से सौंपी हैं।

विवाह-संबंध में सांस्कृतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण संकेत सभी अष्टछापी कवियों ने किया है और वह यह कि समस्त विवाहों में पुत्री के विवाह-योग्य अवस्था की होने पर ही उसके इस महत्वपूर्ण संस्कार का प्रसंग उठाया गया है। रूपमंजरी, पार्वती, देवकी और रेवती के प्रसंग में 'वय-प्राप्ति' का स्पष्ट उल्लेख है। अन्य विवाहों में स्वयंवर आदि के वर्णन से भी स्पष्ट होता है कि बाल-विवाह की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है।

अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित विवाह-संस्कार की रीतियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वर-प्रेक्षण, वाग्दान, मंडपकरण, वधू-गृहागमन, मधुपर्क, समंजन, पाणिग्रहण, अग्नि-प्रदक्षिणा, गृह-प्रवेश आदि रीतियाँ आती हैं जिनको 'शास्त्रविहित कृत्य' कहा जा सकता है। द्वितीय वर्ग में वैवाहिक निमंत्रण, हल्दी-तेल चढ़ना, वर की सज्जा, कंकण-पूजन, देवी-पूजन, जुआ खेलना, कंकण-मोचन, गाली गाना, भूर या न्यौछावर बाँटना आदि बातें आती हैं जिनको 'कुलाचार' के अंतर्गत समझना चाहिए। सूरदास के 'बिबाह-ब्यौहार' और 'कुल-ब्यौहार' प्रयोगों से संकेत 'शास्त्रीय विधि' और 'कुलाचारों' से ही जान पड़ता है। अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित विवाह-रीति को स्पष्ट रूप से समझने के लिए शास्त्रीय कृत्यों और कुलाचारों को सम्मिलित करके विवाह-संस्कार का क्रमबद्ध विवरण देने का प्रयास प्रस्तुत प्रबंध में किया गया है।

क. *वर-प्रेक्षण*—इसमें कन्या को देखने के लिए वर को भेजा जाता है। कुंभनदास ने 'स्याम-सगाई' में इसका वर्णन किया है। वृषभानु जी नंद, यशोदा आदि के साथ कृष्ण को बरसाने में बुलाते और राधा की सगाई करते हैं।

ख. *सगाई या मँगनी और वाग्दान*—आज भी विवाह का बीजारोपण 'सगाई' या 'मँगनी' से होता है जिसको 'गोद भरना' भी कहा जाता है। यह विवाह पक्का होने का छोटा-सा उत्सव है। विवाह के पहले का दूसरा उत्सव 'सगुन' के नाम से प्रसिद्ध है। लड़की के हाथ पर रखकर लग्नपत्रिका तथा भेंट की सामग्री लड़के के घर भेजी जाती है और उसके हाथ पर भी रखी जाती है। यह निश्चित तिथि पर कन्या के घर आने का निमंत्रण है। बहुत से परिवारों में सगाई और वाग्दान-संस्कार अलग अलग किया जाता है।

अ. *सगाई*—अष्टछाप-काव्य में बहुधा ब्राह्मण ही सगाई का प्रस्ताव लेकर जानेवाला बताया गया है। नंददास ने इस प्रसंग में एक बहुत रोचक संकेत किया है कि यदि सगाई करानेवाला ब्राह्मण धन का लोभी हो तो वह कुपात्र के भी साथ कन्या का विवाह करा देने में संकोच नहीं करता। इसीलिए रूपमंजरी के माता-पिता सगाई करानेवाले ब्राह्मण से प्रार्थना करते हैं कि धन का लोभ न करके कन्या के योग्य सुपात्र ही की खोज कीजिए; अस्तु। परंतु 'स्याम-सगाई' में द्विज-नारी सगाई का संदेश लेकर जाती है और यशोदा उससे कहती हैं—वृषभानु महर से जाकर कहना कि अपने पुत्र के लिए मैं तुम्हारी पुत्री गोद पसार कर माँगती हूँ। सगाई का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर कन्या को वर की माता की गोद में बैठा दिया जाता है और वर को कन्या की माता की गोद में। सगाई होने का सुसमाचार सुनकर यशोदा अपना घर सजाती और 'मोतियों से चौक पूरती' हैं। नंद जी के घर बधाई बजती है। व्रज की स्त्रियाँ अवसरानुकूल गीत गाती और आनन्दोत्सव मनाती हैं।

ख. *वाग्दान*—वाग्दान में कन्या-पक्ष से वर के घर 'टीका' आता है और विवाह पूर्ण रूप से निश्चित समझा जाता है। 'टीका' आने की सूचना पाकर माता पुत्र को सजाती-सँवारती है। ब्राह्मण वर को तिलक लगाता है। विविध मंगल-वाद्य बजते हैं। कुँवर के ऊपर से वस्त्राभूषण आदि उतार कर न्यौछावर किये जाते हैं। सर्वत्र प्रसन्नता छा जाती है तथा यह शुभ समाचार फैल जाता है।

ग. *निमंत्रण*—विवाह के अवसर पर परिवार और समाज के लोगों को निमंत्रित किया जाता है। किसी विवाह का विधिवत् विस्तृत वर्णन न होने के कारण यद्यपि सजातियों और मित्रों को 'निमंत्रण' भेजने का स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप-कव्य में नहीं है, तथापि बरातियों की संख्या

कभी-कभी 'छप्पन कोटि' तक बताने से स्पष्ट है कि विवाह का निमंत्रण पाकर ही सब एकत्र हुए होंगे। श्रीकृष्ण के गंधर्व- विवाह में गोपियाँ मुरली द्वारा निमंत्रित की जाती हैं।

घ. *मंडपकरण*—विवाह के लिए मंडप तैयार किया जाता है। इसे 'मँडवा' भी कहते हैं। यह अधिकतर कदली खम्भों से बनाया जाता है जिसे अनेक प्रकार के फूलों से अलंकृत करते हैं। मंडप के भीतर 'वेदी' बनाये जाने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है। यह मंडप कन्या के गृह में बनता है। कृष्ण-राधा के विवाह में मंडप बनाया जाता है जिसके नीचे कृष्ण बैठते हैं; किंतु रुक्मिणी-हरण के कारण 'सारावली' में द्वारका में 'मँडवा' छाये जाने का उल्लेख मिलता है।

मंडप और 'वेदी' या 'चौरी' का वैवाहिक कार्य में महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त वैवाहिक कार्य, होम, कन्या-दान आदि इसी के नीचे सम्पन्न होते हैं। इसी कारण शुभ मुहूर्त में वेदी या चौरी रची जाती है। कन्या को उबटनादि लगाकर स्नान कराने के पश्चात् विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके चौरी में लाया जाता है और मुक्ताओं से चौक पूरा जाता है।

ङ. *हल्दी-तेल चढ़ाना*—विवाह के पहले दूल्हे और दुलहिन के शरीर पर हल्दी और तेल चढ़ाने की रस्म होती है जिसके पश्चात् स्नान कराया जाता है। कृष्णदास ने हल्दी चढ़ाकर और उबटन लगाकर कृष्ण के नहलाये जाने का वर्णन किया है। कन्या को सात सुहागिनें तेल चढ़ाती हैं। लाल रंग का 'सालू' नामक कपड़ा बाँधकर वितान बनाया जाता है जिसके बीच में पकवान रखा जाता है। कन्या को उबटन लगाकर नहलाने के बाद उसको वस्त्राभूषण पहनाये जाते हैं। तब वह सब स्त्रियों की गोद में पकवान देती है। परमानंददास ने सालू के वितान के नीचे सप्त सुहागिनों द्वारा वृषभानुनंदिनी के तेल चढ़ाये जाने और पश्चात् उबटन लगाकर नहलाये जाने का वर्णन किया है। तदनंतर वस्त्राभूषणों से अलंकृत राधा के हाथों से सबको पकवान दिलाया जाता है।

च. *वर की सज्जा*—विवाह के अवसर पर वर के वेश की प्रधान विशेषता 'मौर' और 'सेहरा' धारण करने में होती है। 'मौर' विवाह के समय के एक शिरोभूषण को कहते हैं जो ताड़पत्र या 'खुखड़ी' का बनाया जाता है। परमानंददास अपने आराध्य के मौरधारी वेश को देखने की

कामना करते हैं तो नंददास उनके 'मौरधारी' रूप का सोल्लास वर्णन करते हैं।

वैवाहिक अवसर पर नंददास ने कृष्ण के वस्त्र 'जरी' के बताये हैं; साथ-साथ वे मणि-मोतियों तथा रत्नों से जटित 'सेहरा' भी पहने हुए हैं। राजकुल के लोग 'मौर' के स्थान पर 'मुकुट' धारण करते हैं। इसीसे रुक्मिणी-विवाह के अवसर पर राजा कृष्ण 'मुकुट' धारण करते हैं जिसमें रत्न, हीरे, मणि, माणिक्य आदि लगे हैं; 'मुकुट' के साथ ही माथे पर 'सेहरा' भी बँधा है। परमानंददास के कृष्ण का 'सेहरा' फूलों का न होकर मोतियों का है। 'सेहरा' बनाकर लानेवाली नाइन होती है।

वर का वाहन 'घोड़ी', 'घोड़ा' अथवा 'रथ' होता है। रुक्मिणी से विवाह करने के लिए श्रीकृष्ण 'घोड़े' पर चढ़कर जाते हैं जिसकी जीन जड़ाऊ है। परमानंददास ने दूलह कृष्ण की नीली ऊँची घोड़ी का उल्लेख किया है।

छ. *कंकण-बंधन*—विवाह के पूर्व वर और कन्या, दोनों के हाथों में 'कंकण' या 'कँगना' बाँधा जाता है। कृष्णदास के अनुसार कृष्ण के हाथ में द्विजवर के द्वारा जो 'कंकण' बाँधा गया है, वह मणि-मोतियों का है।

ज. *देवी-पूजन*—विवाह के पूर्व और पश्चात् देवी-पूजन की प्रथा अनेक कुलों में पायी जाती है। सूरदास की रुक्मिणी भी विवाह के पूर्व सखियों सहित पूजन-सामग्री लेकर गौरी पूजने जाती है। राधा-कृष्ण के गन्धर्व-विवाह में भी 'सूरसागर' में पहले देवी-पूजन का उल्लेख मिलता है। नंददास ने 'रुक्मिनी-मंगल' में देवी-पूजन की कुल-रीति का वर्णन किया है।

झ. *वधू-गृहागमन*—विवाह के हेतु वर-पक्ष वाले बरात लेकर कन्या-पक्ष वालों के घर जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में राम-जानकी और कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-प्रसंग में बरात का वर्णन हुआ है। 'बरात' में सम्मिलित होनेवाले लोग 'बराती' (सं० वर-यात्रिक) कहलाते हैं। महाराज दशरथ बरात लेकर जनकपुर जाते हैं जहाँ मोतियों से चौक पूरा जाता है। ब्राह्मण वेद-मंत्र उच्चारण करते हैं और युवतियाँ मंगलगान करती हैं। इसी प्रकार उग्रसेन, वसुदेव आदि आनंदपूर्वक 'बरात' सजाकर

रुक्मिणी का विवाह करने जाते हैं; भाट विरुदावली गाते हैं तथा अनेक वाद्य बजते हैं।

वर और कन्या के पिता तथा अन्य गुरुजन 'सजन-समधी' कहलाते हैं। विवाह के समय 'समधी' परस्पर पान बदलते हैं जिसका उल्लेख कृष्णदास के एक पद में हुआ है। स्वयंवर के अवसर पर 'बरात' बुलाने के लिए विप्र को भेजने का उल्लेख भी कहीं-कहीं मिलता है। 'सारावली' के राम-विवाह-वर्णन में जनकराज ने महाराज दसरथ को बुलाने विप्रदेव को ही भेजा है।

ञ. *मधुपर्क*—मधु, शर्करा, घृतादि से निर्मित मधुपर्क से बरात के आगमन पर उसका स्वागत किया जाता है। पूजन-सामग्री में भी मधुपर्क का स्थान रहा है। 'सूरसागर' में राधा-कृष्ण के गंधर्व-विवाह-प्रसंग में 'मधुपरक' का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

ट. *विवाह*—वेद-विधि के अनुसार पंडित मंत्रोच्चारण करके विवाह सम्पन्न कराते हैं। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह के वेद-विधि से सम्पन्न किये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। इसी प्रकार राम-जानकी-विवाह के भी वेद-शास्त्र-विधि से किये जाने की बात 'सारावली' में कही गयी है जिसमें होम-हवन के साथ द्विज, गणपति, सूर्य, शक्र और महेश की पूजा का वर्णन है।

ठ. *पाणिग्रहण*—वेद-ध्वनि और मंत्रोच्चारण के बाद 'पाणिग्रहण' होता है जिसमें वर, वधू का हाथ पकड़ कर आजन्म साथ देने का वचन देता है। सीता, राधा आदि के विवाह में इसका उल्लेख हुआ है। 'पाणिग्रहण' को जनभाषा में 'हथलेवा' कहते हैं जिसका प्रयोग नंददास ने राधा-विवाह-प्रसंग में किया है।

ड. *गठबंधन*—'पाणिग्रहण' के साथ ही वर के दुपट्टे या पीतांबर से वधू की साड़ी या चादर का छोर बाँधकर 'गँठबंधन' किया जाता है। अष्टछाप-काव्य में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, परंतु 'प्रीति-ग्रंथ के हिय या जिय' में पड़ने का इसी प्रसंग में उल्लेख निश्चय ही 'गँठबंधन' की ओर संकेत करता है।

ढ.—*अग्नि-प्रदक्षिणा*—'अग्नि-प्रदक्षिणा' से तात्पर्य है वर द्वारा वधू के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करना। इसे ही 'भाँवर' या 'फेरे लेना' भी कहते हैं। दूलह-दुलहिनि 'भाँवर' लेते हैं। अष्टछाप-काव्य में 'फेरे' शब्द

के स्थान पर 'भाँवर' का ही प्रयोग अधिक हुआ है। 'गँठबंधन' के पश्चात् दूलह-दुलहिनि 'अग्नि-प्रदक्षिणा' करते या 'भाँवर लेते हैं' जिसके मूल में अपने संबंध का साक्षी अग्निदेव को बनाये जाने का भाव रहता है। सूरदास और परमानंददास ने 'भाँवर लेने' का उल्लेख कई पदों में किया है।

ण. *कंकण-मोचन*—विवाह के पूर्व वर-वधू के बाँधा गया कंकण विवाह के पश्चात् वर-वधू परस्पर खोलते हैं। इस कुलाचार का वर्णन भी अष्टछापी कवियों में सूरदास ने ही सबसे अधिक किया है। 'सूरसागर' में राम-जानकी और कृष्ण-राधा के कंकण खोलने का रोचक वर्णन मिलता है। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि दूलह के द्वारा कंकण-मोचन-वर्णन में उन्होंने जितनी रुचि दिखायी है, उतनी दुलहिनी द्वारा 'मोचन'-वर्णन में नहीं। श्रीराम जब सीता का कंगन खोलने में सफल नहीं होते तब सखियाँ हास-परिहास करने में भी नहीं चूकतीं और सहायता के लिए माता कौशल्या को बुलाने की सलाह देती हैं। इसी प्रकार राधा का कंकण न खोल पाने पर उसकी सखियाँ वर से कहती हैं—हे कृष्ण! यह गिरि उठाने का काम नहीं है; यह तो कंकण खोलना है। इसी प्रसंग में 'कंकनचार' कराती हुई सखियाँ कहती हैं—यदि कंगन न खोल सको तो सहायता के लिए माता यशोदा को बुला लो अथवा राधा के पाँव छुओ।

श्रीकृष्ण जब अपने प्रयत्न में सफल हो जाते हैं और राधा का कंकण खोल देते हैं तब सखियाँ प्रसन्नता से किलक उठती हैं और सुकुमारी राधा से दूलह का कंकण खोलने को कहती हैं। राधा के असफल होने पर, दोनों की प्रीति देखकर वे सलाह देती हैं—बाबा वृषभानु को बुलाकर सहायता ले लो। इस प्रकार हास-परिहास के बीच यह कुलाचार सम्पन्न होता है।

त. *जुआ खेलना*—विवाह के बाद बधू के यहाँ ही वर-वधू को जुआ खिलाया जाता है। नवम सर्ग में राम-जानकी के विवाहोपरांत जुआ खेलने का वर्णन है। सोने की कूँडी में पूँगीफल युक्त निर्मल जल रखा जाता है। उसी में राम और जानकी जुआ खेलते हैं। रुक्मिणी-विवाह में भी वर-वधू के जुआ खेलने का उल्लेख हुआ है।

थ. *गाली गाना*—विवाह के समस्त 'आचारों' के बीच में, 'गाली' भी गायी जाती हैं जिनमें अधिकतर निकटतम संबंधियों के नाम रहते हैं। राम के विवाह में जुआ खेलने के अवसर पर सूरदास ने 'गाली' गवायी है। ऐसी गालियों में प्रायः माता के अनुचित संबंध की बात

कहकर वर-बधू के साथ उपहास किया जाता है। 'सूरदास' का एक लंबा पद इन गालियों का प्रतिनिधित्व कर सकता है।

द. *न्योछावर देना या भूर बाँटना*—विवाह के बाद वर और वधू के ऊपर से न्योंछावर उतारकर याचकों को दी जाती है। इसी को 'भूर' भी कहा जाता है। सूर ने 'न्योछावरी' में भुक्ति-मुक्ति पायी है और परमानंददास ने प्रेम-भक्ति और रत्नों के हार 'भूर' में देने का उल्लेख किया है।

ध. *विदा*—विवाह के पश्चात् कन्या पिता के घर से विदा होती है। बेटी की विदा का यह दृश्य इतना करुण होता है कि कन्या-पक्ष के लोग ही नहीं, वर-पक्ष के उपस्थित जन भी आँसू बहाने लगते हैं। संस्कृत के महाकवि कालिदास के कण्व मुनि अपनी पालिता पुत्री शकुंतला की विदा के अवसर पर इस तरह आँसू बहाते हैं कि गृहीजन भी बेटी को विदा करते समय उतने द्रवित न होते होंगे। वस्तुतः बेटी की बिदा के समय का दृश्य इतना करुण और मर्मस्पर्शी होता है कि सहस्रों लोकगीतों का वर्ण्य विषय वही रहा है। आश्चर्य की बात है कि अष्टछाप के सहृदय कवि अनेक विवाहों का वर्णन करने पर भी इस विषय को विस्तार देने का लोभ संवरण कैसे कर सके। इसका समाधान यद्यपि यह कहकर किया जा सकता है कि उनके काव्य में कृष्ण या राम के जिन विवाहों का उल्लेख है उनमें तो ब्रह्म की प्राप्ति इतनी सुखदायिनी है कि उसके लिए बधुएँ मायका छोड़ने को सदैव उत्सुक रहती हैं और शेष व्यक्तियों के विवाहों के वर्णन में उन्होंने विशेष रुचि नहीं दिखायी है, तथापि माता के हृदय के पारखी उन कवियों की उस संबंध में उदासीनता कुछ न कुछ खटकती अवश्य है। जो हो, कृष्णदास के एक पद में विदा होती हुई राधा के साथ-साथ निकट संबंधियों की करुण दशा का मार्मिक वर्णन मिलता है। पिता के घर से विदा होती हुई कीरति-सुता सगे-संबंधियों से लिपट-लिपटकर रोती है। उसकी काकी, भाभी, बहिन, फूफी उसे बार-बार कलेजे से लगाती हैं। पिता बहुत पुचकार कर सांत्वना देता है कि घबड़ाओ मत। मैं जल्दी ही तुम्हारे भैया को भेजकर तुम्हें बुला लूँगा।

न. *दायज या दहेज*—भारतीय विवाह की एक प्रमुख रूढ़ि है कन्या के साथ-साथ भेंट में ऐसा बहुत-सा सामान वर को देना जो गृहस्थ-जीवन में उनके लिए उपयोगी सिद्ध हो। इस सामान में धन-संपत्ति, मणि-रत्न, हाथी-घोड़े, दास-दासियाँ, सभी कुछ दिया जाता है। भारतीय कवियों ने विवाह के साथ-साथ दायज या दहेज का भी वर्णन किया है।

अष्टछापी कवि भी इस संबंध में उनसे पीछे नहीं हैं। वसुदेव से देवकी का विवाह कराते समय सूरदास ने कंस के द्वारा 'हय-गय-रतन-हेम-पाटंबर' आदि बहुत-सा दायज दिलाया है तो नंददास ने देवकी को पिता देवक द्वारा 'षटसत रथ', 'सेत चारि गज', 'पंद्रह सहस किंक्यान', 'दोइ सत दासी' आदि दहेज में दिये जाने का उल्लेख 'दशम स्कंध' में किया है। राधा के विवाह में कृष्णदास ने 'हय-गय-भरन-भँडार' के साथ, सोनामढ़े सींग वाली, मोती-हार से सजी चार लाख गायें दहेज में दिलायी हैं जिनका साज भी बहुमूल्य है। सत्यभामा के विवाह में उनके पिता सत्राजित ने सूर्य-प्रदत्त मणि के साथ अनेक प्रकार का 'दायज' श्रीकृष्ण को दिया है। इसी प्रकार सत्या के पिता, श्रीकृष्ण को और उषा के पिता, अनिरुद्ध को पुत्री सहित बहुत 'दाइज' देते हैं।

प. *गृह-प्रवेश*—विवाह के बाद नवविवाहिता वधू को लेकर वर अपने घर आता है। उस समय बहन आरती उतारती है और माताएँ पानी उतारकर पीती हैं। रुक्मिणी से विवाह करके घर आने पर बहन सुभद्रा कृष्ण की आरती उतारती है और माता देवकी पानी वार कर पीती हैं। परमानंददास ने व्रजनारियों द्वारा घर के मुख्य द्वार पर कृष्ण और वृषभानु-नंदिनी राधा की आरती उतारे जाने का उल्लेख किया है।

विवाह के समय दुलहिन के घूँघट काढ़ने की प्रथा का इन प्रसंगों में उल्लेख नहीं है। कारण यह जान पड़ता है कि पौराणिक काल में परदा-प्रथा भारत में थी ही नहीं। वह तो संभवत: मुसलमानों के भारत में आने के बाद इस देश में आरंभ हुई थी। विवाह के समय अधिकांश परिवारों में आज भी वधू का मुख घूँघट से ढका रहता है और एक रस्म 'मुँहदिखायी' की होती है। उसमें सब गुरुजन नववधू का मुख देखकर भेंट देते हैं।

फ. *अंत्येष्टि*—मानव का अंतिम संस्कार 'अंत्येष्टि' है जो मृत्यु के पश्चात होता है। भारतीय विश्वास के अनुसार जिस व्यक्ति का यह संस्कार उचित रीति से हो जाता है, उसका परलोक 'सँवर' जाता है। इसका प्रमाण 'सूरसागर' में भरत से कहे गये वशिष्ठ के इस कथन में मिलता है कि पिता की अंत्येष्टि करके उनका परलोक सँवार दो। मृत्यु के पश्चात् शीघ्र से शीघ्र यह संस्कार कर दिया जाता है; क्योंकि सामान्य वर्ग का यह विश्वास रहता है कि देर होने पर मृत प्राणी 'भूत' बन जाता है। सामान्यतया मृत प्राणी की तीन ही गतियाँ होती हैं। मरने पर वह यों ही पड़ा रहे और जीव-जंतु का भोजन बनकर उनकी 'विष्टा' बन जाय या

जमीन में गाड़ दिये जाने पर कीड़ों का भोजन बन जाय अथवा जला दिये जाने पर मुट्ठी भर राख के रूप में शेष रह जाय। मृतक शरीर की इन तीनों गतियों की ओर सूरदास ने एक पद में संकेत किया है जिससे भारतीय संस्कृति की, शव का दाह करने की प्रथा के साथ-साथ उसको गाड़ देने के चलन की बात भी सूचित होती है।

परमानंददास ने 'अंत्येष्टि संस्कार' के लिए 'क्रिया' शब्द का प्रयोग किया है यद्यपि सामान्यतया इसका तात्पर्य मृतक के श्राद्ध आदि कर्मों से होता है। ऊधव-गोपी-संवाद में उनकी गोपियाँ ऊधव से कहती हैं—ज्ञान योग की निष्ठुर बातें कहकर तुम हमें जब मारने ही आये हो तो हमारी 'क्रिया' करके जाना जिससे बनवारी तुम्हारा 'गुन' मानेंगे; अस्तु। अष्टछाप के अन्य कवियों में केवल सूरदास ने 'अंत्येष्टि' - क्रिया का वर्णन किया है जो दो रूपों में है। प्रथम में इस संस्कार के संबंध में सामान्य संकेत किये गये हैं और द्वितीय में प्राणी या व्यक्ति-विशेष—यथा महाराज दशरथ, जटायु, शबरी आदि—के अंत्येष्टि-संस्कार का उल्लेख हुआ है। प्रथम अर्थात सामान्य वर्णन में इस संस्कार के अनेक कृत्यों में से केवल एक, 'कपाल-क्रिया' की ओर सूरदास ने संकेत किया है कि मरते समय भैया, बंधु आदि कुटुम्बी ही नहीं, अपने ही रक्त से पैदा किये हुए जिन पुत्रों को देवी-देवता मनाकर पाया और पाला था, वे कुछ काम न आयँगे और मृत्यु होते ही शीघ्र से शीघ्र 'कपाल-क्रिया' करके गड़े हुए धन की खोज में लग जायँगे।

दशरथ, जटायु और शबरी में से अंतिम दो के अंत्येष्टि-संस्कार के संबंध में केवल इतना कहा गया है कि जटायु को अपना सेवक जानकर श्रीराम ने उसके शव को अपने हाथ से जला दिया और शबरी के मरने पर उन्होंने 'तिलांजलि' दी। महाराज दशरथ के 'अंत्येष्टि संस्कार' का सूरदास ने अवश्य अधिक विस्तार से वर्णन किया है। एक बड़ा 'विमान' बनाकर नृप का शव उस पर रखकर परिजन और पुरजन सरयू के किनारे 'श्मशान घाट' पर ले जाते हैं। वहाँ चंदन की लकड़ी की चिता बनायी जाती है जिस पर राजा का शव रखकर अगर, सुगंध, घृत आदि डालकर आग लगायी जाती है। पश्चात्, तिलांजलि दी जाती है। इसके अनंतर पुरजनों-परिजनों का कार्य समाप्त हो जाता है और 'अंत्येष्टि संस्कार' के शेष कृत्य शव-दाह करनेवाले के लिए रह जाते हैं। महाराज दशरथ का दाह-संस्कार भरत ने किया था; अतएव शेष कृत्य भी वे ही करते हैं। शव-दाह के पश्चात्

दस दिन तक वे जल से पूर्ण घट श्मशान घाट पर टाँगते हैं और उस पर दीपक जलाकर 'दीपदान' करते हैं। ग्यारहवें दिन ब्राह्मणों को बुलाकर वे बड़े आदर-सत्कार से भोजन कराते और अनेक प्रकार के दान देकर उन्हें संतुष्ट करते हैं।

'अंत्येष्टि-क्रिया' करनेवाले को सिर भी मुड़ाना पड़ता है। राजा दशरथ की दाह-क्रिया भरत ने की थी; इसलिए उन्होंने भी सर मुड़ाया था। चित्रकूट में भरत से भेंट होने पर राम उनका 'मुंडित केस सीस' देखकर किसी की मृत्यु का अनुमान करके अत्यंत विह्वल हो जाते हैं; पश्चात्, पिता की मृत्यु की बात सुनते ही मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं। सीता की भी यही दशा होती है और वह भी धरणी पर गिरकर बिलखने लगती है। 'सूरसागर' में यह प्रसंग यहीं पर समाप्त कर दिया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने प्रसंग की पूर्णता के लिए समस्त अयोध्यावासियों के साथ राम के मंदाकिनी नदी में स्नान करके पवित्र होने का वर्णन किया है और सब उस दिन निर्जल व्रत भी करते हैं।

समीक्षा—

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि यद्यपि अष्टछाप-काव्य में यत्र-तत्र तत्संबंधी ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे तत्कालीन जन-जीवन का कुछ परिचय मिल सकता है, तथापि वे संकेत एक प्रकार से बिखरे हुए सूत्रों के रूप में हैं जिनको एकत्र करके क्रमबद्ध रूप से सजाने पर ही वर्ण्य विषय का ज्ञान होना संभव है। मुक्तक और गेय काव्य-रचना-संबंधी प्रतिबंधों के कारण यद्यपि अधिकांश विषयों का सांगोपांग वर्णन अष्टछापी कवियों ने नहीं किया तथापि अपने आराध्य के जन्म और विवाहोत्सवों का वर्णन इतने उत्साह से उन्होंने किया है कि उनका यथार्थ चित्र आज भी सामने आ जाता है; पाठक के अंतर्जगत में उनका यथार्थ चित्र अंकित हो जाता है और कुछ समय के लिए तो वह अपने को भूल ही जाता है। पारिवारिक जीवन के अन्य प्रसंगों का परिचय देने के लिए भी जो संकेत उन्होंने किये हैं वस्तुतः वे महत्वपूर्ण हैं और उनके लिए वे कवि बधाई के पात्र हैं।

———

५ सामाजिक जीवन-चित्रण

अष्टछाप-काव्य में चित्रित तत्कालीन सामाजिक जीवन-चर्या से भली-भाँति परिचित होने के लिए, उसका अध्ययन, स्थूल रूप से, छह शीर्षकों के अंतर्गत करना उचित जान पड़ता है—१. सामाजिक व्यवस्था, २. मनोविनोद, ३. पर्वोत्सव, ४. त्योहार, ५. लोकाचार-लोकव्यवहार और ६. विश्वास-मान्यताएँ।

१. सामाजिक व्यवस्था—

मानव सामाजिक प्राणी है जिसकी सहज प्रवृत्तियाँ उसे अपने साथियों के साथ रहने के लिए प्रेरित करती हैं। विकास, आत्मरक्षा तथा संगठन की कामना या भावना ही समाज-निर्माण की मूल प्रेरणा है। मानव के उन गुणों का विकास भी समाज में ही सम्भव है जिनसे संस्कृति और सभ्यता का विकास होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'समाज' शब्द में ही संगठन-शक्ति, सांस्कृतिक विकास आदि के भाव समाविष्ट रहते हैं।

सामाजिक भावना का उदय होने पर मानव वर्ग का ध्यान आचार-विचार और व्यवहार-आदर्श-संबंधी सिद्धांतों की ओर जाता है। कालांतर में वे ही प्रत्येक देश या समाज के सामाजिक संगठन के मूल या विशिष्ट आधार बन जाते हैं। भारतीय सामाजिक संगठन के भी दो मूलाधार हैं—वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था।

क. *वर्ण-व्यवस्था*—भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित रहा है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ऋग्वेद के एक रूपक के आधार

पर कहा जा सकता है कि आरंभ में उक्त वर्गीकरण का मुख्य आधार श्रम-विभाजन का आर्थिक सिद्धांत था; किंतु आगे चलकर इस व्यवस्था में रूढ़ात्मकता आ गयी; वर्ण-व्यवस्था कर्ममूलक के स्थान पर जन्ममूलक हो गयी और अनेकानेक जातियों की उत्पत्ति भेद-भावना की पृष्ठभूमि बन गयी जो समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुई। प्रारंभ में उक्त चारों वर्णों में प्रथम अर्थात् ब्राह्मण के मुख्य तीन कार्य थे—पुरोहिती, शिक्षण और मंत्र-रचना। इन कार्यों का संपादन करके 'ब्राह्मण' समाज में उन्नत विचारों के संचालन का श्रेय प्राप्त करता था; परंतु उसे श्रेष्ठ तभी समझा जाता था जब वह विद्या में पारंगत हो; अनपढ़ ब्राह्मण 'ब्रह्मबंधु' (ब्राह्मण का भाई) कहलाता था, 'ब्राह्मण' नहीं।

इसी प्रकार क्षत्रिय-वर्ग का कार्य प्रबलों के उत्पीड़न से निर्बलों को बचाना था और अन्य वर्ण भी जब राजनीतिक सत्ता स्वायत्त कर लेते थे तो उनका भी आदर क्षत्रिय के समान ही होता था। वैश्य-वर्ग का संबंध मुख्यत: वाणिज्य-व्यवसाय से था और राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव उन पर साधारणतया कम पड़ता था। इस वर्ग का आर्थिक महत्व प्राय: बना रहा, परंतु उनकी संख्या में एक परिवर्तन अवश्य हुआ। कृषि और पशुपालन करनेवाले बहुत से वैश्य शूद्रों में गिने जाने लगे। शूद्र वर्ग को निर्विकारभाव से तीनों वर्गों की सेवा का कार्य सौंपा गया था। कालांतर में यह वर्ग उच्च वर्णों द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाने लगा।

अष्टछाप-काव्य में वर्ण-व्यवस्था-संबंधी उल्लेख—अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव के समय राजनीति के क्षेत्र में बहुत-कुछ उथल-पुथल हो जाने पर भी चारों वर्णों के संबंध में समाज की धारणा में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ था, यद्यपि अपनी उदारता के कारण इन कवियों ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि अष्टछाप-काव्य में वर्ण-व्यवस्था के विषय में अधिक वर्णन नहीं मिलता। वास्तव में इन कवियों ने कृष्ण के लोकरंजक रूप को अपनी रचना का विषय बताया था, लोक-रक्षक को नहीं जिसका घनिष्ठ संबंध समाज से रहता है। अत: उन्हें सामाजिक नियमों या विधानों पर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं था। दूसरी बात यह कि भक्ति के क्षेत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सभी को समान माना गया है। प्रभु की दृष्टि में सभी समान हैं; क्योंकि सभी उनकी ही सृष्टि हैं। इसी से भगवान भक्त की जाति या इसके कुल-गोत्र का कोई विचार नहीं करते। इतनी उदारता होते हुए भी समाज

में ब्राह्मण-वर्ग की श्रेष्ठता-संबंधी जो धारणा उस वर्ग के व्यक्ति के अंतर्जगत में संस्कार-रूप में बन जाती है, उससे सर्वथा छुटकारा पा लेना भी उसके लिए संभव नहीं होता। इसका प्रमाण है सूरदास के 'सूरसागर' की एक पंक्ति जिसमें श्रीकृष्ण और कुब्जा के संबंध की अनुपयुक्तता बतायी गयी है और जिससे शूद्र और ब्राह्मण में असमानता की मान्यता पर भी परोक्ष रूप से प्रकाश पड़ता है। उनकी सम्मति में कृष्ण और कुब्जा का साथ हंस-काग, कपूर-लहसुन, कंचन-काँच, सिंदूर-गेरू और भोजन में ब्राह्मण-शूद्र जैसा है। सूरदास का यह कथन तत्कालीन मनोवृत्ति का ही दिग्दर्शक है, स्वयं उनकी धारणा इतनी अनुदार नहीं थी। परमानन्ददास भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता विप्र-कुल में जन्म लेने में नहीं मानते; उनकी सम्मति में तो ईश्वर की सेवा-उपासना न करनेवाले ब्राह्मण से ईश्वर-भक्त श्वपच ही श्रेष्ठ है।

अष्टछाप-काव्य में उक्त चारों वर्णों में से ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र की चर्चा ही मुख्यत: मिलती है; वाणिज्य-व्यवसाय में लगे हुए वैश्य कहलानेवाले वर्ण का नहीं, यद्यपि उसके कार्य का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र के अतिरिक्त कुछ अन्य उपजातियों की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में है जिनमें अहिर या अहीर प्रमुख हैं।

अ. अष्टछाप-काव्य में ब्राह्मण—'ब्राह्मण के लिए 'पंडित', 'पांडे', 'ब्राह्मण', 'द्विज', 'विप्र', 'बाँभन' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'ब्राह्मण' का संबंध विद्या से रहने के फलस्वरूप 'पंडित' शब्द ब्राह्मणमात्र का प्रतीक हो गया है। परमानन्ददास ने एक पद में 'पंडित' के लिए 'द्विज' शब्द लिखा है। 'ब्राह्मण' का कार्य 'पुरोहित' का भी होता है जिसके घर पधारने पर राजा द्वारा भी बड़ा सम्मान किये जाने का वर्णन परमानंददास ने किया है। हिंदू गृहस्थ के प्रत्येक शुभ कार्य में 'ब्राह्मण' का विशेष सम्मान होता है। उन्हें स्वच्छ जल से स्नान कराने के पश्चात् वस्त्राभूषणादि दान दिये जाते हैं। प्रात:काल उनके वेद-पाठ करने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में है। साथ-साथ ब्राह्मणों के बाह्याचारों, जैसे उनका लिपे हुए स्थान पर अलग भोजन बनाना, किसी के छू लेने पर भोजन का अपवित्र हो जाना, खाना तैयार होने पर उसका भोग लगाकर भोजन करना आदि बातों का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में है। नंद जी के यहाँ आनेवाला 'पाँड़े' स्थान लीपकर अलग भोजन बनाने बैठता है। भोजन तैयार हो जाने पर भोग लगाने के लिए आँख मूँदता है कि कृष्ण आकर 'सिद्ध पाक'

जुठा देते हैं। तब यशोदा बहुत विनय करके सारा सामान फिर मँगा देती हैं और पाँड़े जी पुन: भोजन बनाने बैठते हैं। 'ब्राह्मण' या पंडित, ज्योतिषी का काम करनेवाला भी कहा गया है। परमानंददास ने इसी उद्देश्य से यशोदा के पास एक 'पंडित' के आने की बात लिखी है।

कंस का दरबारी श्रीधर 'बाँभन' भी 'ब्राह्मण' वर्ग का है जो श्रीकृष्ण को मारने के उद्देश्य से गोकुल आता है। बाँभन होकर भी क्रूर कर्म करनेवाले को 'कसाई' कहा गया है। श्रीधर बाँभन इसी प्रकार का था; किन्तु ब्राह्मण होने के कारण ही नीच और क्षुद्रकर्मा होने पर भी वह अवध्य समझा जाता है। स्वयं श्रीकृष्ण का कथन है कि 'बाँभन' को मारना उचित नहीं, अंग-भंग कर देना ही उसके क्षुद्र कर्म का पर्याप्त दंड है।

आ. अष्टछाप-काव्य में क्षत्रिय—अष्टछाप-काव्य में क्षत्रिय के लिए 'छत्री', 'ठाकुर' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। भ्रमरगीत-प्रसंग में 'ठाकुर' शब्द 'स्वामी' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। जब गोपियाँ ऊधव से व्यंग्य-पूर्वक कहती हैं कि कहाँ तो ब्रह्मादिक के 'ठाकुर' श्रीकृष्ण और कहाँ कंस की दासी कुब्जा! खूब साथ बना है!

इ. अष्टछाप-काव्य में शूद्र—दृष्टिकोण की उदारता के कारण अष्टछापी कवि किसी की हीनता या तुच्छता की चर्चा करना उचित नहीं समझते, यद्यपि उन्होंने समाज में शूद्र के साथ उच्चवर्गीय व्यक्ति, विशेषत: ब्राह्मण के संबंध की अनुपयुक्तता पर कृष्ण -कुब्जा-संबंध के अनौचित्य को लेकर एक पद में संकेत किया है।

ख. आश्रम-व्यवस्था—शारीरिक और मानसिक शक्तियों के नियमित और व्यवस्थित विकास के लिए मानव की नैसर्गिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भारतीय मनीषियों ने उसके जीवन को सौ वर्ष का मानकर उसकी आयु को चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—में विभाजित किया था। प्रथम आश्रम पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर शक्तियों का सम्यक विकास करते हुए विद्याध्ययन के लिए; द्वितीय, विवाह के पश्चात् गृहस्थ-जीवन बिताने और आश्रितों के पालन के लिए; तृतीय, चित्तवृत्तियों को संयमित करके लोक-कल्याण में प्रवृत्त होने और पारलौकिक विषयों का चिंतन-मनन करने के लिए तथा चतुर्थ आश्रम सभी क्षेत्रों में चित्तवृत्तियों का निरोध और इंद्रियों का दमन करके मोक्ष-साधन के लिए निश्चित किया गया था। ये चारों आश्रम

ब्राह्मण वर्ग के लिए अनिवार्य थे, अन्य तीन वर्गों के लिए संन्यास-आश्रम नहीं था, प्रारंभिक तीन आश्रम ही थे।

अ. *अष्टछाप-काव्य में ब्रह्मचर्याश्रम चर्चा*—अष्टछापी कवियों का प्रादुर्भाव होने तक आश्रम-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, अतएव उसका विशद वर्णन उनके काव्य में नहीं मिलता। परन्तु उन कवियों ने अनेक पौराणिक प्रसंगों को भी काव्य का विषय बनाया था; इस कारण चारों आश्रमों का यत्र-तत्र उल्लेख अवश्य हुआ है। श्रीकृष्ण के विद्याध्ययन-प्रसंग में आचार्य संदीपन की चटसार में सुदामा के साथ उनके पढ़ने की बात कही गयी है और बहुत दिन बाद भेंट होने पर श्रीकृष्ण ने सुदामा को गुरु-पत्नी की आज्ञा से लकड़ी तोड़ने के लिए वन जाने की बात का स्मरण कराया है। शिक्षा की समाप्ति पर समावर्तन के पूर्व आचार्य को 'दक्षिणा' देने की बात भी अष्टछाप-काव्य में मिलती है। श्रीकृष्ण अपने आचार्य से 'दक्षिणा' माँगने की प्रार्थना करते हैं और गुरु-पत्नी की आज्ञा से उनके मृतक सुत यमपुर से ला देने पर उन्हें गुरुवर का आशीर्वाद प्राप्त होता है। हिरण्यकशिपु ने बालक प्रह्लाद को पाँच वर्ष की आयु में ही आचार्य संडामर्क को बुलाकर उनके साथ राजनीति पढ़ने के लिए चटसार भेज दिया था। गुरुकुल के प्रति सदैव श्रद्धा रखना और उसकी सेवा करना ही व्यक्ति का कर्तव्य है; उसका अपकार करना पाप है। महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि के मारे जाने के पाप का भागी धर्मराज युधिष्ठिर अपने को समझ बहुत दुखी होते हैं और उसका निवारण करने के लिए वन जाकर तपस्या करने की बात कहते हैं।

आ. *अष्टछाप-काव्य में गृहस्थाश्रम-चर्चा*—अष्टछापी कवियों में सूरदास ने तो अनेक पौराणिक व्यक्तियों के साथ श्रीकृष्ण के गृहस्थ-जीवन का वर्णन किया है; परन्तु अन्य कवियों ने इन प्रसंगों को विस्तार से नहीं लिखा है। गृहस्थाश्रम का प्रारंभ विवाह से होता है और विवाह की आयु शास्त्रीय दृष्टि से पचीस वर्ष के आस-पास मानी गयी है; परन्तु सूरदास के कपिलदेव सामान्य रूप से पुत्र के किशोर होते ही माता-पिता द्वारा उसका विवाह कर दिये जाने की बात कहते हैं जिसके पश्चात् वह धनोपार्जन में लगता है।

इ. *अष्टछाप-काव्य में वानप्रस्थाश्रम चर्चा*—इस आश्रम का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में विस्तार से नहीं है। ऊधव ने एक पद में गोपियों से श्रीकृष्ण के ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सभी कुछ होने की बात अवश्य कही है।

ई. *अष्टछाप काव्य में संन्यासाश्रम चर्चा*—इस आश्रम का उल्लेख लौकिक सुखों के त्याग के प्रसंग में 'ऊधव-गोपी-संवाद' में हुआ है। ऊधव जब व्रजबालाओं को सुखों की कामना त्यागने का उपदेश देते हैं तब उत्तर में गोपियाँ व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि रसिकप्रवर श्रीकृष्ण (और बलराम) के साथी अलिमनोवृत्तिधारी इस व्यक्ति को संन्यास से क्या लेना-देना है।

२. *अष्टछाप-काव्य में मनोविनोद*—

जीवन में मनोविनोद का महत्वपूर्ण स्थान है और बाल्यकाल से लेकर बुढ़ापे तक वह इसके लिए लालायित रहता है। प्रारंभिक अवस्था में इसकी आवश्यकता शारीरिक शक्तियों के विकास के लिए होती है तो प्रौढ़ावस्था में जीविका के अर्जन की व्यस्तता-जनित क्लांति या शिथिलता को दूर करने के लिए मनोविनोद की आनंददायी योजना मनुष्यमात्र बनाता रहता है। अतएव अवस्था के विकास के साथ - साथ मनोविनोद के साधन भी बदलते रहते हैं। बाल्यकाल में दौड़-धूप के ऐसे कार्यक्रमों से हमारा मनोरंजन होता है जो जल्दी थकानेवाले होने के कारण शरीर को स्वस्थ और मांसल बनाते हैं। ऐसे कार्यक्रम सामान्यतया युवावस्था तक चलते रहते हैं। उसके पश्चात् मनोरंजन के अपेक्षाकृत कम दौड़-धूप वाले कार्य-क्रमों में वह सहर्ष भाग लेता है। इस प्रकार, स्थूल रूप से, मनोरंजन के साधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम में बाल्यकाल के खेल और विनोद आते हैं और द्वितीय में मनोविनोद के वे साधन आते हैं जिनकी आवश्यकता अवस्था के उत्तरार्द्ध-काल में होती है। दोनों वर्गों के कार्यक्रम समाज के बीच में चलते हैं; और घर से बाहर जाकर, समाज के अन्य व्यक्तियों सहित उनमें भाग लेने पर सहयोग की भावना के विकास के साथ-साथ हमारा मनोरंजन भी होता है।

क. *बाल्यावस्था के खेल और विनोद*—शिशु की बहुत छोटी अवस्था में माता-पिता तथा अन्य संबंधी कभी तो तरह तरह से बातें करके उसका मन बहलाते हैं, और कभी खेलने के लिए उसको खिलौने देते हैं। छोटे बालकों के खेलने के खिलौने प्राय: उनके पालनों से भी बाँध दिये जाते हैं। विश्वकर्मा द्वारा रचे गये पालने में लटकते रंग-बिरंगे रत्नों, खिलौनों और मोतियों की झालरों को देखकर शिशु कृष्ण बार-बार प्रसन्न होकर किलकारी भरता है। सूरदास के एक पद में 'सोने की उड़न चिरैया' की चर्चा की गयी है। सोने की तो नहीं, हाँ, कागज, मिट्टी, तार, रुई आदि

की 'चिड़ियाँ' आज भी बाजार में बच्चों के खिलौने के रूप में बिकती हैं। इसीलिए, संभव है, शिशु कृष्ण के खिलौनों में 'सोने की उड़न चिरैया' जैसी चीजें भी रही हों।

कभी कभी शिशु का विनोद करने के लिए 'झुनझुना' या 'खुनखुना' बजाकर उसे खिलाया जाता है। नंददास की यशोदा पालने में लेटे हुए शिशु कृष्ण का मन इसी प्रकार बहलाती है। जब बालक कुछ और बड़ा हो जाता है तब उसको स्वयं खेलने के लिए 'खुनखुना' या 'झुनझुना' दिया जाता है जिसे बजाकर वह बहुत प्रसन्न होता है। सूरदास का कृष्ण तो 'खुनखुना' बजाकर कवि को उसी प्रकार हँसता जान पड़ता है जैसे शिव डमरू बजाकर हँसते हैं। अपने दोनों बालकों, बलराम और श्रीकृष्ण, के लिए तरह-तरह के मूल्यवान खिलौने खरीदने नंद जी कभी-कभी मथुरा जाते हैं। ऐसे खिलौने 'रत्नों' के मूल्य के होते हैं। साधारण खिलौने माता अपने गाँव में ही खरीद लेती है। बालक कृष्ण के 'भौंरा-चकडोरी' माँगने पर सूरदास की यशोदा कहती हैं—कल ही मैंने उन्हें खरीद लिया था; आले पर दोनों चीजें रक्खीं हैं; जाकर ले लो।

बालक कृष्ण जब और बड़ा होकर घर से बाहर जाता है तब अपनी अवस्था के दूसरे बालकों से उसका परिचय होता है। धीरे-धीरे परिचय के घनिष्ठ होने पर वह उनका साथी या सखा बन जाता है। तब वह सामाजिक जीवन का पहला पाठ पढ़ता और सभी साथियों के साथ खेलने लगता है। अष्टछाप-काव्य में वर्णित इस अवस्था के खेल तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम वर्ग में 'बिंगी' या 'फिरकी', 'चट्टा-बट्टा', 'चकई' या 'भौंरा-चकडोरी', 'गुड़ियाँ' आदि के खेल आते हैं जिनके लिए ज्यादा दौड़-धूप की आवश्यकता नहीं होती। दूसरे वर्ग में 'आँख-मिचौनी', 'छुआछुऔवल', 'वृक्षारोहण', 'बैल-बैल', 'कंदुक-क्रीड़ा', 'चौगान-बटा' आदि खेल आते हैं जिनमें अधिक दौड़-धूप करनी पड़ती है। तीसरा वर्ग 'पतंग' आदि अन्य खेलों का है। अष्टछाप-काव्य में बालकों के उक्त सभी खेल-खिलौनों की चर्चा आयी है।

अ. *कम दौड़-धूप के खेल*—परमानंददास के कृष्ण भवन के भीतर अनेक बालकों के साथ कभी डोरी से 'बंगी' नचाते फिरते हैं और कभी 'फिरकी' और 'भौंरा-चकडोरी' से खेलते हैं। 'चकई' का स्थान बालक कृष्ण के प्रिय खिलौनों में जान पड़ता है, तभी तो जब वह 'चंद-खिलौने' के लिए मचलता है तब माता यशोदा 'चकई-डोरि' का प्रलोभन देकर उसका

ध्यान बटाना चाहती हैं। 'भौंरा' आजकल के लट्टू की तरह डोरी में बाँधकर खेला जाता था। सूरदास और परमानंददास, दोनों के कृष्ण पाँच-सात लड़कों के साथ कभी नंद-भवन के द्वार पर और कभी ब्रज की सँकरी गलियों में 'भौंरा-चकडोरी' खेलते फिरते हैं। इसी प्रकार काठ का 'चट्टे - बट्टे' नामक खिलौना और पी-पी करके बजनेवाला 'पपैया' भी बालकों को सदा प्रिय रहता है। इन दोनों के साथ उक्त सभी खेल-खिलौनों की चर्चा परमानंददास के एक पद में मिलती है। 'बेंत' का स्थान खिलौनों में तो नहीं है, परन्तु बालक कृष्ण की प्रिय वस्तुओं में वह भी है जिसको सम्हालकर रखने की बात वे ऊधव के द्वारा माता यशोदा से कहलाते हैं। 'बिषान' और 'बाँसुरी' जैसे खिलौनों में भी बालक कृष्ण की रुचि बराबर रही है। बाँसुरी या मुरली बजाने में तो वे अतुलनीय थे ही, 'बिषान' जैसे बाजे दूसरे बालकों को भी बहुत प्रिय थे।

आ. *दौड़-धूप के खेल*—घर से बाहर आने और समवयस्क बालकों से परिचय होने के पश्चात् बालकों का मन दौड़-धूप के खेलों में अधिक लगता है। ग्रामीण बालकों को इसके लिए वातावरण और अवकाश, दोनों सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। गाय चराने जाने पर हरे-भरे मैदानों में दौड़ने, फलदार वृक्षों पर चढ़ने, नदी-सरोवर में स्नान करने आदि में उन्हें खूब आनन्द आता है। दौड़-धूप के इन्हीं सब खेलों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मिलती है। उन कवियों द्वारा वर्णित आँखमिचौनी, छुआ-छुऔवल, वृक्षारोहण, वृषभारोहण, कंदुक-क्रीड़ा और चौगान-बटा आदि को दौड़-धूप के खेलों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

१. *आँख-मिचौनी*—पाँच-छह वर्ष का बालक जब घर से बाहर जाकर खेलना चाहता है, तब माता यशोदा का वात्सल्य उसकी सुरक्षा के विचार से अपने ही सामने खेलने की प्रेरणा देता है। अपने पुत्र के संगी-साथियों को बुलाकर वह 'आँख-मिचौनी' का खेल खिलाती है जिसमें एक बालक की आँख मूँदी जाती है, बाकी सब भागकर इधर-उधर छिप जाते हैं। आँख खोल दी जाने पर 'चोर' बालक छिपे हुए साथियों को ढूँढ़ने निकलता है। उसके हटते ही छिपे बालक दौड़-दौड़कर आँख मूँदनेवाले को छूते हैं। जिस बालक को इसका अवसर नहीं मिलता और जो आँख मूँदनेवाले को छूने के पहले ही 'चोर' बालक द्वारा छू लिया जाता है, वह आगे के लिए 'चोर' हो जाता है और तब उसकी आँख मूँदी जाती है। सूरदास की यशोदा बलराम और कृष्ण को आँख से ओझल नहीं

करना चाहती। इसलिए वह दोनों पुत्रों से कहती है—अपने सब साथियों को बुलाकर यहीं खेलो। बालक कृष्ण इससे सहमत हो जाता है और 'आँख-मिचौनी' का खेल खेलने के लिए अपने सखा ग्वाल-बालों को घर बुलाता है। 'आँख कौन मूँदेगा' का प्रश्न उठते ही यशोदा का लड़ैता लाल झट वात्सल्यमयी माता का नाम ले देता है। खेल शुरू होता है। स्याम स्वयं 'चोर' बनता है और माता यशोदा उसकी आँख मूँदती हैं। सब ग्वाल-बाल इधर-उधर छिप जाते हैं। सबके छिप जाने पर 'चोर' की आँख खोल दी जाती है और वह छिपे हुए खिलाड़ियों को खोज कर छूने दौड़ता है। 'चोर' के इधर-उधर जाते ही छिपे हुए ग्वाल-बाल दौड़-दौड़ कर माता यशोदा को छूते हैं।

इस खेल के प्रसंग में कवि ने माता यशोदा के विनोद-भाव और बालक कृष्ण के स्पर्धा-भाव के संबंध में रोचक संकेत किये हैं। छोटे भाई को बड़े भाई से जितवा कर दोनों की बाल-लीला देखने के लोभ से माता यशोदा आँख मूँदने की अवस्था में बालक कृष्ण के कान में बलराम के छिपने का स्थान बता देती है; परन्तु कृष्ण के मन में प्रतिद्वंद्विता का भाव बलराम के प्रति नहीं, श्रीदामा के प्रति है। इसलिए वह स्पष्ट कह देता है—मुझे बलदाऊ से नहीं, श्रीदामा से काम है। सब बालक यशोदा को छू लेते हैं, केवल सुबल और श्रीदामा बच रहते हैं। तभी श्रीकृष्ण दौड़कर अपने प्रतिद्वंद्वी को छूकर 'चोर' बना देता है। यह देखकर सब बालक श्रीदामा को 'चोर' 'चोर' कहकर बहुत प्रसन्न होते हैं और आँख मुँदाने के लिए अब उसे यशोदा के पास जाना पड़ता है।

परमानंददास ने भी श्रीकृष्ण के 'आँख-मिचौनी' के खेल की ओर संकेत किया है तथा 'सारावली' में भी 'आँखमिचौनी' खेले जाने का उल्लेख है।

२. *छुआ-छुऔवल*—बालक कृष्ण जब कुछ और बड़ा होकर घर के बाहर आ जाता है तब अपने सखाओं के साथ दौड़ कर छूने का खेल खेलता है। 'छुआछुऔवल' के इस खेल में एक लड़का 'चोर' बनता है जो संकेत होते ही भागनेवाले दूसरे लड़कों को दौड़ कर छूता है। इस खेल में जीत उसकी होती है जो खूब तेज दौड़ता हो। बालक कृष्ण की अभी छोटी अवस्था है और दौड़ने का उसे अभ्यास भी नहीं है। इसलिए दौड़कर खेलते हुए दूसरे बालकों के साथ जब वह भी खेलना चाहता है तब हलधर उसे मना करते हैं। अपने बड़े भाई के रोकने पर कृष्ण

तत्काल उत्तर देता है—मेरे शरीर में भी बल है, मैं भी दौड़ना जानता हूँ और जब मेरी 'जोड़ी' श्रीदामा आगे जा रहा है तब मैं कैसे पीछे रह सकता हूँ ? इधर श्रीदामा ने भी श्रीकृष्ण की बात सुनी, वह भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। उसने तत्काल श्याम को दौड़ने की चुनौती दी। सब साथियों के सामने दी गयी चुनौती को भला श्याम कैसे न स्वीकार करता ? तब दोनों में दौड़ हुई; श्याम आगे, श्रीदामा पीछे। जरा देर ही में श्रीदामा ने तेज दौड़कर कृष्ण को छू लिया।

खेल में जीतनेवाले को स्वभावत: खुशी होती है और हारनेवाला खिसियाकर बहाने बताने लगता है। बालक कृष्ण भी श्रीदामा से हार कर कहने लगा— तुमने मुझे छुआ क्या, मैं तो जान कर खड़ा हो गया था। इस प्रकार झगड़ा बढ़ा। सच्ची बात यह थी कि कृष्ण हार गया था; इसीलिए सब बालक श्रीदामा की ओर थे और श्याम को खिझा रहे थे। कृष्ण को कुछ आशा बड़े भाई बलराम से थी। उसने भी न्याय का पक्ष लेकर कहा—कृष्ण को कुछ आता-जाता है नहीं, हार-जीत समझने की भी बुद्धि नहीं है। इसी से हार जाने पर दूसरों से झगड़ा करता है। और करे भी क्यों न ? न इसके माँ है, न बाप। खेल में हार की बात से खीझा हुआ श्याम भाई का अपने प्रति यह 'अन्याय' देखकर रोता हुआ घर की ओर चल पड़ा। सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने दौड़ के खेलों का इस प्रकार वर्णन नहीं किया है।

३. *वृक्षारोहण*—बालक कृष्ण कुछ और बड़ा होने पर सखाओं के साथ गाय चराने जाता है। वन में पहुँचने पर जब गायें चरने लगती हैं तब ग्वाल-बालों के साथ कृष्ण तरह-तरह के खेल खेलता है जिनमें एक है वृक्षों पर चढ़कर छूने का खेल। साधारण दौड़ से इसमें अंतर यह है कि वह खेल गली या मैदान में होता है और यह खुले स्थान में जहाँ वृक्ष अधिक हों। दौड़ के साधारण खेल में जीत होती है तेज दौड़ने-वाले की, लेकिन इस खेल में जीतता वह है जो बंदर की तरह फुर्ती से पेड़ पर चढ़ जाता है और जरूरत पड़ने पर जमीन पर कूद सकता या एक डाल से दूसरी डाल पर पहुँच सकता है। इसको 'चढ़ाचढ़ी' का खेल भी कहते हैं। अष्टछाप-काव्य में इस खेल का वर्णन 'सारावली' में मिलता है जिसमें 'आमरू' डार पर ग्वाल-बालों के चढ़ने और 'बिटप' से धरती पर कूदकर 'चढ़ाचढ़ी' का खेल खेले जाने की बात कही गयी है।

४. *बैल-बैल*—इस खेल में कई बालक 'बैल' बनने के लिए उसके

रंग से मिलता-जुलता कपड़ा ओढ़ कर वैसा ही शब्द करके आपस में लड़ते हैं। कभी-कभी 'बैलों' के साथ कुछ बालक 'गाय' भी बनते हैं। दूसरे पशु-पक्षियों का रूप धरना या केवल बोली बोलना भी इस खेल का एक अंग है। इस खेल को 'कृत्रिम वृषभ-क्रीड़ा' कह सकते हैं। नंददास ने कृष्ण की इस क्रीड़ा का उल्लेख 'दशम स्कंध' में करते हुए लिखा है कि कृत्रिम गाय-बैल बना कर, उनका-सा ही शब्द बुलवाकर कृष्ण अपने सखाओं को लड़ाते हैं।

५. *कंदुक-क्रीड़ा*—घर के बाहर खेले जानेवाले दौड़-धूप के खेलों में 'कंदुक-क्रीड़ा' या गेंद का खेल प्रायः सभी देशों और कालों के बालकों को बहुत प्रिय रहा है। अष्टछाप-काव्य में श्रीकृष्ण और उनके सखाओं की कंदुक-क्रीड़ा का वर्णन हुआ है। श्रीकृष्ण स्वयं गेंद खेलने का प्रस्ताव करते और जाकर उसे ले आने का आग्रह करते हैं। गेंद का खेल भी सीधे-सादे ढंग से होता है। एक बालक गेंद लेता है और भागते हुए दूसरे साथियों को गेंद फेंक कर मारता है। तब जो गेंद पा जाता है, वही मारने-वाले को गेंद से मारता है और दूसरे तरह-तरह से झुक कर, दायें-बायें हट कर उस मार से अपने को बचाते हैं। इस खेल में भी श्रीदामा ही कृष्ण का प्रतिद्वंद्वी है। हाथ में गेंद आते ही कृष्ण उसे ही ताक कर मारते हैं। श्रीदामा फुर्ती से एक ओर हट कर बच जाता है और गेंद कालीदह में जा गिरता है।

६. *चौगान-बटा*—गेंद या 'बटा' को एक सिरे पर टेढ़े या मुड़े हुए डंडे से, जिसे 'चौगान' कहते हैं, मार कर खेलने का खेल 'चौगान-बटा' कहलाता है। यह खेल बालकों के साथ युवकों को भी बहुत प्रिय रहा है जिसकी चर्चा आगे की जायगी। बालकों के इस खेल में 'बटा' को चौगान से मारने या ढरकाने का ही वर्णन अधिक मिलता है। श्रीकृष्ण की इस खेल में बड़ी रुचि रही है और माता यशोदा उनका 'चौगान-बटा' सम्हाल कर रखती फिरती है। कृष्ण और बलराम सुबल, श्रीदामा आदि ग्वाल-बालों को दो दलों में बाँट लेते हैं और तब धरती पर 'बटा' डालकर खेल 'जम' जाता है। कृष्ण जब हारने लगते हैं तब बाल-स्वाभावानुसार कुछ 'पेल' कर बैठते हैं। परमानंददास ने वृन्दावन के मैदान में 'बाजि' पर चढ़ कर चौगान खेलने का वर्णन किया है।

अन्य खेल—इस वर्ग में 'पतंग' उड़ाना, कथा-कहानी कहना और

पहेली बूझना जैसे वे खेल आते हैं जिनमें न ज्यादा दौड़-धूप चाहिए और न अधिक संगी-साथी ही।

१. *पतंग*—श्रीकृष्ण या उनके सखाओं के पतंग या चंग उड़ाने की चर्चा सूरदास के काव्य में नहीं है और अष्टछाप के अन्य कवियों में केवल परमानन्द दास ने इसका वर्णन किया है। उनके कान्ह अटारी पर चढ़ कर चंग उड़ाते हैं। कृष्ण के साथ दूसरे ग्वाल-बाल भी पतंग या गुड़ी उड़ाने में रुचि लेते हैं। पतंग उड़ाने पर बिना 'पेंच' लड़ाए उड़ानेवालों को उसमें पूरा आनंद नहीं आता। परमानंददास ने भी पतंगों के पेंच लड़ाये जाने की ओर एक पद में संकेत किया है। सूरदास ने श्रीकृष्ण या उनके सखाओं द्वारा तो पतंग या 'गुड़ी' नहीं उड़वायी है, परन्तु उसकी चर्चा अवश्य की है जिससे पता चलता है कि उनके समय में पतंग उड़ाना निश्चय ही मनोरंजन के प्रमुख साधनों में था।

२. *कहानी सुनाना*—मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-वर्द्धन के उद्देश्य से बालक-बालिकाओं को सोते समय दादा-दादी या नाना-नानी प्रायः कहानियाँ सुनाया करते हैं। कभी-कभी लंबी यात्रा में भी साथ के बालकों का मन बहलाये रखने के उद्देश्य से प्राचीन कथाएँ सुनायी जाती हैं। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण का मनोरंजन इसी प्रकार किया था। अष्टछाप-काव्य में यात्रा-प्रसंग में तो कहानी कहने की बात कहीं आती नहीं है, हाँ, परमानंददास के कृष्ण-बलराम जब रात को सोते हैं तब माता यशोदा अवश्य उन्हें कहानी सुनाती हैं जिसे दोनों बड़े ध्यान से सुनते हैं। सूरदास ने केवल कृष्ण को राम-कथा सुनाये जाने की बात लिखी है जिसे सुनते समय वे बराबर 'हुंकारी' भरते जाते हैं। इस समय तक उनकी सद्बुद्धि का इतना विकास हो गया है कि सीता-हरण की बात सुन कर वे बहुत सावधान हो जाते हैं। सूरदास के बलराम की अनुपस्थिति का कारण संभवतः उस समय उनका अपनी माता रोहिणी के पास होना जान पड़ता है।

३. *पहेली-बुझौवल*—दौड़-धूप के पश्चात् थक जाने पर बालक प्रायः पहेली बूझकर अपना मनोरंजन करते हैं। इसकी चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में है। सूरदास के कृष्ण वन में ग्वाल-बालों के साथ जोड़ी या पार्टी बनाकर पहेली-बुझौवल खेलते हैं और दूसरों की पहेलियों का उत्तर देकर अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हैं।

४. *शर-क्रीड़ा*—ऊपर जिन खेलों की चर्चा है, उनमें सामान्य

बालकों की रुचि अधिक रहती है; परन्तु राजकुमारों को उन खेलों के साथ-साथ अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा आरंभ से दी जाती है जिससे उनका मनोरंजन भी होता है। सूरदास के राम और उनके भाई छोटी ही अवस्था से धनुप-बाण लिये आँगन में खेलते-फिरते हैं।

ग. *बालिकाओं के खेल*—बालकों की तरह बालिकाओं को भी खेलों की आवश्यकता होती है; परन्तु अष्टछाप-काव्य में बालकों के खेलों की चर्चा जितने विस्तार से की गयी है, बालिकाओं के खेलों की उतने विस्तार से नहीं। उन कवियों ने राधा तथा उनकी सखियों के खेल-खिलौनों के नाम नहीं गिनाये हैं; परन्तु राधा के मुख से अपनी 'पौरी' पर खेलते रहने की बात अवश्य कहला दी है। अपनी पौरी पर खेलते रहने का संकेत संभवतः यह है कि अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भावकाल में, कदाचित् सुरक्षा के विचार से, लड़कियों को घर से बाहर जाने की बहुत कम स्वतंत्रता थी। बालक तो कहीं भी खेलने जा सकते थे, लेकिन बालिकाओं को घर से दूर नहीं जाने दिया जाता था।

बालिकाओं का सबसे प्रिय खेल 'गुड़ियाँ' खेलना रहा है जिससे उनको आरम्भ से ही गार्हस्थ्य जीवन की शिक्षा, परोक्ष रूप से, मिल जाती है। 'गुड्डे-गुड़िया' को सजाने-सँवारने और उनकी गृहस्थी जुटाने में बालिकाओं को बड़ा आनंद आता है। कभी-कभी सखियों के 'गुड्डे-गुड़ियों' से विवाह रचाने में भी वे बड़ा उत्साह दिखाती हैं। किशोरी रूपमंजरी के गुड़ियाँ खेलने, उनके विवाह रचाने और तदन्तर उनको सेज पर सुलाते समय की लज्जा का अनुभव करने की बात का उल्लेख नंददास ने 'रूप-मंजरी' में किया है।

बालिकाओं का दूसरा प्रिय खेल 'झूला झूलना' है जिसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में अनेक स्थलों पर हुई है। परन्तु झूला झूलने का आनंद केवल वर्षा ऋतु में आता है, ग्रीष्म, शरद, शिशिर आदि में नहीं। अतएव 'झूले' की चर्चा ऋतूत्सवों के अंतर्गत विस्तार से की जायगी।

घ. *युवकों के खेल*—ऊपर जिन खेलों की चर्चा की गयी है, वे मुख्यतः आठ-दस वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए ही हैं। अवस्था में किशोर, परन्तु बुद्धि में बालक भी उनमें सरुचि भाग ले सकते हैं। युवकों और प्रौढ़ों को उक्त खेलों में अधिक आनंद नहीं आता। यद्यपि शारीरिक विकास में सहायक दौड़-धूप, चौगान, या मल्लक्रीड़ा-जैसे खेल युवकों के लिए भी बहुत उपयोगी होते हैं, तथापि उनके साथ-साथ वे मृगया-जैसे

अधिक साहस के खेलों में, संगीत, वाद्य और नृत्य-जैसी कला-संबंधी योजनाओं में एवं चौपड़ और द्यूत-क्रीड़ा जैसे बौद्धिक दाँव-पेंच के खेलों में भी सरुचि भाग लेना चाहते हैं। युवकों के लिए मनोविनोद के ऐसे ही साधनों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है। स्थूल रूप से उन साधनों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ. साहस के खेल, आ. बौद्धिक दाव-पेंच के खेल, इ. कला-कौशल के खेल तथा ई. मनोरंजन के अन्य साधन।

अ. *साहस के खेल*—इस वर्ग के अंतर्गत चौगान, मल्लयुद्ध और मृगया आदि मनोरंजन के साधन आते हैं जिनसे शारीरिक शक्ति के विकास में सहायता मिलती है और जिनमें सफल होने के लिए बल के साथ साथ शरीर में स्फूर्ति की भी आवश्यकता होती है।

१. *चौगान*—'बटा-चौगान' नामक एक खेल की चर्चा बालकों के खेलों के अंतर्गत की जा चुकी है जिसमें दो दल बाँटकर धरती पर पड़े हुए 'बटा' को 'चौगान' से मारा जाता है। युवकों का 'चौगान' खेल बालकों के खेल से भिन्न होता है और घोड़ों पर चढ़कर 'पोलो' के ढंग पर खेला जाता है। 'चौगान' का यह खेल एक सिरे पर टेढ़े या मुड़े हुए डंडे से जिसे 'हेंगुरि' भी कहते हैं, खेला जाता है। जायसी ने 'चौगान' का खेल खेलने वाले पुरुषों के साथ इस खेल में रुचि रखनेवाली स्त्रियों की भी चर्चा की है। इस खेल के मैदान में दोनों सिरों पर, आजकल के हाकी-फुटबाल के मैदानों के सिरों पर बने 'गोल पोल्स' की तरह, दो-दो खंभे लगे रहते थे जिन्हें 'हाल' कहते थे और 'हाल' के बीच से गेंद निकालने पर 'गोल' हो जाता था। इस तरह 'हाल करने' से तात्पर्य 'गोल' करने से और 'हाल' होने से 'गोल' होने से है। अष्टछाप-काव्य में इस खेल का वर्णन सूरदास और परमानंददास, केवल दो कवियों ने किया है। परमानंददास ने, जैसा पीछे कहा जा चुका है, घोड़े पर चढ़े हुए श्रीकृष्ण और उनके सखाओं को वृन्दावन के मैदान में यह खेल खिलाया है। 'श्रीमद्भागवत्' में कहीं ऐसा उल्लेख नहीं है कि श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में घुड़सवारी भी की थी; संभवत: इसी कारण सूरदास मथुरा जाने के पूर्व तक घोड़े पर चढ़कर श्रीकृष्ण और उनके सखाओं के 'चौगान' खेलने की बात नहीं लिखते। उन्होंने द्वारकावासी श्रीकृष्ण को घोड़े पर चढ़कर 'चौगान' खेलते अवश्य कहा है। उनके साथ यदुकुल के अनेक 'कुँवर' हैं जो 'उच्चैश्रवा' जैसे ऊँचे और सबल अनेक रंगों के घोड़ों पर सवार होकर द्वारावती के रुचिर मैदान में 'चौगान' खेलने आये हैं। उनके घोड़े की

जीन और साज जड़ाऊ है। खिलाड़ियों के बटते ही खेल शुरू हो जाता है। श्रीकृष्ण जब गेंद बढ़ाते हैं तब हलधर और दूसरे खिलाड़ियों के रोके भी नहीं रुकते और 'हाल' करके खेल में जीत ही जाते हैं।

२. *मल्लयुद्ध*—भारतीय संस्कृति में मनोरंजन के साथ-साथ शारीरिक बल-वृद्धि के लिए 'मल्लयुद्ध' का इतना महत्वपूर्ण स्थान रहा है कि इसको हमारे यहाँ 'मल्लविद्या' भी कहा गया है। यों तो सिंह, बाघ, वाराह आदि पशुओं से भी मल्लों के युद्धों का वर्णन प्राचीन साहित्य में कहीं-कहीं मिलता है, तथापि सामान्यतया यह समवयस्क पुरुषों के ही मनोरंजन का प्रमुख साधन रहा है। मनोरंजन का यह साधन इतना लोकप्रिय था कि राजवंशी लोग भी 'मल्ल-विद्या' सीखते थे। भीम तथा जरासंध, दोनों ही इस विद्या में इतने निपुण थे कि उनका मल्लयुद्ध कई दिन तक चलता रहा था। राजदरबारों में अनेक मल्ल भी रहते थे और कंस का राज-दरबार तो इनके कारण बहुत प्रसिद्ध था, यद्यपि उसके दरबारी मल्ल मनोरंजन से अधिक ध्यान व्यायाम के द्वारा शरीर पुष्ट करने की ओर देते थे।

अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण और उनके सखा ग्वाल-बालों के परस्पर मल्लयुद्ध का वर्णन कहीं नहीं किया है; केवल 'सारावली' में कंस अवश्य श्रीकृष्ण और बलराम से यह कहता है—हमने सुना है कि वृन्दावन में तुम लोग गोपों के साथ खूब मल्लक्रीड़ा करते हो। इसलिए अपने युद्ध-कौशल का प्रदर्शन हमारे सामने भी करो। कृष्ण और बलराम ने उसका तात्पर्य समझ लिया; फिर भी अनजान रहकर उन्होंने कंस के मल्लों से खूब दाँव-पेंच दिखाकर कुश्ती लड़ी। उनका कौशल देखकर व्रजराज नंद जी प्रसन्न हो गये। 'सूरसागर' में कंस के योद्धाओं की ललकार पर श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं कि हम काल से भी भिड़ने को तैयार हैं, तुम बेचारे किस गिनती में हो। पश्चात्, मल्लयुद्ध में कंस के महाभटों की भी कृष्ण-बलराम के सामने कुछ नहीं चलती और सब मारे गये। परमानंददास ने भी कृष्ण-बलराम द्वारा अनेक मल्लों के पछाड़े जाने की बात कही है। इससे यह मानना ही पड़ता है कि गोकुल-वृन्दावन में उन्होंने मल्ल-विद्या का अभ्यास अवश्य किया होगा। वहाँ उनकी यह क्रीड़ा मनोरंजन के साथ-साथ बल-वृद्धि के लिए ही होगी जिसका लाभ उन्हें आगे चलकर सहज ही प्राप्त हो गया।

लंका-वर्णन में रावण के योद्धाओं की चर्चा भी 'सूरसागर' में मिलती है, और वे लोग ठौर-ठौर कुंत-असि-बान का अभ्यास करते हैं।

३. *मृगया*—'चौगान' की तरह मृगया भी साधनसंपन्न वर्ग के मनोरंजन का साधन है जिसके लिए व्यक्ति में पर्याप्त साहस भी चाहिए। आरंभ में 'मृगया' के नाम पर पशुओं के साथ पक्षियों का भी शिकार खेला जाता था; परंतु अष्टछाप-काव्य में 'मृगया' के अंतर्गत केवल मृग आदि के आखेट का ही उल्लेख हुआ है। पक्षियों को मारने या जाल में फँसानेवाले को 'पारधि' या 'पारधी' और 'व्याध' आदि कहा जाता है। मृगया के लिए जानेवाले व्यक्ति या 'अहेरी' कभी घोड़े पर चढ़कर जाते हैं, कभी रथ पर। 'सारावली' में वसुदेवकुमार के अश्व पर चढ़चर 'मृगया' के लिए जाने का उल्लेख हुआ है तो 'सूरसागर' में एक राजा रथ पर आखेट के लिए जाता है। नंददास की 'रूपमंजरी' में धर्मराव नामक राजा ऐसा अहेरी है कि उसका कौतुक देखकर सबको अचरज होता है। 'सारावली' में दशरथ-पुत्र राम अपने भाइयों के साथ 'हरिन' आदि जंतुओं का आखेट करने जाते हैं। तात्पर्य यह कि अष्टछाप-काव्य में केवल पौराणिक प्रसंगों में 'मृगया', 'अहेर' या 'सिकार' का वर्णन हुआ है; उसमें वसुदेवकुमार के रुचि लेने की बात केवल 'सारावली' में कही गयी है।

आ. *बौद्धिक दाँव-पेंच के खेल*—इस वर्ग के अंतर्गत 'चौपड़' और 'द्यूतक्रीड़ा' आते हैं, बैठकर खेले जाने के कारण जिनके लिए अधिक शारीरिक बल की आवश्यकता नहीं होती। 'चौपड़' का खेल प्राय: उनके लिए होता है जिनके पास अधिक अवकाश हो; इस प्रकार यद्यपि निर्धन भी अवकाश के समय 'चौपड़' खेलते हैं, तथापि आर्थिक दृष्टि से मध्यम और धनी वर्गों में यह खेल सामान्यतया अधिक प्रचलित है। 'चौपड़' को 'चौसर' भी कहते हैं और यह बिसात पर 'पासों' और 'गोटियों' से खेला जाता है। 'चौपड़' खेलने के तीन पासे होते हैं जो प्राय: हाथीदाँत के बने होते हैं। इसके खिलाड़ियों की संख्या सामान्यतया चार होती है। अष्टछापी कवियों में केवल 'सूरदास' ने इस खेल का वर्णन किया है। 'अष्टछाप' के अंतर्गत 'सूरदास की वार्ता' में 'चौपड़' खेलते हुए कुछ व्यक्तियों की चर्चा आयी है। इसी प्रसंग में सूरदास ने 'चौपड़' खेलने का आदर्श रूप बताते हुए निम्नलिखित पद कहा है—

काम-क्रोध जंजाल भूल्यौ, ठग्यो ठगिनी नारि।
'सूर' हरि के भजन बिनु चल्यो दोउ कर झारि ॥

'सूरसागर' के एक अन्य पद में 'चौपड़' खेलने का विस्तृत वर्णन है जिसमें 'पाँसों' से पड़नेवाले विविध अंकों का अध्यात्मपरक अर्थ

लगाया जा सकता है जैसे 'पाँच' का अंक अर्थात् पंचशर कामदेव से पीड़ित होना, 'सात' अर्थात् सात द्वीप या सात द्वीपवती पृथ्वी, 'आठ' अर्थात् आठों पहर तथा आठ 'सिद्धियाँ', 'नौ' अर्थात् नौ द्वारवाला शरीर, 'दस' अर्थात् दस दिशाएँ, 'ग्यारह' अर्थात् पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ और एक मन, 'बारह' अर्थात् बारह महीने जिसका तात्पर्य हुआ 'सर्वदा', 'तेरह' अर्थात् स्वर्ग-साधना की तेरह युक्तियाँ, 'चौदह' अर्थात् चौदहों भुवन, 'पंद्रह' अर्थात् पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ एवं रूप, रस, गंध, शब्द तथा स्पर्श; 'सोलह' अर्थात् सोलहों शृंगार से युक्त षोडशवर्षीया युवती आदि। 'सारावली' में 'चौपड़' खेलने का उल्लेख तीन छंदों में मिलता है जिनमें से प्रथम दो में अनेक युवतियों के साथ द्वारकावासी श्रीकृष्ण के 'चौपड़' खेलने की बात है और तीसरे में युधिष्ठिर का उस खेल में लगा होना बताया गया है।

द्यूतक्रीड़ा—यों तो किसी भी खेल को लेकर 'दाँव' बदकर उसे 'द्यूत' का रूप दिया जा सकता है, जैसा कि ऊपर उद्धृत अंतिम उदाहरण से स्पष्ट है जिसमें 'चौपड़' के खेल को युधिष्ठिर 'द्यूत' मानकर ही खेलते हैं, तथापि सामान्यतया 'द्यूत' से तात्पर्य 'बाजी' बदकर 'पाँसे' फेंकने या 'चाल' चलने से है जिसमें तत्काल हार-जीत हो जाती है। जुए के खेल से यद्यपि मनोरंजन होता है, तथापि हार-जीत के आवेश में कभी-कभी ऐसी हानि भी हो जाती है जिसके लिए व्यक्ति को अनेकानेक कष्ट भोगने पड़ते हैं और जीवन भर पछताना पड़ता है; फिर भी, संभवतः जीत जाने के लोभ से, 'द्यूत' का चलन समाज में सदा से रहा है। यों तो निम्न वर्ग के व्यक्ति भी 'द्यूत' में सर्वत्र लगे दिखायी देते हैं, तथापि पौराणिक प्रसंगों में, मुख्य रूप से, शासक-वर्ग की ही 'द्यूत-क्रीड़ा' की बात कही गयी है। सूरदास ने दुर्योधन द्वारा 'कपट पाँसों' से युधिष्ठिर को 'द्यूत' या 'जुआ' खिलाकर सब 'भूमि-भंडार', यहाँ तक कि द्रौपदी नारी भी जीत लेने की बात एक पद में कही है। 'सारावली' में भी चौपड़ के खेल में कपट से ही युधिष्ठिर के हारने का उल्लेख हुआ है।

'द्यूत' या 'जुए' के खेल को सूरदास सदैव निंदनीय ही समझते रहे, तभी तो उन्होंने व्यर्थ ही जन्म खोने को 'जुए' में हारने जैसा कहा है। 'जुए' में व्यक्ति चाहे जिस उत्साह से भाग ले, धन-संपत्ति हार जाने पर उसकी दशा बहुत दीन हो जाती है। श्रीकृष्ण को मथुरा में छोड़कर अकेले लौटनेवाले नंद जी की तुलना सूरदास ने हारे हुए 'जुआरी' से की

है। जुए में हारा हुआ 'जुआरी' सदैव सर नीचा किये रहता है, ऊपर देखने या किसी से दृष्टि मिलाने का उसमें साहस नहीं होता, इस बात को भी सूरदास ने लक्ष्य किया है। सूरदास की दृष्टि में 'द्यूत' या 'जुआ' कितना अधम कर्म था, इसका पता उनके एक और पौराणिक उल्लेख से लगता है। कलियुग जब राजा परीक्षित से अपने निवास-स्थान पूछता है तब उन्होंने उसके पाँच स्थान बताये हैं—जहाँ हरि-विमुख, वेश्या, मद्यप, बधिक और 'जुआ खेलनेवाले' रहते हों, वहाँ वास करो। तात्पर्य यह कि सूरदास 'जुए' को निंदनीय कर्म समझते हैं और इसलिए विवाह के अवसर की 'द्यूत-क्रीड़ा' को छोड़कर, जो केवल विनोदार्थ होती है, जिसमें किसी प्रकार की आर्थिक या सांपत्तिक हार-जीत का प्रश्न ही नहीं उठता और जिसके उदाहरण विवाह-संस्कार के वर्णन में पीछे दिये जा चुके हैं, उन्होंने अपने आराध्य अथवा उनके अन्य अवतारी रूपों के 'जुआ' खेलने की बात नहीं लिखी है। अष्टछाप के अन्य कवि भी इस विषय में उनसे ही सहमत जान पड़ते हैं। केवल परमानंददास ने इस प्रसंग में, संभवत: अपनी मौलिकता का परिचय देने के उद्देश्य से, श्रीकृष्ण की 'द्यूतक्रीड़ा' का भी वर्णन दो प्रसंगों में किया है। पहले प्रसंग में दीपमालिकावाली अमावस्या को बलराम के साथ उनको द्यूत' खेलने की प्रेरणा परमानंददास देते हैं। दूसरे प्रसंग में श्रीकृष्ण प्यारी राधा के साथ 'पाँसा' खेलते हैं जिसमें राधा का पहला दाँव पड़ने पर श्याम 'पीत पिछौरी' हार जाते हैं और दूसरे दाँव में मुरली। 'द्यूतक्रीड़ा' के ये दोनों प्रसंग वस्तुत: शुद्ध विनोद की दृष्टि से लिखे गये हैं।

ग. *कला-कौशल के खेल*—इस वर्ग में संगीत, वाद्ययंत्र और नृत्य-संबंधी मनोरंजन के वे साधन आते हैं जो सभी देशों और सभी कालों में मानवमात्र को प्रिय रहे हैं। वस्तुत: संगीतमय शब्दों में ही आंतरिक उल्लास की अभिव्यक्ति अभीष्ट मनोहारी रूप से हो सकती है और संगीत का वाद्य से अभिन्न संबंध है। इसी प्रकार नृत्य भी मानव के आंतरिक उल्लास की अधिकता का परिचायक है और सदैव से मनोरंजन का लोकप्रिय साधन रहा है। अष्टछापी कवियों ने सभी सामूहिक उत्सवों और 'रास'-जैसी लीलाओं के अवसर पर संगीत और वाद्यों के मधुर स्वर के साथ नृत्य का वर्णन किया है। राजाओं की नृत्यप्रियता तो सर्वविदित है ही और अनेक पौराणिक प्रसंगों में खुले स्थानों में, जिन्हें 'अखारा' कहा गया है, स्त्रियों के नृत्य होने की बात सूरदास आदि कवियों ने लिखी है। इसी प्रकार दूसरों के सामने अपनी कला का प्रदर्शन करके

आजीविका का अर्जन करनेवाले नर्तकों के नृत्य से भी निस्संदेह दूसरों का मनोविनोद होता ही है, जिसके संबंध में 'अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल' से आरंभ होनेवाले सांग-रूपकयुक्त पद में सूरदास ने संकेत किया है। मनोरंजन के इन साधनों के विषय में अष्टछापी कवियों के विचार 'साहित्य और कला' शीर्षक परिच्छेद के अंतर्गत विस्तार से दिये जायँगे।

घ. *मनोरंजन के अन्य साधन*—इस वर्ग के अंतर्गत कुंज-विहार, जल-विहार पशु-पक्षी से क्रीड़ा और नट-विद्या आदि मनोरंजन के साधन आते हैं जिनमें से प्रथम तीन में व्यक्ति स्वयं अपना मनोरंजन करने में प्रवृत्त होता है और अंतिम अर्थात् नट-विद्या में दूसरों के प्रदर्शन को दर्शक बन कर देखता है। अष्टछापी कवियों ने मनोरंजन के इन सभी साधनों की यत्र-तत्र चर्चा की है।

अ. *कुंज-विहार*—जिस प्रकार बड़े-बड़े नगरों में आजकल उद्यान या 'पार्क' रहते हैं जहाँ भ्रमणार्थ स्त्री-पुरुष जाया करते हैं, उसी प्रकार पूर्वकालीन नगरों के बाहर भी उद्यान-कुंज आदि बनाये जाते थे जहाँ नर-नारी क्रीड़ार्थ एकत्र हुआ करते थे। अष्टछाप-काव्य के अनुसार, वृन्दावन में यमुना-तटवर्ती अनेक कुंजों में भाँति-भाँति के फूल खिले रहते हैं और शीतल-मंद-सुगंध पवन बहती रहती है। सारस, हंस, मोर, पारावत आदि भाँति-भाँति के पक्षियों की बोलियों से ये कुंज सदैव गुंजायमान रहते हैं। ऐसी रमणीय कुंजों का उल्लेख समस्त अष्टछाप- काव्य में, मुख्यत: संयोग-लीला के प्रसंग में, हुआ है जहाँ श्रीकृष्ण, राधा तथा अन्य गोपियों के साथ नित्य आमोद-प्रमोद और विहार किया करते हैं।

आ. *जल-विहार*—यों तो शीतप्रधान देशों के निवासी भी तैरने का आनंद लिया करते हैं, परंतु भारत-जैसे गरम देश में तो जल-विहार एक प्रकार से जीवनचर्या का प्रमुख अंग है। भारतीय धर्म-चर्या में नदी के स्नान को महत्वपूर्ण स्थान भी इसी कारण दिया गया है। भारतीय संस्कृति का जन्म और विकास भी नदियों के तटवर्ती नगरों में ही मुख्य रूप से हुआ है। अष्टछाप के आराध्य श्रीकृष्ण की लीला-भूमि वृन्दावन भी श्याम सलिलवती यमुना नदी के किनारे बसा है और इसलिए जलविहार या जल-क्रीड़ा भी श्रीकृष्ण के मनोरंजन के मुख्य साधनों में वर्णित है। छोटे-छोटे बालकों को नदी में स्नान करने का बड़ा चाव रहता है और बालक कृष्ण भी प्रारंभ से ही इसमें रुचि लेता रहा है; परंतु माता-पिता ममतावश किसी अनिष्ट की आशंका से उसे नदी में नहाने से रोकते रहते हैं। यही

कारण है कि जब बालक कृष्ण माता से गाय चराने जाने की आज्ञा माँगता है तब पहले ही जमुना-जल में न नहाने की बात शपथपूर्वक कह देता है। श्रीकृष्ण का यह कथन परोक्ष रूप से सूचित करता है कि बाल्यकाल से ही उसकी रुचि जमुना-स्नान के प्रति थी और माता यशोदा भी उसकी इस रुचि से परिचित हो गयी थीं।

आगे चलकर तो जल-विहार में श्रीकृष्ण का मन खूब ही रमता है। ग्वालबालों और गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की जल-क्रीड़ा का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने अनेक स्थलों पर किया है। रासलीला के पश्चात् 'रास-रस से श्रमित' व्रजबालाओं के साथ श्रीकृष्ण प्रातः जमुना-तट पर आते हैं और जल-विहार प्रारंभ होता है। श्याम-श्यामा जमुना में विहार करते और परस्पर जल छिड़कते हुए अत्यंत सुशोभित होते हैं। इस क्रीड़ा में मग्न राधा की कंचुकी के बंद छूट जाते हैं, उसकी गीली लटें इधर-उधर लटकने लगती हैं, सिंदूर फैल जाता है, किंकिणी ढीली हो जाती है। गीला वस्त्र उसके शरीर से लिपटा हुआ है। जल-क्रीड़ा के बीच श्याम-श्यामा परस्पर गलबहियाँ डालकर खड़े होते हैं। सभी व्रज-बालाएँ भी जल में ही हैं, कोई जाँघ तक, कोई कमर तक, कोई हृदय और कोई गले तक जल में खड़ी है। श्रीकृष्ण, राधा तथा व्रजबालाओं के शरीरों से मलयज, कुंकुमा आदि छूटकर जमुना-जल में मिल गया है और तट पर भी उसकी 'कीच' सी हो गयी है।

'रासपंचाध्यायी' में नंददास ने भी श्रीकृष्ण और गोपियों के जल-विहार का वर्णन किया है। गोपियों के साथ श्रीकृष्ण उन्हें 'तरुणी करिनी सहित गजराज'-से जान पड़ते हैं। वे परस्पर जल भी छिड़कते हैं। जल में लुकती, छिपती और खेलती हुई गोपियाँ बादलों में चमकती बिजलियाँ-सी जान पड़ती हैं। भीगे हुए वस्त्रों के शरीर से लिपट जाने की शोभा का वर्णन करने में कवि अपने को असमर्थ पाता है और गीले वस्त्रों को निचोड़ने से गिरता हुआ जल ऐसा प्रतीत होता है जैसे उस सुन्दर शरीर से बिछुड़ने की पीड़ा पर वे आँसू बहा रहे हों।

अष्टछाप के अन्य कवियों ने श्रीकृष्ण और गोपियों के जल-विहार का इतना विस्तृत वर्णन नहीं किया है, परंतु तद्विषयक उल्लेख उनके काव्यों में भी मिलते हैं। परमानंददास ने गोपाल की जल-क्रीड़ा के समय ग्वाल-बालों के उछलने-कूदने और हँसने-हँसाने की बात लिखी है। इसी प्रकार

गोविंदस्वामी ने श्याम-श्यामा के परस्पर छींटे फेंककर विविध केलि करने और गीले वस्त्रों से शरीर की अनुपम शोभा होने की बात कही है।

जल-विहार का एक अंग नौका-विहार भी है जिसकी ओर केवल परमानंददास ने दो पदों में संकेत किया है। अन्य कवि इस संबंध में मौन हैं।

इ. *पशु-पक्षियों से क्रीड़ा*—मानव का आमोदप्रिय हृदय पशु-पक्षियों की विविध क्रीड़ाओं से भी अपना मनोरंजन करता रहा है। अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण का संबंध पशुओं में केवल गैयों से दिखाया है जिनको वे बड़े दुलार से चराते हैं और जिनकी याद उनको मथुरा चले जाने पर भी बराबर बनी रहती है; तभी तो वे ऊधव के द्वारा पिता नंद से कहलाते हैं कि मेरी अनुपस्थिति में 'धौरी-धूमरि गैयों' को किसी तरह का दुख न हो। गायें भी श्रीकृष्ण से इतना हिली थीं कि उनके मथुरा चले जाने पर सगे संबंधियों के समान ही वियोग-दुख का अनुभव करती रही थीं। इसी प्रकार 'सुवा पढ़ावत गनिका तारी'-जैसी उक्तियों से यह तो स्पष्ट होता है कि तोता, मैना-जैसे पक्षियों को पालना और उनको 'पढ़ाना' मनोरंजन के सामान्य साधनों में था, जिसकी ओर परमानंददास ने भी एक पद में संकेत किया है; परन्तु किसी अष्टछापी कवि ने श्रीकृष्ण द्वारा पक्षियों के पाले जाने की बात नहीं कही है। 'सूरसागर' के एक पद में अवश्य 'ग्वाल-मंडली' द्वारा 'खगों' के खिलाये जाने का उल्लेख हुआ है जिससे पक्षियों के द्वारा भी कुछ देर मनोरंजन होने की बात की पुष्टि होती है।

ई. *नट-विद्या*—इस शीर्षक के अंतर्गत वे बातें आती हैं जिनका आनंद दर्शक बनकर ही लिया जा सकता है। बाजीगर और नट के खेल इसी वर्ग में आते हैं जिनसे दर्शकों का मन बहलाकर ये लोग आजीविका का अर्जन करते हैं। अष्टछाप-काव्य में 'बाजीगर' और नट का उल्लेख मात्र हुआ है। नंददास के 'अनेकार्थ-मंजरी' नामक काव्य में 'भगर विद्या' का एक स्थान पर उल्लेख हुआ है जिसका संकेत संभवत: 'इंद्रजाल' की ओर ही है। अन्य अष्टछापी कवियों ने इसकी चर्चा नहीं की है।

समीक्षा—बालकों, किशोरों और युवकों के उक्त सभी खेलों के संबंध में दो बातें ध्यान में रखने की हैं जिनका संबंध भारतीय संस्कृति से है। पहली बात यह है कि दौड़-धूप के फुटबाल, हाकी आदि नवीनतम खेलों के समान ही सहकारिता की भावना का विकास करने का गुण अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित उक्त भारतीय खेलों में भी कम नहीं है; क्योंकि खिला-

ड़ियों को दो दलों में बाँटने का प्रश्न आते ही सहयोग के भाव का जन्म स्वतः हो जाता है। परंतु आधुनिक विदेशी खेलों से एक दूसरी बात में ये भारतीय खेल बढ़े-चढ़े हैं और वह यह है कि भारतीय खेल हाकी, क्रिकेट-जैसे विदेशी खेलों की तरह अधिक व्यय-साध्य नहीं होते और निर्धन से निर्धन वर्ग के बालक उनमें सहज ही साधिकार भाग ले सकते हैं। 'बटा-चौगान' का राजसी खेल अवश्य ऐसे खेलों में है जिसको सामान्य व्यक्ति नहीं खेल सकते। घोड़ों पर चढ़कर खेला जानेवाला यह खेल वास्तव में धनी वर्ग के लिए ही है और श्रीकृष्ण भी उसको तभी खेलते हैं जब उनका ऐश्वर्य चक्रवर्ती सम्राटों से भी बढ़कर हो जाता है; अस्तु। इन भारतीय खेलों की तीसरी विशेषता उनके नियमों की सरलता में मानी जा सकती है। जटिल या सूक्ष्म नियमों वाले खेलों में खिलाड़ियों के लिए असंतोषदायी स्थल और अवसर बार-बार आते हैं। सरल नियमों वाले खेल, इसके विपरीत, परस्पर प्रीति बढ़ानेवाले सिद्ध हो सकते हैं।

स्वयं परम भक्त होने के कारण अष्टछापी कवि तो मनोविनोद के उक्त साधनों में से किसी में भाग लेना समय का अपव्यय ही समझते थे; जैसा कि पीछे उद्धृत चौपड़ खेलते हुए व्यक्तियों के संबंध में सूरदास के कथन से सूचित होता है,[६०] परंतु अपने आराध्य को अनेक खेलों में भाग लेते दिखाना उन्हें निस्संदेह रुचिकर रहा है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति के पुजारी वे अष्टछापी कवि जीवन में मनोविनोद का महत्व भली-भाँति समझते थे और इस दृष्टि से उनके विचारों का अध्ययन भी मनोरंजन का एक रोचक साधन माना जा सकता है।

३. *पर्वोत्सव*—

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पारलौकिक जीवन पर सदैव दृष्टि रखते हुए भी भारतवासियों ने लौकिक जीवन की कभी उपेक्षा नहीं की; और ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि उनकी परलोक-विषयक धारणाओं के मूल में भी इहलोक के जीवन की सुख-समृद्धि-वृद्धि करना ही रहा है। भारतीय सामाजिक जीवन में 'पर्वोत्सवों' की अधिकता से भी सूचित होता है कि जहाँ एक ओर जीवन की व्यस्तता-जनित क्लांति के अनुभव से बचने के लिए वे अनेक प्रकार के 'पर्वोत्सवों' में सोल्लास भाग लेते हैं, वहाँ दूसरी ओर इनकी योजना से सामाजिक सहकारिता की भावना की भी वृद्धि होती है। 'पर्वोत्सवों' के अवसर पर अच्छा खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, सजने-सजाने का भी चलन सदा से

रहा है। इससे भारतीय समाज की समृद्धि का परिचय तो मिलता ही है, अर्जित और संचित धन-वैभव के सार्वजनिक प्रदर्शन द्वारा दूसरों को उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा भी देता है।

अष्टछाप-काव्य में जिन 'पर्वोत्सवों' का वर्णन मिलता है, स्थूल रूप से, उनको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. ऋतूत्सव, ख. लीलावतारोत्सव और ग. अन्योत्सव।

क. *ऋतूत्सव*—वर्ष की छहों ऋतुओं में मनाये जानेवाले छह उत्सव—ग्रीष्म में 'फूलमंडली', वर्षा में 'हिंडोरा', शरद् में 'रास', हेमंत में 'देवि-प्रबोधिनी', शिशिर में 'होली' और वसंत में 'डोल'—इस वर्ग में आते हैं। इनमें से 'होली' की चर्चा तो 'त्योहारों' के अंतर्गत की जायगी; शेष उत्सवों के मनाये जाने का अष्टछाप-काव्य में जो वर्णन हुआ है, उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

अ. *फूलमंडली*—ग्रीष्म ऋतु के इस उत्सव में राधा-कृष्ण और उनकी किशोरी सखियाँ बड़े उत्साह से भाग लेती हैं। जैसा नाम से स्पष्ट है, इस उत्सव में फूलों की ही प्रधानता रहती है। राधा के चोली, चोलना आदि वस्त्र और हार, 'कंकन', 'बिजाइठ' 'चौकी' आदि आभूषण फूलों के ही हैं। मदनगोपाल को रिझाने के लिए ही राधा का इस प्रकार का फूलों से शृंगार सखियों ने किया है। श्रीकृष्ण भी फूलों के ही 'बागे', 'पाग' और आभूषण धारण करते हैं। इस प्रकार फूलों के वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर श्रीकृष्ण कभी तो 'फूलों के चौबारे' में बैठते हैं, कभी 'चौखंडी', कभी 'तिबारी' और कभी 'फूलों' के खंभेवाले 'फूलों' के भवन में, 'फूलों' ही की सेज पर 'फूलों' के गेंदुआ-तकिया लगाये प्रियतमा राधा के साथ बैठकर शोभित होते हैं। 'फूलों' की तिबारी के 'झरोखे' और उसकी 'अटारी' भी फूलों की है। वस्तुत: 'फूलों' के बीच, 'फूलों'-से फूले सखा-सखियों के साथ, 'फूल' से सुंदर और सुकुमार राधा-कृष्ण की सरस लीला सारे वातावरण को 'फूल'-सा प्रफुल्लित कर देती है।

आ. *हिंडोरा*—'हिंडोरे' का उत्सव वर्षा के आगमन पर मनाया जाता है। यमुना-तटवर्ती कुंजों में 'हिंडोला' डालकर किशोर-किशोरियाँ, सभी झूला झूलते हैं। अष्टछाप-काव्य में कृष्ण और अन्य गोप बालकों का गोपियों के साथ 'हिंडोरा' झूलने का उल्लेख मिलता है। परमानंददास के अनुसार उनके 'हिंडोरे' के खम्भे रत्न-जटित हैं तथा मरुआ और पटुली

कंचन की हैं। वस्तुत: सावन मास में चारों तरफ हरियाली छा जाती है, चातक बोलने लगते हैं, कभी हल्की फुहार पड़ती है और कभी मेघों का मंद गर्जन होता है। ऐसे मनोहारी समय और वातावरण में कुंभनदास के कृष्ण और राधा मणिजटित पटली पर बड़े आनंद से 'हिंडोले' में झूलते हैं। चतुर्भुजदास ने झूले की चार 'डाँडियों' के बीच हेमजटित चौकी और मोतियों के झूमक लगे होने का वर्णन किया है। 'हिंडोरा'-प्रसंग में झूलने और झुलाने के ढंग का भी सुंदर वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। गोविंदस्वामी के अनुसार नारियाँ बड़ी उमंग से झुक-झुक कर लंबे 'झोंटे' देती हैं। उन्होंने मणिजटित हिंडोरे, पटरी आदि में नहीं, फूलों की डोरीवाले, फूलों के हिंडोरे में, फूलों की पटली आदि पर राधा-कृष्ण को झुलाया है।

साधारणतया कुंजों में 'हिंडोरा' पड़ने की बात कवियों ने लिखी है, परंतु कृष्णदास के अनुसार नंद-गृह में ही 'हिंडोरा' रोपा गया है जिसमें हीरा, पिरोजा आदि बहुमूल्य रत्न लगे हैं।

३. *रास*—शरद ऋतु का सर्वोत्तम उत्सव 'रास' है। 'रास' से तात्पर्य नृत्य-विशेष से है जिसमें स्त्री-पुरुष एक-दूसरे का हाथ पकड़कर सामूहिक रूप से नृत्य करते हैं। 'रास' का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है, जिनमें सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास का है। नृत्य करते हुए राधा-कृष्ण का अत्यंत आकर्षक चित्र 'सूरसागर' में है। परमानंददास ने गलबहियाँ डाले गोपी-कृष्ण के 'रास' का वर्णन किया है। नृत्य के साथ ही विविध वाद्यों के बजने की चर्चा अन्य कवियों के साथ गोविंदस्वामी ने भी की है। चतुर्भुजदास के अनुसार 'रास' करते समय अनेक प्रकार के भाव भी बताये जाते हैं।

नंददास ने 'रासलीला' का सांगोपांग चित्रण करने के लिए 'रास-पंचाध्यायी' नामक एक काव्य ही लिख डाला है। उसके पंचम अध्याय में रासलीला का वर्णन विस्तार से है। श्रीकृष्ण कमलवत् आसन पर राधा के साथ नृत्य करते हैं। उनके चारों ओर दो-दो गोपियों के बीच मोहन की एक-एक मूर्ति शोभित है। नृत्य के समय करतार, मुरली, मृदंग, उपंग, चंग, ताल, वीणा आदि वाद्यों की ध्वनि से मिलकर नूपुर, किंकिणि आदि का मधुर स्वर चारों ओर प्रतिध्वनित होता है। उसी ध्वनि में पद-चालन और करतालों का स्वर मिलाती हुई गोपियों के साथ श्रीकृष्ण, चपलामाला से युक्त घनमंडल-जैसे, जान पड़ते हैं।

ई. *देव-प्रबोधिनी*—हेमंत ऋतु में दीपावली के बाद एकादशी के दिन 'देव-प्रबोधिनी' का उत्सव और जागरण होता है। अष्टछापी कवियों में इसका वर्णन परमानंददास ने किया है। उनकी यशोदा इक्षुदंड और पुष्पों का मंडप बनाकर उसके चारों तरफ दिये जलाती, धूप-दीप करके भोग लगाती और रात्रि में जागरण करती हैं। साथ-साथ ताल, पखावज, भेरी, शंख आदि वाद्य भी मधुर ध्वनि से बजते हैं।

उ. *डोल*—वसंत ऋतु का यह उत्सव फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में मनाया जाता है। वृन्दावन में 'कालिंदी कूल' पर चंदन के 'डोल' में बैठकर कभी केवल कृष्ण झूला झूलते हैं, गोपियाँ उन पर अरगजा छिड़कती और आनंद मनाती हैं; कभी राधा-कृष्ण को विविध वस्त्राभूषण पहनाकर 'डोल' में झुलाया जाता है। कुंभनदास ने 'डोल'-वर्णन में केवल वृषभानुजा राधा के 'कंचन डोल' में बैठकर सखियों के साथ झूलने, गाने और अबीर-गुलाल छिड़ककर आनंद मनाने का उल्लेख किया है।

ख. *लीलावतारोत्सव*—इस वर्ग में जो उत्सव आते हैं उनमें नौ मुख्य हैं—रामनवमी, नृसिंह-जयंती, वामन-जयंती, रथयात्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, गोपाष्टमी, पवित्रा और अक्षय तृतीया। इनमें से प्रथम तीन का संबंध विष्णु के अवतार राम, नृसिंह और वामन से है, चतुर्थ का जगन्नाथ जी से और शेष का संबंध श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया राधा के जन्म अथवा उनकी लीलाओं से है।

अ. *रामनवमी*—चैत्र के शुक्लपक्ष की 'रामनवमी' के दिन 'रामजन्मोत्सव' मनाया जाता है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में 'सूरदास' के अतिरिक्त परमानंददास और गोविंदस्वामी ने किया है। सूरदास ने 'रामकथा' को लेकर १५७ पद लिखे हैं जिनमें से प्रारंभिक तीन पदों में राम-जन्म की बात कही गयी है; 'रामनवमी' का उल्लेख कहीं नहीं है। गोविंदस्वामी के भी इस प्रसंग में तीन-चार पद मिलते हैं, परंतु 'रामनवमी' का उल्लेख उन्होंने भी नहीं किया है। परमानंददास के अवश्य इस विषय पर लिखे गये पाँच-सात पदों में से एक में 'नौमी' का उल्लेख मिलता है। शेष पदों में राम-जन्म की चर्चा सामान्य रूप से है।

आ. *नृसिंह-जयंती*—'नृसिंह-चतुर्दशी' का वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास और परमानंददास ने किया है। 'सूरसागर' में इस विषय का एक लंबा पद है जिसके प्रारंभ में 'नरहरि-अवतार' का वर्णन करने का कवि ने उल्लेख किया है। सूरदास के एक और पद में श्रीनृसिंह की

भक्तवत्सलता की ओर संकेत किया गया है। परमानंददास ने भी 'नृसिंहावतार' को लेकर पाँच-छह पद लिखे हैं जिनमें उनकी भक्त-रक्षा की बात कही गयी है।

इ. *वामन-जयंती*—अष्टछापी कवियों में 'वामन-जयंती' का वर्णन करने वाले सूरदास, परमानंददास और गोविंदस्वामी हैं। सूरदास ने 'वटु वामन' के दर्शन बलि के द्वार पर कराये हैं। परमानंददास ने दो पदों में सूरदास की तरह बलि-द्वार पर खड़े वामन का ही वर्णन किया है; तीसरे पद में 'भादों' मास की सुभग सुदी द्वादसी को कश्यप और अदिति के घर देव-काज के लिए 'वामनावतार' होने की बात कही है। गोविंदस्वामी ने अदिति के पुत्र के रूप में वामन के घनश्याम रूप का पीतांबरधारी पुनीत दर्शन कराने के साथ-साथ यह भी कहा है कि हरि ने ही यह अवतार लिया है।

ई. *रथ-यात्रा*—आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को रथ-यात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इसका वर्णन सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने किया है। सूरदास ने कृष्ण के रथ को सोने के कलश, ध्वजा-पताका, छत्र, चँवर आदि से युक्त बताया है, जिसमें पवन से भी अधिक वेग वाले घोड़े जुते हैं। उन्होंने तिथि का भी उल्लेख किया है। एक दूसरे पद में सूरदास ने रथ की सज्जा का और विस्तार से वर्णन करते हुए बताया है कि श्रीकृष्ण के शीश पर लाल पाग है, गले में जुही माल है, तन पर नील मणि है और उनका सुंदर रूपदेखकर व्रजवासी फूले नहीं समाते हैं। यही पद कुछ पाठांतर के साथ 'परमानंद' छाप से भी मिलता है जिसमें राधा के साथ श्रीकृष्ण रथ पर विराजमान बताये गये हैं। अपने दूसरे पद में परमानंददास ने साथ के ग्वाल-बालों द्वारा श्रीकृष्ण का चार घोड़ोंवाला रथ खींचे जाने की बात कही है और उनकी प्रसन्नता देखकर दोनों भाइयों का भी हर्षित होना बताया है।

रथ-यात्रा-प्रसंग में कुंभनदास के तीन पद विशेष प्रसिद्ध हैं। पहले दो में उन्होंने राधा के साथ रथ पर श्रीकृष्ण का दर्शन कराया है; परंतु अंतिम में त्रिभुवननाथ की बहन सुभद्रा, भाई बलराम तथा अन्य ग्वाल-बालों के साथ उनका रथ पर विराजमान होना कहा है। चतुर्भुजदास ने वाम भाग में वृषभानु-नंदिनी के दर्शन कराये हैं तथा 'व्रजरानी' द्वारा आरती किये जाने का भी उल्लेख किया है। गोविंदस्वामी के इस प्रसंग में पाँच पद मिलते हैं जिनमें से चार में तो अन्य कवियों के समान श्रीकृष्ण और

उनके रथ की शोभा का वर्णन किया गया है; एक में अवश्य एक नयी बात कही गयी है। श्रीकृष्ण माता यशोदा से कहते हैं—तू मुझे गोद में लेकर रथ में बैठ जा, इधर राधा बैठे, उधर बल भैया। गोप सखा गीत गाते हुए साथ चलें और व्रजजन (व्रजबालाएँ) आरती उतारें।

उ. *जन्माष्टमी*—भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी को श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव बड़े उल्लास से मनाया जाता है। अपने आराध्य का अवतार-दिवस होने के कारण इसकी चर्चा तो यद्यपि सभी अष्टछापी कवियों ने की है, तथापि उसी समय श्रीकृष्ण के गोकुल पहुँचा दिये जाने के कारण यह उत्सव अष्टछाप-काव्य में उस रूप में नहीं वर्णित है, जिस उत्साह से यह आज मनाया जाता है। सूरदास ने भादों की अँधेरी आधी रात में बंदीगृह में कृष्ण-जन्म होने और उसी समय उनके गोकुल पहुँचाये जाने की बात बड़े विस्तार से लिखी है। एक दूसरे पद में उन्होंने कृष्ण पक्ष, रोहणी नक्षत्र और बुधवार के दिन जन्म होना लिखा है। परमानंददास और कुंभनदास ने तिथि, नक्षत्र और वार का उल्लेख करके ही गोकुल के जन्मोत्सव का वर्णन प्रारंभ कर दिया है। चतुर्भुजदास ने तो इनके साथ-साथ 'द्वापर युग' का भी उल्लेख करना आवश्यक समझा है। गोविंदस्वामी ने अवश्य मथुरा के बंदीगृह में उनके जन्मोत्सव की बात कुछ विस्तार से लिखी है।

गोकुल में श्रीकृष्ण का 'जन्मोत्सव' बहुत उल्लास से मनाया जाना सभी अष्टछापी कवियों के काव्य में वर्णित है जिसकी चर्चा 'जन्म-संस्कार' के अंतर्गत पीछे की जा चुकी है।

ऊ. *राधाष्टमी*—भादों मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन 'राधाष्टमी' मनायी जाती है और यह उत्सव छह दिन अर्थात् छठी तक चलता रहता है। आराध्य-प्रिया के जन्म का शुभ दिवस होने के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने 'राधाष्टमी' का वर्णन बड़े उत्साह से किया है, परंतु श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव के समान वह विस्तृत नहीं है। सूरदास, कुंभनदास और छीतस्वामी ने एक-एक, दो-दो पदों में राधा के जन्मोत्सव का वर्णन किया है। चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने चार-चार, पाँच-पाँच पद इस प्रसंग में लिखे हैं। राधा के जन्मोत्सव की बात सुनकर चतुर्भुजदास के नंद, यशोदा और कुँवर कन्हाई फूले नहीं समाते। परमानंददास ने इस विषय का वर्णन अष्टछापी कवियों में सबसे विस्तार से किया है। उन्होंने राधा के जन्मोत्सव के साथ-साथ 'पलना के पद' भी

लिखे हैं। राधा की चरण-वंदना से उन्होंने विषय का आरंभ किया है। दूसरे-तीसरे पद में राधा का 'अवतार' शुक्ल पक्ष की अष्टमी को होने की बात उन्होंने कही है। उनकी यशोदा भी इस अवसर पर बधाई देती है।

अष्टछाप के सभी कवियों ने राधा के अपूर्व रूप का भी वर्णन किया है; तदनंतर 'कृष्ण-जन्मोत्सव' के समान ही 'राधाष्टमी' भी मनायी जाती है, तरह- के वाद्य बजते हैं और दानादि से याचकों को संतुष्ट किया जाता है।

ए. *गोपाष्टमी*—कार्तिक सुदी अष्टमी को 'गोपाष्टमी' का उत्सव होता है जो श्रीकृष्ण के प्रथम गोचारण दिवस के उपलक्ष में मनाया जाता है। अष्टछापी कवियों में सूरदास के श्रीकृष्ण पहली बार गोचारण के लिए माता की आज्ञा माँगते हैं और पिता को भी सहमत करा देने की बिनती करते हैं। परमानंददास ने प्रथम गोचारण की बात अधिक विस्तार से कही है। माता-पिता के पैर छूकर बालक कृष्ण पहली बार गाय चराने जाता है और सारे व्रजवासी अपूर्व आनंद में मग्न हो अपनी-अपनी गैयाँ उन्हें सौंपते हैं। श्रीकृष्ण के साथ बन जाने के लिए 'सूथन-चोलना' पहनकर ग्वाल-बाल नंद-भवन में आते हैं। उनके साथ श्रीकृष्ण को गाय चराने जाते देख द्विजगण 'असीस' पढ़ते हैं और माता रोहिणी तथा यशोदा की छाती आनंद से उमड़ने लगती है। गोविंदस्वामी ने भी प्रथम गोचारण के दिन विविध वाद्यों के बजने और गोप-बधुओं के द्वारा मनोहर 'बानी' में गीत गाये जाने की बात लिखी है। उस समय माता यशोदा उनकी आरती उतारती हैं, चारों ओर मंगल शब्द होते हैं, गीत गाये जाते हैं और विविध वस्त्राभूषण धारण किये, रोली-तिलक लगाये, गायों को आगे कर गोचारण के लिए जाते हुए पुत्र पर से जननी 'राई-नोन' उतारती हैं।

ऐ. *पवित्रा*—'सूर-निर्णय' के अनुसार, 'यह नित्यलीला तथा वल्लभ-अवतार का उत्सव है। श्रा० शु० ११ को अर्द्धरात्रि को साक्षात् पुरुषोत्तम ने प्रकट होकर श्रीगोकुल के ठकुरानी गोविंदघाट पर श्रीवल्लभाचार्य जी को ब्रह्म-संबंध का उपदेश दिया था। तब आचार्य जी ने नित्य लीला के संबंध में उन पुरुषोत्तम को 'पवित्रा' धराया था। तबसे यह उत्सव प्रतिवर्ष संप्रदाय में मनाया जाता है'। 'पवित्रा' पहनने के दिन सूरदास के कृष्ण केसर-कुंकुम के रंग का 'बागा' धारण करते हैं। चतुर्भुजदास ने उनको गुंजा के मनोहर हार पहनाये हैं। 'पवित्रा' पहने छीतस्वामी के वनमालधारी श्रीकृष्ण अपनी छवि से तीनों लोक पवित्र करते हैं। ये कवि

मास-दिवस आदि का उल्लेख नहीं करते; परमानंददास, कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने अवश्य वैसा किया है। परमानंददास ने एक पद में केवल 'राजकुमारी' (राधा) के 'पवित्रा' पहनने की बात लिखी है। अन्यत्र उन्होंने और कुंभनदास ने राधिका जी के साथ 'पवित्रा' पहने श्रीकृष्ण का दर्शन कराया है। परमानंददास के अनुसार 'पवित्रा' के उत्सव पर व्रजवासी मंगल गाते हैं और नंद-यशोदा सबका स्वागत करते हैं। गोविंदस्वामी ने इस अवसर पर ताल, पखावज, बेनु आदि के बजने और श्रीकृष्ण की आरती उतारे जाने का भी वर्णन किया है।

आ. अक्षय तृतीया—बैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को 'अक्षय तृतीया' का उत्सव मनाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में होने के कारण चंदन का शृंगार इस उत्सव की विशेषता है। चंदन के साथ 'अरगजा' आदि अन्य सुगंधित पदार्थों के उपयोग की बात भी सूरदास ने लिखी है। परमानंददास ने पाँच-छह पद इस प्रसंग में लिखे हैं जिनमें से एक में 'अक्षय सुहागवती' राधा को 'अक्षय तृतीया' के शुभ दिवस पर प्रियतम की चंदन से पूजा करने की प्रेरणा दी गयी है। दूसरे पद में गिरिधरलाल धोती पहने और अरगजा की सुगंध में बसा पीतांबर 'धारे' बताये गये हैं। कुंभनदास के दो पद 'अक्षयतृतीया' के संबंध में प्राप्त हैं। पहले में उन्होंने गिरिधरलाल के दर्शन 'स्वेत बागा, पाग' और पीतांबरधारी रूप में 'चंदन' पहनाकर, वस्त्राभूषण साजे राधा के साथ कराये हैं तथा दूसरे पद में ठीक दोपहरी में 'खस-खाने' के बीच उनके दर्शन होते हैं जहाँ वे 'खासे का पिछौरा' पहने, 'चंदन-भीजी कुलह' सँवारे विराजमान हैं। वृषभानुदुलारी राधा उनके अंग-अंग में चंदन का लेप कर रही हैं एवं सुगंधों के फुहारे चारों ओर छूट रहे हैं।

नंददास ने 'अक्षयतृतीया' के दिन चंदन का शृंगार किये दंपति के दर्पण देख-देखकर रीझने की विशेष बात कही है। चतुर्भुजदास के कृष्ण का चंदन - चर्चित तन देखकर सखियाँ अत्यंत पुलकित होती हैं। गोविंदस्वामी ने 'अक्षय-तृतीया' के अवसर पर शृंगार की सभी शीतल वस्तुओं की गणना एक ही पद में कर दी है।

ग. अन्य पर्वोत्सव—इस वर्ग के अंतर्गत संवत्सर, गनगौर, दान, साँझी, नवरात्र, व्रतचर्या, मकर-संक्राति, ज्येष्ठाभिषेक आदि उत्सव तथा पर्व आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से प्रमुख हैं

संवत्सर, गनगौर, सावनतीज और साँझी जिनका परिचय अष्टछाप-काव्य के आधार पर नीचे दिया जाता है।

अ. *संवत्सर*—चैत्र मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से हिंदुओं का नव-वर्षारंभ होता है जिसके उपलक्ष में 'संवत्सरोत्सव' मनाया जाता है। यों तो इस अवसर पर सूरदास के 'चक्र के धरनहार गरुड़ के असवार' वाले पद के गाये जाने की बात कुछ आलोचकों ने कही है तथापि अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास के दो-तीन पदों में इस उत्सव का उल्लेख किया गया है और नव वर्ष की बात भी कही गयी है। उन पदों में 'प्रिय-प्रिया' का सामान्य शृंगार ही वर्णित है।

आ. *गनगौर*—चैत्र मास के शुक्लपक्ष की तृतीया को 'गनगौरोत्सव' होता है। व्रज में यह उत्सव मुख्यत: कन्याओं का माना जाता है जिसमें श्रीकृष्ण को पति-रूप में पाने की कामना रखनेवाली गोपियों का आदर्श लेकर 'गौर' या 'गौरों' देवी की पूजा की जाती है। अष्टछापी कवियों में परमानंददास और नंददास के एक-एक, दो-दो पद इस विषय के मिलते हैं जिनमें राधा के 'गनगौर' पूजने का उल्लेख है।

इ. *सावन तीज*—सावन के शुक्ल पक्ष की तीज को मनाया जानेवाला यह उत्सव लड़कियों और स्त्रियों का होता है जिसमें वे गाती, बजाती और झूला झूलती हैं। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने नंदरानी के सावनतीज खेलने और गोपियों के हिंडोला झूलने जाने का वर्णन किया है। परमानंददास के एक पद में भी सावनी तीज की चर्चा है जिसमें गोपियाँ नंद जी के 'दरबार' में 'हिंडोरा' झूलने जाती और कोकिल कंठ से गीत गाती हैं।

ई. *साँझी*—भादों मास में शुक्लपक्ष की पूर्णिमा से यह उत्सव प्रारंभ होता है। इसमें कहीं तो श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध तक की समस्त लीलाएँ विविध रंगों से भूमि पर चित्रित की जाती हैं और कहीं रंग-बिरंगे फूलों आदि से दीवार पर साँझी 'चीती' जाती है। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने साँझी के उत्सव का वर्णन किया है जिसमें साँझी की पूजा के लिए सखियों के साथ राधिका सुमन बीनती और सखी-वेश में मोहन को साँझी पूजने के उद्देश्य से घर ले जाती है।

४. *त्यौहार*—

यो तो हिंदू जाति वर्ष भर त्योहार मनाया करती है, परंतु उसके

चार वर्णोंके अनुसार चार त्योहार प्रधान हैं—ब्राह्मणों का रक्षा-बंधन, क्षत्रियों का दशहरा, वैश्यों की दीपमालिका और शूद्रों की होली। अष्टछाप-काव्य में इन चारों लोक-त्योहारों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है।

क. *रक्षा-बंधन*—श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जानेवाला 'रक्षाबंधन' का त्योहार मुख्यतः ब्राह्मणों का होता है। इस दिन ब्राह्मण-वर्ग अन्य वर्गों के व्यक्तियों, विशेषकर अपने जिजमानों, के राखी बाँधकर आशीर्वाद देता है। इसी प्रकार कुछ परिवारों में 'रक्षाबंधन' के अवसर पर बहन अपने भाई की कलाई पर राखी बाँधती है। अष्टछापी कवियों में से किसी ने बहन के द्वारा राखी बाँधे जाने का उल्लेख नहीं किया है; हाँ, किसी ने ब्राह्मण अथवा पुरोहित द्वारा राखी बाँधे जाने की बात कही है और किसी ने माता द्वारा पुत्र के राखी बँधवायी है।

अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास और चतुर्भुजदास ने 'रक्षा-बंधन' का त्योहार श्रावण के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को मनाये जाने की बात कही है। 'रक्षा-बंधन' का त्योहार जन-साधारण में 'सलूनों' नाम से प्रसिद्ध है जिसका उल्लेख परमानंददास के एक पद में हुआ है। इसी प्रकार 'रक्षा-बंधन' के दिन बाँधी जानेवाली 'राखी' को कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने 'रच्छा' कहा है। सूरदास राखी बाँधे हुए कृष्ण की प्रसन्नता देखकर ही इतना पुलकित हो जाते हैं कि राखी बाँधनेवाले का उल्लेख करने का जैसे उनको ध्यान ही नहीं रहता। परमानंददास ने दो पदों में तो नंद जी द्वारा गर्गादिक को बुलवाकर लाल के तिलक लगवाने और राखी बँधवाने की बात कही है, परंतु तीन-चार पदों में माता यशोदा द्वारा ही यह कार्य संपन्न कराया है और चौथे पद में तो माता यशोदा द्वारा पुत्र का तिलक करने, तंदुल देने और उसके दोनों हाथों में राखी बाँधने की बात कही गयी है। इसी प्रकार गोविंदस्वामी भी एक पद में तो 'द्विजवर' द्वारा 'राखी' बाँधे जाने की बात कहते हैं, परंतु दूसरे में माता यशोदा से ही 'रच्छा' बँधवाते हैं। नंददास ने अवश्य पुरोहित गर्ग द्वारा राखी बाँधे जाने की बात स्पष्ट शब्दों में कही है।

अष्टछाप के आराध्य श्रीकृष्ण को बाँधी जानेवाली 'राखी' भी साधारण नहीं है। परमानंददास ने उनके 'रतन खचित राखी' बँधवायी है तो कुंभनदास मोहन के मन को प्रिय लगनेवाली 'रत्नजटित' सुभग राखी ही बँधवाते हैं। नंददास की 'राखी' में हीरे, रत्नों और माणिक्यों के साथ-साथ मोती भी लगे हैं। गोविंदस्वामी की राखी 'पाट-डोरी' की होने

पर भी परम विचित्र है। 'राखी' बाँधने के पश्चात् विप्रगण और गुरुजन आशीर्वाद देते और कुशल मनाते हैं जिससे माता-पिता को भी बहुत प्रसन्नता होती है और माता यशोदा 'नारिकेल, अंबर, आभूषण और मुक्तामाल' के साथ-साथ 'ईडुरि पिंडुरी वारकर' उनकी आरती करती हैं। राखी बाँधनेवाले 'द्विजवर' के साथ-साथ अन्य ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा दिये जाने की बात सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास, नंददास, चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने कही है। एक अन्य पद में परमानंददास ने गर्ग जी को दक्षिणा में मुक्तामाल दिये जाने का उल्लेख किया है। 'रक्षा-बंधन' के त्योहार के अवसर पर विविध वस्त्राभूषणों से अपने आराध्य का शृंगार कराना भी परमानंददास और कुंभनदास नहीं भूले हैं। गोविंद-स्वामी ने तो वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके उनको सोने के सिंहासन पर आसीन कराया है। इस अवसर पर ताल, किन्नरी, ढोल, दमामा, भेरि, मृदंग, शंख आदि बजाये जाने की बात परमानंददास और गोविंद-स्वामी ने लिखी है।

माता का वात्सल्य त्योहार के शुभ अवसर पर पुत्र के लिए अनेक प्रकार के व्यंजन तैयार करने को प्रेरित करता है। परमानंददास और कुंभनदास की यशोदा भी भाँति-भाँति के व्यंजन, मेवा, पकवान आदि प्रस्तुत करके पुत्र से उनका स्वाद लेने का आग्रह करती हैं। इस प्रकार बड़े आनंद से 'रक्षाबंधन' का त्योहार संपन्न होता है और सब नंददास के स्वर में स्वर मिलाकर श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देते हुए विदा होते हैं कि जब तक सूर्य, चंद्र और आकाश हैं तब तक वे सुखपूर्वक जीवित रहें।

ख. *दशहरा*—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को मनाया जानेवाला यह त्योहार मुख्यत: क्षत्रियों का माना जाता है जिसका वर्णन सूरदास और छीतस्वामी को छोड़ कर सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। 'दशहरा' या 'दसेरा', 'दसमी', 'बिजय-दसमी', 'बिजय सुदिन आदि कहकर अष्टछापी कवियों ने इस त्योहार का वर्णन किया है और परमा-नंददास के एक पद में तो इस त्योहार के 'सरद रितु' के आरंभ में मनाये जाने की बात कही गयी है और दूसरे में तिथि, मास आदि का भी उल्लेख हुआ है।

'दशहरे' या 'विजय-दशमी' के दिन नये वस्त्राभूषण पहनकर जौ के अंकुर या 'जवारे' धारण करने की बात अनेक कवियों ने कही है। परमानंददास की माता यशोदा 'केसर-सांधी जल से पुत्र को अच्छी

तरह स्नान कराती' और सुन्दर पाग, 'जरकसी' बाग आदि वस्त्र तथा अनेक आभूषण पहनाती हैं। एक अन्य पद में परमानंददास ने श्रीकृष्ण के सर पर पाग, माथे पर तिलक और कानों में कुंडल, बायीं ओर लटकते हुए 'जबारे' और कमर में मणिमय छुद्रघंटिका का वर्णन करते हुए कहा है कि प्रिय पुत्र का यह मनोहारी रूप देखकर माता यशोदा बड़े दुलार से बलैया लेती हैं। तीसरे पद में श्यामसुन्दर के 'शृंगारे' जाने की और चौथे में बाग-पाग के साथ ललित आभूषण पहनाये जाने की तथा व्रज-बालाओं और माता यशोदा की प्रसन्नता की बात भी परमानंददास कहते हैं। कुंभनदास ने लाल पागधारी श्रीकृष्ण के मृग-मद के टीके का वर्णन करते हुए अन्य ग्वाल-बालों के भी 'बनि-बनि' अर्थात् 'सज-धजकर' आने की बात कही है। चतुर्भुजदास अपने आराध्य को श्वेत जरी का वह पाग पहनाते हैं जिसमें लाल 'कलँगी' लगी है। 'तनसुख का बागा' पहने, कुंडल आदि धारण किये श्रीकृष्ण के रूप-वर्णन में वे अपने को असमर्थ पाते हैं। गोविंदस्वामी ने गिरिधर का शृंगार 'लाल सूथन', 'सेत चोलना', 'जरकसी कुलह' आदि से कराया है; पश्चात्, कुंकुम का तिलक लगाकर उनके सिर पर 'जव-अंकुर' रखे जाने की बात कही है। एक दूसरे पद में गोविंदस्वामी ने कुंकुम - तिलक और 'जवारे'-धारी श्रीकृष्ण को 'उतुंग अश्व' पर चढ़े बताया है।

दशहरे के अवसर पर 'समी' वृक्ष की पूजा करने का भी माहात्म्य है। इसका उल्लेख अष्टछापी कवियों में केवल कुंभनदास ने किया है। अन्य त्योहारों के समान, दशहरे पर भी व्रजबालाओं द्वारा गीत या मंगलगान गाये जाने की बात परमानंददास, चतुर्भुजदास तथा गोविंद-स्वामी ने कही है। वस्त्राभूषणों से अलंकृत पुत्र की सुंदर छवि की आरती माता यशोदा स्वयं या व्रजबालाओं के साथ करके तन-मन वारती और मोतियों का हार निछावर करती हैं। त्योहार के इस शुभ अवसर पर लाड़ले पुत्र से जो 'मन भावे' सो खाने की बात बड़े दुलार से परमानंद-दास माता यशोदा से कहलाते हैं। गोविंदस्वामी ने भी 'बहुत भोग और बीरा' उनके आगे धरे जाने की बात लिखी है।

ग. *दीपावली*—हिंदुओं का तीसरा बड़ा त्योहार 'दीपावली' है जिसका संबंध मुख्यत: 'वैश्य' अर्थात् व्यापारी-वर्ग से है। 'दीपावली' का मुख्य त्योहार तो कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होता है, परन्तु इसके विभिन्न उत्सवों का प्रारम्भ दो दिन पूर्व हो जाता है और दो दिन पश्चात् तक वे

चलते रहते हैं। इस प्रकार पाँच दिन मनाया जानेवाला यह त्योहार कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को 'धनतेरस' से आरंभ होता है, दूसरे दिन को 'रूप-चतुर्दशी', 'नरकाचौदस' या 'छोटी-दीवाली' कहते हैं। अमावस्या को 'बड़ी दीपावली' होती है। उसके दूसरे दिन 'अन्नकूटोत्सव' होता है जिसका संबंध श्रीकृष्ण के गोवर्द्धन-धारण-प्रसंग से माना जाता है। पाँचवें दिन को 'भाई दूज' या 'यम-द्वितीया' कहते हैं। 'दीपावली' के इन पाँचों दिनों में से किसी का वर्णन छीतस्वामी ने नहीं किया है, शेष अष्टछापी कवियों में से प्रायः सबने एक-एक दो-दो पदों में उनकी चर्चा की है।

अ. *धनतेरस*—वर्षा ऋतु के पश्चात् होने के कारण 'दीपावली' के पूर्व ही घर-द्वार की सफाई और लिपाई-पुताई कर ली जाती है तथा 'धनतेरस' के दिन से घर की सजावट शुरू हो जाती है, नयी-नयी वस्तुएँ खरीदी जाती हैं और बड़े उत्साह से 'दीपावली' के स्वागत का आयोजन किया जाता है। इस त्योहार का वर्णन परमानंददास और कुंभनदास ने अत्यंत संक्षेप में किया है। परमानंददास 'धनतेरस' के दिन का उल्लेख नहीं करते, परन्तु कुंभनदास ने 'कार्तिक बदि तेरस' के दिन इस त्योहार के होने की बात लिखी है। नंदरानी द्वारा 'धन धोवने' की बात कहकर दोनों कवियों ने 'धनतेरस' का वर्णन प्रारंभ किया है। कुंभनदास ने इसके अनंतर नंदरानी आदि के सोलहों शृंगार करने का उल्लेख किया है; परन्तु परमानंददास के अनुसार 'धनतेरस' के दिन गर्ग मुनि बुलाये जाते हैं, वेद-बिधि से पूजा होती है और ठौर-ठौर पर 'घृत-दीप' सँजोये जाते हैं। पश्चात्, धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करके निष्ठापूर्वक त्योहार मनाया जाता है।

आ. *रूपचतुर्दशी*—कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को 'रूपचतुर्दशी' या 'नरका चौदश' कहा जाता है। इसका वर्णन-अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने किया है। दीपावली या 'दिवाली' से एक दिन पूर्व पड़ने के कारण उन्होंने इसे 'छोटी दिवाली' कहा है। यह दिन शारीरिक स्वच्छता से विशेष संबंध रखता है; इसीलिए 'रूपचतुर्दशी' को भली भाँति स्नान करके वस्त्राभूषण धारण किये जाते हैं। परमानंददास ने भी अपने आराध्य को दूध से स्नान कराने के पश्चात् उनका शृंगार कराया है और वे 'लाल बागे' के साथ 'जरकसी कुलह' धारण करते हैं। उनकी सुंदर छवि देखकर व्रजवासी अत्यंत मुदित होते और हृदय से उनको आशीर्वाद देते हैं।

इ. *दीपमालिका*—कार्तिकी अमावस्या को मनाये जानेवाले इस

त्यौहार को सूरदास ने एक पद में तथा परमानंददास ने दो पदों में 'दीप मालिका' कहा है और एक में इसका लोक-प्रचलित नाम 'दिवारी' या 'दिवाली' दिया है। 'दीपक-पंक्ति' के अर्थ में भी 'दीपमालिका' का उल्लेख सूरदास के एक पद में हुआ है जो 'सरद' की कार्तिकी अमावस्या को मनायी जाती है। 'दीपक की पंक्ति' के अर्थ में 'दीपावलि' या 'दीपावली' की चर्चा यद्यपि छीतस्वामी के अतिरिक्त प्रायः सभी कवियों ने की है, तथापि 'दीपमालिका' दिवस के लिए प्रचलित 'दीपावलि' या 'दीपावली' नाम कदाचित् किसी के काव्य में नहीं मिलता। चतुर्भुजदास, नंददास और गोविंदस्वामी तो 'दीपक-पंक्ति' के वर्णन में भी मौन हैं; परन्तु 'हटरी' में बैठे अपने आराध्य के दर्शन सबने कराये हैं। वर्तमान काल में 'दीपावली' के त्यौहार पर मुख्यतः 'लक्ष्मी-गणेश' का पूजन होता है; परन्तु अष्टछाप-काव्य में इसकी ओर कहीं संकेत नहीं किया गया है। हाँ, सूरदास ने 'दीपमालिका' के त्यौहार का वर्णन 'दीपों' की उस 'पंक्ति' के साथ किया है जिसकी 'दीप्ति' 'कोटि रवि-चंद्र' जैसी है जिसके कारण निशि की कालिमा बिल्कुल मिट गयी है। सारा गोकुल जैसे मणियों से मंडित है; सभी भवनों पर मणियों-मुक्ताओं की झालरें लटक रही हैं और गजमोतियों तथा प्रवालों से 'चौक पुराये' गये हैं। परमानंददास अन्य त्यौहारों के समान 'दीपमालिका' का वर्णन भी अधिक विस्तार से करते हैं। उनकी यशोदा पुत्र से चंदन-चोवा का लेप शरीर में करके समस्त वस्त्राभूषण धारण करने को कहती हैं। फिर वे पुत्र को पिता की आज्ञा लेकर बहुत से दीपक बालकर घर में उजाला करने को प्रवृत्त करती हैं। मनमोहन ने माता की आज्ञा का पालन किया; कुछ ही देर में हीरे-मणियों के दीप चारों ओर जगमगाने लगे और रात्रि का घना अंधकार दूर हो गया। नंदकुमार के साथ व्रज की युवतियों के मंगल गाने और चौक 'पुराने' का वर्णन भी परमानंददास ने किया है।

कुंभनदास का दीप-वर्णन भी विशेषतायुक्त है। उनको गोकुल के दीपक आकाश के नक्षत्रों-से प्रतीत होते हैं जिनमें नंदराइ-रचित अगणित बत्तियाँ अद्भुत जुगति से जल रही हैं। कुंभनदास के अनुसार उन दीपकों का घृत भी सामान्य न होकर कपूर आदि की विविध सुगंधों से युक्त है। 'दीपमालिका' के अवसर पर सूरदास ने राधा के साथ-साथ समस्त व्रज-बालिकाओं के भी शृंगार का वर्णन करते हुए बताया है कि वे कंचन के थालों में झलमलाती ज्योतिवाले दीप तथा अन्य सामग्री लेकर गाती-बजाती नंद जी के द्वार जाती हैं और वहाँ अपूर्वानंद छा जाता है। कुंभनदास के

अनुसार केवल नंद के द्वार पर ही नहीं, सारे 'घोष' में इतना आनंद है कि वह किसी के हृदय में नहीं समा पाता।

इसके अनंतर 'हटरी' का प्रसंग आता है जिसका वर्णन छीतस्वामी के अतिरिक्त सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। सूरदास ने बलराम के साथ श्रीकृष्ण को 'हटरी' में बैठाया है। 'पिस्ता, दाख, बादाम, छुहारा, खुरमा, खाजा, मठरी' आदि मेवा-मिठाई-पकवान उनके पास धरे हैं। घर-घर से आकर स्त्री-पुरुष, गोपी-ग्वाल वहाँ एकत्र हो गये हैं। श्रीकृष्ण उनका नाम ले लेकर बुलाते और मेवा, मिठाई, पकवान आदि देते हैं। व्रज की स्त्रियाँ उनको आशीर्वाद देती हैं और माता यशोदा सबको 'पट' आदि देकर अत्यंत प्रसन्न होती हैं।

परमानंददास के गिरिधर 'हटरी' या 'हटरिया' में मधु, मेवा, पकवान और मिठाई लेकर 'बेचने' बैठते हैं तथा व्रज की सुंदरियाँ वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर 'सौदा' लेने आती हैं। प्रेम के आवेश में 'सौदा' खरीदनेवाली कोई सुंदरी उनसे मुस्कराती हुई कहती है—जरा सावधानी से 'सौदा' देना और पूरी 'तौल' तौलना। दूसरी भी हँसकर कहती है—मोहन, मेरी चीज कहीं कम न तौल देना। व्रज की उन सुन्दरी बालाओं की बात माता यशोदा को कुछ खटक जाती है और वे उन्हें टोकती हैं—ये कैसी बातें कर रही हो तुम सब; लेकिन दूसरे ही पल उनके हार्दिक भाव को समझकर प्रीति से पुलकित हो जाती हैं। परंतु अंतर्यामी श्रीकृष्ण को प्रेमभरी ग्वालिनों की बात जरा भी बुरी नहीं लगती और वे सबकी इच्छा पूरी करते रहते हैं।

चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी द्वारा वर्णित 'हटरी'-प्रसंग भी कुछ-कुछ ऐसा ही है। उनके गिरिधर जब 'हटरी' में विराजमान हैं तभी व्रज-बालाएँ भाँति-भाँति की मेवा ले आती हैं। उधर रोहिणी और यशोदा 'डला' भर-भरकर पकवान लाती हैं और भारी भीड़ में से नाम लेकर सबको बुलाकर श्याम अपने हाथ से मिठाई देते हैं। गोविंदस्वामी के 'गोपाल' 'रतन-जटित' हटरी में बैठते हैं जिसमें मोतियों की झालरें लटक रही हैं। पास ही भाँति-भाँति के पकवान धरे हैं जिनके साथ पान-फूल भी 'नँदलाल' बाँट रहे हैं। जहाँ गोपाल की यह 'पैंठ' लगी है और वे 'बेंच' रहे हैं, वहीं व्रज की अनेक बालाएँ चितचोर के निकट प्रेम की 'पाल' में बँधी आ जाती हैं और उनका दर्शन करके संतुष्ट होती हैं।

नंददास के 'हटरी'-प्रसंग में कुछ विशेषता है। उनके व्रजनाथ

अकेले नहीं, सखाओं के संग मेवा, पकवान, मिठाई आदि बाँटते हैं जिसकी सूचना पाकर सखियाँ दर्शन करने चलने का परस्पर प्रस्ताव करती हैं। पश्चात्, वे उनकी आरती करके मन में अत्यन्त प्रफुल्लित होकर 'न्योछावर' भी देती हैं। इसी प्रकार नंददास के एक दूसरे पद में विविध वस्त्राभूषण पहनकर, माथे पर चंदन लगाकर श्रीकृष्ण पिता नंद के साथ 'हटरी' में बैठते हैं और मेवा, मिठाई आदि मँगा-मँगाकर बाँटते हैं।

ई. *अन्नकूट : गोवर्द्धन और गोधन-पूजा*—कार्तिकी अमावस्या को 'दीपमालिका' का त्योहार मनाने के 'पाँचक' दिन पहले सुरपति की पूजा का स्मरण होने पर 'अन्नकूट' का आयोजन किये जाने का वर्णन सूरदास ने किया है और उनकी यशोदा इंद्र से कृष्ण को अमर कर देने का वरदान माँगती हैं। श्रीकृष्ण के प्रयत्न से सुरपति के स्थान पर गोवर्द्धन की पूजा होती है और उस समय पर्वत के समान ही 'अन्नकूट' रचकर उसका भोग लगाया जाता है। व्रजवासियों की उपेक्षा से अप्रसन्न होकर सुरपति सात दिन तक व्रज पर प्रलय-जलदों के द्वारा वर्षा कराता है; परंतु श्रीकृष्ण के गिरि गोवर्द्धन उठा लेने से उसकी एक नहीं चलती और अंत में वह अपनी धृष्टता के लिए उनसे सविनय क्षमा माँग लेता है। 'अन्नकूट' का उत्सव संभवत: उसी पौराणिक प्रसंग की स्मृति में आज भी मनाया जाता है।

परमानंददास ने इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन-पूजा के अवसर पर 'अन्नकूट' का वर्णन किया है जिसमें अनेक प्रकार के व्यंजन, पकवान आदि बनाये गये हैं। कुंभनदास ने इस अवसर पर विविध बाजे बजने, ग्वाल-मंडली के साथ 'ध्वजा', 'पताका', छत्र, चमर आदि होने की बात लिखी है। उनका गोप-वृन्द 'षटरस' व्यंजनों का भोग लगाकर, विविध उपहार चढ़ाकर प्रदक्षिणा भी करता है।

चतुर्भुजदास ने गोवर्द्धन-पूजा का वर्णन बड़े विस्तार से किया है। गिरिधर को गंगाजल से नहलाने, दूध चढ़ाने, अरगजा चरचने, धूप-दीप-नैवेद्य समर्पित करने, भोग लगाने, बीरा देने, आरती करने और प्रदक्षिणा के पश्चात् न्योछावर देने की बात उन्होंने कही है। गोवर्द्धन-पूजा के प्रसंग में परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास और नंददास 'अन्नकूट' की चर्चा नहीं करते, परंतु सूरदास की तरह गोविंदस्वामी ने इस शब्द का प्रयोग अवश्य किया है। अपने दो-तीन पदों में 'गोवर्द्धन-पूजा' भी उन्होंने बड़े विधान से लिखी है। ताल, मृदंग, शंख, बीन आदि बजाते ग्वाल-बालों

और वस्त्राभूषणों से अलंकृत कोकिल कंठों से गीत गाती हुई व्रजबालाओं के साथ श्रीकृष्ण गोवर्द्धन-पूजा को जाते हैं। तदनंतर गंगाजल और दूध से गिरिवर को नहलाने एवं रोली-चंदन चढ़ाने के पश्चात् तुलसीमाल पहनाने, धूप-दीप-विधि करके पीतांबर उढ़ाने तथा पकवान, मिठाई आदि का भोग लगाने का वर्णन गोविंदस्वामी के एक पद में हुआ है। दूसरे पद में उन्होंने विविध व्यंजनों के विवरण के साथ-साथ पूजा के 'नीराजन' आदि अन्य आयोजनों का भी उल्लेख किया है।

गोवर्द्धन-पूजा का जैसा वर्णन अष्टछापी कवियों ने ऊपर किया है, लगभग उसी रीति से 'अन्नकूटोत्सव' आज भी मनाया जाता है। अंतर यह है कि गोवर्द्धन के स्थान पर कहीं तो उसकी गोबर की प्रतिमा बनाकर पूजा की जाती है और कहीं श्रीकृष्ण या ठाकुर जी अथवा देवता की। जितने प्रकार के व्यंजन, पकवान, मिठाई, फल, मेवा आदि इस 'अन्नकूट' के दिन जुटाये जाते हैं, संभवत: उतने किसी भी दूसरे त्योहार में नहीं होते। खरीफ की फसल कटने के दिन होने के कारण यत्र-तत्र एकत्र अन्न-राशि का प्रतीक भी 'अन्नकूटोत्सव' माना जा सकता है।

गोवर्द्धन-पूजा-प्रसंग में परमानंददास ने एक पद में 'गोधन' की महिमा का वर्णन करते हुए उसको माता, पिता, गुरु एवं कामनापूरक कामधेनु आदि कहा है। इसी 'गोधन' का पूजन और क्रीड़न दीपमालिका के दूसरे दिन किये जाने की बात परमानंददास ने लिखी है। उनके एक दूसरे पद में व्रजनाथ माता से धौरी आदि धेनुओं को सिंगारने की बात कहते हैं। मोहन ने धौरी धेनु और 'बडरे' वृषभ का शृंगार किया है। कभी वे उनके सींग सोने से और पीठ 'पत्र' से मढ़वाकर 'घंटा-कठुला' पहनाते हैं, कभी अन्य रीतियों से सींग मढ़वा कर उनके गले में हार पहनाकर, घंटा बँधवाकर चरणों में नूपुर पहनाते हैं और इस प्रकार सजी-सजायी गैयाँ बड़ी भली लगती हैं। 'स्रवन'-पूँछ उचकाकर गैयों का भागना, गोपाल का उनको पकड़ना, चुमकारना, 'गुर-भेली' खिलाना आदि बातों का भी परमानंददास ने स्वाभाविक वर्णन किया है।

कुंभनदास, चतुर्भुजदास, नंददास और गोविंदस्वामी ने 'गो-क्रीड़ा' का वर्णन परमानंददास की तरह विस्तार से नहीं किया है। कुंभनदास के नंदनंदन की वाणी सुनकर 'धौरी' खेलने को अकुलाने लगती है। श्रीकृष्ण ने पैंजनी, मेंहदी और 'पुरट' या सोने से गैयों का जो शृंगार किया है उसका वर्णन कौन कर सकता है ? चतुर्भुजदास 'धौरी' की अकुलाहट का

वर्णन तो कुंभनदास की तरह ही करते हैं; एक बात अवश्य उन्होंने नयी लिखी है। जब श्रीकृष्ण गाय 'खिलाने' जाना चाहते हैं तब गैयों की अपार भीड़ देखकर माता उन्हें जाने से रोक लेती है। श्रीकृष्ण के रुकते ही समाचार मिलता है कि बिना लाल के 'धूमरि' ने भी खेलना बंद कर दिया है और बार-बार 'हूँक' कर इधर-उधर दौड़ती है; तभी श्याम प्रफुल्लित होकर मुरली बजाने लगते हैं।

ज. *भाई-दूज*—'दीपावली' के तीसरे दिन का त्योहार भाई-दूज है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने किया है। माता यशोदा इस दिन बहन सुभद्रा को न्योता देकर बुलाती हैं। तब वे दोनों भाइयों को उबटन लगाकर नहलाती और नये वस्त्राभूषण पहनाती हैं। सुभद्रा तिलक करके दोनों की आरती उतारती है। पश्चात्, 'खीचरी', दही, भात आदि के थाल सामने रक्खे जाते हैं। भोजन के अंत में 'बीरी' दी जाती है। दोनों सुभद्रा को प्रणाम करते हैं और वह उन्हें 'असीस' देती है।

पाँच दिन तक मनाये जानेवाले इस 'दीपमालिका महामहोच्छव' पर जुआ या 'द्यूत' खेलने का भी चलन रहा है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने संकर्षन सहित नंदकुमार को 'द्यूत' खेलने का प्रोत्साहन दिया है।

घ. *होली*—फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाये जानेवाले हर्षोल्लास मे पूर्ण 'होली' के त्यौहार का वर्णन अष्टछाप - काव्य में सबसे विस्तार से हुआ है। सूरदास ने इस विषय को लेकर छोटे-बड़े लगभग सत्तर, कुंभनदास ने पंद्रह, नंददास ने बीस, चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने तीस-तीस पद लिखे हैं। परमानंददास और छीतस्वामी के तद्विषयक पदों की संख्या अवश्य कम है; प्रथम के केवल पाँच पद अलीगढ़ के 'परमानंदसागर' में दिये गये हैं और द्वितीय के केवल दो पद काँकरौली से प्रकाशित संग्रह में। खोजने पर इन कवियों के और पदों के मिलने की आशा है। कृष्णदास का पूर्ण संग्रह प्रकाशित न होने के कारण होली-विषयक उनके पदों की निश्चित संख्या नहीं दी जा सकती।

होली का त्योहार पंद्रह दिन तक चलते रहने की बात सूरदास ने लिखी है और दो पदों में प्रत्येक तिथि को लेकर उसका विधिवत् वर्णन किया है। सूरदास की तरह गोविंदस्वामी ने भी होली की पंद्रहों तिथियों

के खेल और विनोद के क्रम का वर्णन एक पद में बहुत विस्तार से किया है। *'सारावली' में भी होली का वर्णन दैनिक क्रम से मिलता है।* इस त्योहार का प्रारंभ वसंतपंचमी से किया गया है और सूरदास ने इस ऋतु की शोभा का बहुत सुन्दर वर्णन कई पदों में किया है। परमानंददास वसंतपंचमी तिथि और उसके बुधवार का उल्लेख करते हैं। कुंभनदास ने 'श्रीपंचमी' के शुभ दिन, शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त में वृन्दावन में गुलाल के उड़ने और लाल के गाने की बात कही है। गोविंदस्वामी ने एक पद में 'वसंतपंचमी' को 'मनोज-महोच्छव' कहा है; परंतु विधिवत् होली के मनाये जाने का वर्णन करने की आवश्यकता उन्होंने संभवतः नहीं समझी। होली खेलने के पश्चात् स्नानादि का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने बहुत सामान्य रूप से किया है। वस्त्राभूषणों और भोजन के व्यंजनों की चर्चा भी इस प्रसंग में नहीं की गयी है; हाँ, दान और न्यौछावर की बात वे अवश्य कहते हैं जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। कुंभनदास ने वसंत की सुन्दरता का वर्णन दो पदों में किया है। चतुर्भुजदास का भी वसंत-वर्णन कुछ पदों में मिलता है। उन्होंने 'हेमंत' बीतने और जाड़े का अंत होने पर 'वसंत' आने की बात कही है। छीतस्वामी की होली-चर्चा केवल दो पदों में है; फिर भी 'ऋतुराज' की सरस ऋतु का वर्णन करके रसिकवर और नवल नागरी के फाग का उन्होंने उल्लेख कर दिया है।

'सूरसागर' में 'होली' का आरंभ वसंत ऋतु का आगमन देख गोपियों के मन में 'फागु' खेलने की साध के उदय होने से हुआ है। व्रजबालाएँ अपनी 'साध' श्रीकृष्ण पर प्रकट करती हैं और वे भी अपना हर्ष व्यक्त करके जैसे उसकी स्वीकृति देते हैं। गोविंदस्वामी ने वसंत के आगमन पर मोहन के 'बेनु' बजाने की बात कही है जिसे सुनकर सखियाँ, राधा को मान छोड़कर और शृंगार करके प्रियतम से मिलने को उत्साहित करती हैं। उधर कृष्ण पिता के पास पहुँचते हैं और होली खेलने की आज्ञा चाहते तथा 'पिचकारी' माँगते हैं। नंद जी प्रसन्न होकर 'कंचन-रत्न' की अनेक 'पिचकारियाँ' गढ़वा देते हैं। यही नहीं, लगभग सहस्र मन केसर, कस्तूरी, अरगजा आदि भी वे मँगा देते हैं।

व्रजबालाएँ 'बनठन' कर आती हैं। उन्होंने सुंदर साड़ी पहनी है, कंचुकी कसी है, नयनों में काजल दिया है। इस प्रकार उन्होंने नख-शिख तक सारा शृंगार किया है। सोलहों शृंगार किये अपने-अपने द्वार पर खड़ी व्रजबालाएँ 'कुमुदिनी-कुमारी' सी जान पड़ती हैं। कुंभनदास ने

भी गोपियों के 'बनठन और सजधज' कर होली खेलने आने का वर्णन किया है। नंददास की गोपियाँ भी 'ठाट' बनाकर होली खेलने जाती हैं। उनकी राधा को सखियाँ यह कहकर प्रोत्साहित करती हैं कि तेरे बिना न कुँवर कान्ह खेल रहे हैं और न गोपियों का दल ही अपने 'राजा' अर्थात 'रानी' या 'नेत्री' के बिना खेलना चाहता है। तब राधा हँसकर पिचकारी लेकर उसी तरह तैयार होती है जैसे कोई राजा समर की ललकार सुनकर बैठा नहीं रह सकता। एक पद में नंददास ने कृष्ण के 'बनठन' कर, 'टिपारो' और मोरमुकुट धारण करके फाग खेलने जाने का वर्णन किया है। उनकी गोपियाँ भी किशोरी, गोरी, 'भोरी', 'प्रेम-रंग में बोरी' और 'एक डार की तोरी' सी हैं। चतुर्भुजदास की गोपियाँ भी नाना वेशों में सुशोभित होती हैं। उन व्रजबालाओं के शृंगार का बहुत विस्तार से वर्णन चतुर्भुजदास के दो पदों में मिलता है। पहले में उन्हें 'लाल अँगियाँ, झूमक सारी, और नवहार' पहने बताया गया है। उनके बड़े-बड़े बालों की वेणी नितंबों पर डोलती है, मृगमद की आड़ी रेखा ललाट पर सोहती है और आँखें आँजी हुई हैं। उनके पदों में 'जेहरी', कटि में 'किंकनी' और पदों में 'बिछुवे' हैं जिनकी झंकार गली-गली में सुनायी देती है। शीश पर रंग भरे और कंचन-कुंभ लिये वे नंदराइ के दरबार जाती हैं। दूसरे पद में गोपियों का शृंगार और भी विस्तार से वर्णित है। उसमें सुकुमारी राधा 'कंकन', किंकिनी, गज-मोती-हार, नकबेसरि, ताटंक, कंठश्री, चौकी, खुटिला आदि आभूषण पहने, सेंदुर तिलक दिये, केसर-आड़ बनाये, काजर लगाये और पान चबाये बतायी गयी है। अन्य कवियों ने तो नंद या वृषभानु की पौरि पर रंग खेले जाने की बात लिखी है, लेकिन चतुर्भुजदास ने 'मनि-खचित' चौक में अद्भुत खेल मचने का उल्लेख किया है जो वस्तुतः देखने के योग्य था।

इधर राधा, उधर गिरिधर; इधर गोपी, उधर ग्वाल; और 'फाग' का खेल आरंभ होता है। 'फाग' खेलना वस्तुतः अंतर के अनुराग को ही प्रकट करना है। 'कंचन' के कलश 'केसरि' से भरे गये हैं और कंचन के 'माँटों' में सुगंध घोली गयी है। तब नवलकिशोर, किशोरी राधिका और गोरी-गोरी गोपियों के साथ खेल में मग्न हो जाते हैं। किसी के हाथ में अबीर है, किसी के चंदन, कोई 'रोली' लिये है और सब उमंग में भर-भरकर एक दूसरे पर रंग आदि छिड़कते हैं। 'झूमक' गाती-गाती गोपियाँ नंद जी के द्वार पर इसलिए पहुँच जाती हैं जिससे हँसने-खेलने के इस पर्व पर श्रीकृष्ण के साथ मिलकर खूब आनंद मनाया जा सके। नंद के द्वार पर

श्रीकृष्ण के दर्शन न होने पर वे समझ जाती हैं कि 'रंग' के डर से वे घर में छिप गये हैं; तब वे उन्हें 'दरस दिखाने' के लिए 'नंद' जी की शपथ देती हैं। इसी समय छिपते हुए कृष्ण की एक झलक उनको मिल जाती है और राधा लपककर उन्हें 'अँकवारि' में भर लेती है। सब सखियाँ केसर के भरे हुए कनक-कलश लेकर दौड़ती और श्याम की 'पीत पिछौरी तथा पाग' रंग से सराबोर कर देती हैं एवं उनकी प्रीति के वशीभूत होकर देह-गेह की सुधि भूल जाती हैं। पश्चात्, सब सखियाँ मिलकर महरि यशोदा के पास जाती हैं; होली के अवसर पर 'चार दिन' के लिए मोहन को 'माँगती' और कहती हैं कि उसके बाद अपने कृष्ण को ले लेना। श्याम के 'प्रकट' न होने और 'फगुआ' न मिलने पर जब वे 'गाली' गाने को तैयार होती हैं तब यशोदा उन्हें रोकती और कहती हैं— 'गाली' मत दो और श्याम के 'बदले' में जो चाहो ले लो।

नंददास ने राधा और उसकी सखियों के 'नंद-पौरि' पर होली खेलने की बात तो लिखी ही है, कृष्ण और उनके सखाओं का 'वृषभानु की पौरि' पर जाना भी बताया है। श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना पाते ही किशोरियाँ दौड़ पड़ती हैं और राधा भी समाचार मिलते ही सखियों के साथ सोने की पिचकारियाँ लेकर भवन से निकल आती है। गोपगण दूध-दही से छके हुए, 'हो हो' बोलते, बगलों में पिचकारी दाबे, फेंट कसे और पाग सँवारे केसर के माट उड़ेलते फिरते हैं। छज्जों से छूटती हुई पिचकारियाँ 'बार्खार-महल और अटारी' को रँगती हुई उन पर पड़ती हैं, तब नाना रंगों से रँग जाने पर बलदाऊ आदि को इधर-उधर भागते ही बनता है।

राधा ने नीलांबर और लाल कंचुकि धारण कर समवयस्क तरुणियों को साथ लिया और 'घन मध्य दामिनी-सी दमकती' सोलहों शृंगार किये सखियों के साथ सुशोभित हुई। सबके मुख में पान है, भाल पर बेंदी है और सुगंधित रंग भरे कनक कलश उनके साथ हैं। इस प्रकार वे ब्रज की गलियों में घूमती हैं। घरों से निकल-निकलकर गोपियाँ उनके समूह में मिलती जाती हैं। उनके हाथों में तरह-तरह के रंगों से भरी पिचकारियाँ हैं। इसी समय सखाओं सहित श्रीकृष्ण से उनकी मुठभेड़ हो जाती है। बस, पिचकारियाँ चलने लगती हैं। कोई रंग छिड़कती है तो कोई उसके लिए अवसर ताकती है। दौड़-धूप और धर-पकड़ होने लगती है। राधा और उसकी सखियाँ, कृष्ण और उनके सखाओं को देखकर 'बाँस' निकाल लेती हैं और 'मार' मच जाती है।

राधा अपनी सखियों के साथ कभी साधारण 'छरी' या बाँस लेकर 'कमल नयन' की ओर लपकती है और कभी सूरदास ने उनके सुकुमार हाथों के उपयुक्त 'कनक-लकुट' उन्हें दी है। गोपियों की 'मार' से हार कर गोप भागते भी हैं। कृष्ण की होली-लीला से खीझ कर जब कोई गोपी उन्हें बाँस या लकुट से मारना चाहती है तब दूसरी उसे रोक कर कहती है—इन्हें मत मार; इनके सुकुमार शरीर पर चोट लग जायगी। इनकी माधुरी मूर्ति 'मारने' के लिए नहीं, 'अंचल' की ओट में रखने के योग्य है। ललिता और चंद्रावली पीछे से आकर हरि को पकड़ती और सब सखियाँ सिमटकर उन्हें घेर लेती हैं। कोई पीतांबर झटकती है, कोई मुरली छीन लेती है, कोई मुख से मुख मिलाती है और कोई उन्हें अंक में भर लेती है। कोई कहती है कि तुमने हमारे 'चीर' हरे थे; आज उसका बदला लेना है; इसीलिए राधा के पैर पड़ो, तभी तुम्हें छुटकारा मिलेगा।

इस प्रकार लाल-पीली अँगिया और साड़ी पहने, पान खाये, काजल लगाये ब्रज की गलियों में हरि के संग फाग खेलती और गाली गाती ब्रज-बालाएँ घूमती फिरती हैं। जब कभी वे श्याम को अपनी ओर आता देखती हैं, तब उन्हें पकड़ने की योजना बनाती हैं। ललिता एक 'खोरि' में छिप जाती है और श्याम के निकट आने पर दौड़कर पकड़ लेती है। तब वह उनसे कहती है—हमारे साथ अब तक तुमने जो ढिठाई की है, आज उसका फल जान लोगे। तब कोई गोपी मुरली छीनती है, कोई पीतांबर पकड़ती है, कोई उनके बाल गूँथकर बेनी बनाती है, कोई लोचन आँजती है और इस प्रकार उनसे अपना 'बदला' लेती है। श्याम उसी समय 'चकमा' देकर भाग जाते हैं, तब गोपियाँ कहती हैं—आज भाग गये तो भाग जाओ; लेकिन हम अपना बदला जरूर लेंगी; तुमने हमें 'बेहाल' किया था, उसका 'फल' तुम्हें जरूर चखायेंगी। तुम भाग गये, नहीं तो तुम्हारा पीतांबर तभी मिलता जब 'हा-हा खाते' और पैर पड़ते।

उधर कृष्ण की 'वेणी' खोलते हुए सखा भी हँसी करते हैं—अपना पीतांबर गोपियों से लाते क्यों नहीं? सखाओं के 'तानने' पर कृष्ण कहते हैं—अगर मैंने उनसे पीतांबर ले लिया तो मुझे क्या दोगे? इतना कहकर उन्होंने एक 'सखा' को 'सखी' के वस्त्रादि पहनाकर गोपियों के बीच भेज दिया। उनकी भेजी हुई 'सखी' ने गोपियों से आकर कहा—देखो, पीतांबर मेरे पास सम्हालकर रखवा दो, कृष्ण को तब तक मत लौटाना जब तक अपना 'दाँव' न ले लो। गोपियों ने उस 'सखी' की बात से सहमत होकर

ज्योंही उसे पीतांबर देना चाहा, त्योंही 'सखी' रूपी सखा झटककर पीतांबर ले गया और अपने दल में आकर कृष्ण को उसने वह सौंप दिया। गोपियाँ इस चतुरता पर चकित-सी रह गयीं।

परंतु राधा की सखियाँ भी कृष्ण के सखाओं से किसी प्रकार कम नहीं हैं। जिस प्रकार चालाकी दिखाकर कृष्ण ने उन्हें ठगा था, उसी प्रकार ठगने की योजना उन्होंने भी बनायी। एक गोपी ने नील पट ओढ़कर बलराम का वेश बनाया। अग्रज के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए जब कृष्ण 'साँकरी खोरी' में आये, तब बलराम-वेशधारिणी गोपी ने उन्हें पकड़ लिया और पलक झपकते ही सब सखियाँ भी वहाँ पहुँच गयीं। सबने अच्छी तरह कृष्ण को जकड़ लिया। इस प्रकार ठगे जाने पर श्याम के मुख का 'पानी' उतर गया; परंतु गोपियों ने इसकी ओर ध्यान न दिया और राधा रानी के पास उनको पकड़कर ले गयीं। पश्चात्, सब गोपियों ने मिलकर राधा के सामने ही कृष्ण को 'बधू' बनाया। लोचनों में अंजन लगाया, भाल पर बेंदी लगायी, बेनी गूँथी, माँग पारी, बार-बार 'बधू' कहकर बुलाया और बार-बार पैर पड़ाया। राधा उनका यह रूप देखकर हँसने लगी। उसने 'कुसुंभी सारी' अपने हाथ से 'प्रियतम' को पहना दी। तब किसी ने उनका हाथ पकड़ा, किसी ने 'चिबुक' पकड़कर मुख ऊपर उठाया, एक ने कोमल उँगलियों से अधर हिलाकर कहा—अब बोलते क्यों नहीं हो ? तभी किसी सखी ने उनकी गाँठ राधा से जोड़ दी। दूसरी ने अरगजे का कनक-कलश उनके सर पर उँडेल दिया और सब सखियाँ ताली बजाकर हँसने लगीं। श्रीकृष्ण के इस प्रकार पकड़े और 'बनाये' जाने की बात जब नन्द जी को ज्ञात हुई तब उन्होंने यशोदा को वहाँ भेजा। उन्होंने मेवा और वस्त्रादिक देकर राधा की सखियों से श्याम को छुड़ा लिया।

एक अन्य पद में सूरदास ने श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिए गोपियों द्वारा बनायी गयी योजना का विस्तृत रूप दिया है कि किस प्रकार वे उनका 'घर' घेर लेती हैं; भीतर, बाहर, द्वारे, पिछवाड़े, सभी जगह वे एक-एक दो-दो छिपकर खड़ी होती हैं और तब अचानक धावा करके छिपे हुए कृष्ण को पकड़ लाती हैं। भाई को इस प्रकार 'बंदी' बनते देखकर भी बलराम कुछ नहीं बोलते और स्वयं अपने को बचाने के लिए चुपचाप सरक जाते हैं। पश्चात , श्रीकृष्ण की खूब 'दशा' बनायी जाती है, केसर-गुलाल मुख पर मला जाता है। पीले-लाल रंग भरे कलश उनके

सिर से नाये जाते हैं और कोई तो उनके कान में ही पिचकारी छोड़े देती है।

कभी-कभी सखियाँ मोहन को पकड़कर उनका स्वाँग बनाने के साथ यहाँ तक उनसे हँसी-खेल करती हैं कि कोई उनके कपोल छूती है तो कोई उनका मुख चूमती है। कोई व्यंग्य करती है—बहुत गाल बजाया करते थे, अब कहो क्या कहते हो? दूसरी ताना मारती है कि हमारे वस्त्र-हरण करके तुमने कहा था, मेरा कोई क्या कर लेगा, आज उसी 'पाप' का फल इस प्रकार मिल रहा है। श्याम के सखा दूर पर खड़े अपने नायक की इस प्रकार बनायी जाती 'दशा' देख रहे हैं; परंतु उनसे कुछ करते-धरते नहीं बनता। इधर गोपियों ने उनका 'जुवती-स्वाँग' बनाया, पीतांबर आदि छीनकर साड़ी-कंचुकी पहनायी और 'नख-छत' की छाप बनाकर उनसे कहा—यह चिह्न भी लेते जाओ जिसे देख-देखकर तुम्हें हमारी याद आती रहे।

सखाओं ने श्याम का यह रूप देखा तो उन्हें भी विनोद सूझा; वे सब कृष्ण को पकड़कर, बलराम की सौंह दिलाकर, वैसे ही नंद जी के पास ले गये। पुत्र का 'युवती'-रूप देखकर नंद जी खूब हँसे। उन्होंने यशोदा को बुलाकर वह 'स्वाँग' दिखाया। यशोदा ने आकर पुत्र को गले लगाया और कुछ खीझ के साथ कहा—तेरा यह 'स्वाँग' किसने बनाया है? फिर सारी बात समझकर वे हँसती हुई बोलीं—ये ग्वालिनें ऐसी ही हैं। जब गोपियाँ बलराम को पकड़कर बुरी तरह उनका स्वाँग बनाती हैं तब नँदरानी को उन्हें छुड़ाने के लिए मेवा आदि मँगाकर देना पड़ता है।

एक अन्य पद में तो गोपियाँ और भी आगे बढ़ जाती हैं। एक सखी झुंड से निकलकर किसी तरह हरि को पकड़ लेती है कि दस-बीस आकर उन्हें घेर लेती हैं और पीतांबर-मुरली आदि छीन ली जाती है। तब कोई मुख पर कुमकुम लगाती है, कोई गाली गाती है तथा राधा हँसकर उनकी आँख आँजती है। तभी कोई गोपियाँ कहती हैं—आज हम 'चीर-हरण' का बदला लेंगी; इसीलिए जिस प्रकार तुमने हमारे वस्त्र हरे थे, वैसे ही तुम्हें भी 'नंगा' करके छोड़ेंगी। कृष्ण यह बात सुनकर हँस पड़ते हैं; तब गोपी कहती है—इसे हँसी मत समझो; जब तक तुम 'हा हा' करके 'कुँवरि' के 'पाँइ' नहीं पड़ोगे, तब तक तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। यही बात सूरदास ने पुन: एक पद में विस्तार से लिखी है।

परमानंददास की गोपियाँ होली खेलने में सूरदास की गोपियों से

पीछे नहीं हैं। कृष्ण के साथ होली खेलने का अवसर पाते ही उनको देह-दशा भूल जाती है। उनमें से कोई 'फगुत्रा' के लिए फेंटा गहती है, दूसरी ठठोली करती है, तीसरी आँख आँजकर भागती है और चौथी सखियों की लीलाएँ देखकर जरा मुँह मोड़कर हँसती है। पाँचवीं सखी मुरली छीन लेती है, छठी 'गारी' गाती है और सातवीं फुलेल, अरगजा, चोवा, कुंकुम आदि की गगरी से उनको नहला देती है। परमानंददास ने गोपियों के रूप और वेश का वर्णन भी बहुत विस्तार से करते हुए बताया है कि उनमें कोई गोरी है, कोई साँवली। कोई कुंडल पहने है तो कोई तिलक दिये है। किसी की 'चोली' अधखुली है तो किसी की चोली के बंद ही टूट चुके हैं। किसी की अलकावली बनी है तो किसी की लटें। ये गोपियाँ नाचती-गाती नंदजी के द्वार पर पहुँचती हैं।

चतुर्भुजदास ने भी गोकुल की नारियों के नंदराइ की पौरी पर 'जुरि आने' की बात कही है। उनके शृंगार का वर्णन भी कवि ने किया है। गोपियाँ 'कटाव की चोली' और 'झूमक सारी' पहने एवं कंठश्री, 'मखतूल', मोती और गजमोती के हार, कंकन, किंकिणी, नूपुर, खुटिला, खुभी, नकबेसरि आदि अनेक आभूषण धारण किये हैं। उनके मुख में पान, नैन में काजल और माँग में सेंदुर है। अलकावली और मृगमद की आड़ी रेखा से सुशोभित उनके मुखमंडल की सुंदरता का वर्णन करने में कवि अपने को असमर्थ पाता है। कनकवर्णी गोपियों के साथ होली खेलते गिरिधर छीतस्वामी को 'करिनी' संग 'गजराज'-से जान पड़ते हैं। गोविंदस्वामी की गोपियाँ तनसुख की सारी, लाल कंचुकी, पीत 'अँतरोटा' आदि के साथ विविध आभूषण पहने हैं।

ग्वाल-बालों को अपनी ओर करके भी गोपियाँ कभी-कभी बड़ा काम निकालती हैं। एक दिन बलराम को अपनी ओर मिलाकर राधा उनसे कृष्ण को पकड़वा मँगवाती है। तब चंद्रावली लपककर कृष्ण का हाथ पकड़ती है, संभावली काजल ले आती है, ललिता लोचन आँजती है और चंद्रभागा मुरली ले भागती है। कोई कपोलों पर 'हरद' मलती है, कोई उसे पोंछती है, कोई 'चुंबन-दान' देती है और कोई उनका भुज अपने 'उर' पर रखती है।

गोपियों से छुटकारा पाकर मोहन भी भाई बलराम से अपना बदला लेते हैं और उन्हें गोपियों द्वारा पकड़ा कर कहते हैं—सब अपना मनभाया कर लो। गोपियाँ उनके नाक, नयन, मुख आदि में काजल लगाती और

'हरद कलश' उनके सिर से 'ना' देती हैं जिससे धौलागिरि से धातु बह चलने का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

सूरदास के एक अन्य पद में मोहन और बलराम, दोनों के पकड़े और बनाये जाने का वर्णन किया गया है। पहले गोपियाँ श्रीकृष्ण को पकड़ने की योजना बनाती हैं। एक सखी को बलराम का वेश बनाकर कृष्ण के समीप भेजा जाता है। भाई से मिलने के लिए ज्योंही कृष्ण आते हैं, त्योंही सखियाँ सिमटकर उन्हें घेर लेती हैं और उनको पकड़ कर कहती हैं—तुमने हमारे वस्त्र हरे थे, आज तुम्हारे वस्त्र हरकर हम अपना बदला लेंगी और 'हा हा' करने पर ही तुम्हें छोड़ेंगी। चारों ओर से घिरे कृष्ण को जब बचाव का कोई उपाय न सूझा तब सर झुकाकर खड़े रहने में ही उन्होंने अपनी कुशल समझी। इस पर एक सखी ने उनसे बदन उठाने को कहा, दूसरी ने आँख आँजने और माथे पर बेंदा लगाने का प्रस्ताव किया। तीसरी बोली—इन्हें नचाओ तो हम सब ताल दें। चौथी ने पीछे से आकर मोर-मुकुट उतार लिया, पाँचवीं पीतांबर छीन ले गयी, छठी ने आँख आँजकर, मुख मसलकर गाल पर 'गुलचा' दिया। सातवीं ने सलाह दी—बलदाऊ को बुला लो जो तुम्हें आकर छुड़ा दें या किसी सखा को भेजकर यशोदा को ही बुलवा लो; अथवा राधा से ही बिनती करो जो तुम्हें छुड़ा दें। इसी समय बलराम आते दिखायी देते है। छल-बल करके सब सखियाँ उनको भी वहीं पकड़ लाती हैं और कृष्ण के पास ही उनको खड़ा करती है। पश्चात्, उन्होंने आँख आँजकर, मुख पर गुलाल आदि मसलकर उनका स्वाँग बनाना शुरू किया ही था कि राधा ने संकेत से मना कर दिया।

नंददास की गोपियाँ भी अपनी सखियों से मोहन और बलराम को पकड़वाकर उनकी मुरली और पिचकारी छीन लेने की योजना बनाती हैं। वृषभानु की पौरि पर जब कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ पहुँचते हैं, तब छबीली कुँवरि मोहन को पकड़ लेती है और सखियाँ चारों ओर से आकर उन्हें घेरकर राधा के साथ उनकी गाँठ जोड़ देती हैं। पश्चात्, कोई सखी उन पर रंग डालती है, कोई पराग लेकर उनके कपोलों पर मलती है और कोई अंजन आँजती है। मोहन को इस प्रकार विवश देखकर वृषभानु की पत्नी वात्सल्य से प्रेरित होकर वहाँ आती हैं और व्रज-बालाओं को 'बरज' कर कन्हाई को छाती से लगा लेती हैं। तदनंतर, बड़े स्नेह से वे अपने अंचल से उनका मुख पोंछती, बलैया लेती और गाँठ 'छोरती' हैं।

चतुर्भुजदास की गोपियाँ लालन को पकड़वाकर 'तांडव' नाच करने को बाध्य करती हैं। उनके एक पद में पहले 'सुबल' को पकड़ा गया है और उसकी दशा बना कर कहा गया है कि हलधर को किसी प्रकार पकड़ा दो तो छुटकारा पा सकते हो। पश्चात्, हलधर और कृष्ण को पकड़कर उनकी 'दशा' भी बनायी जाती है। गोविंदस्वामी की गोपियाँ और भी चतुर हैं। वे 'सैना-बैनी' करके बलराम और कृष्ण को पकड़ लेती हैं और बड़े की आँख आँजकर तथा छोटे की मुरली छीन कर मनमाना फगुआ लेने के बाद ही छुटकारा देती हैं।

एक दूसरे पद में गोविंदस्वामी ने सब सखियों से सलाह करके मोहन को पकड़ने की बात लिखी है। 'बंदी मोहन' की गाँठ 'प्यारी' से जोड़कर सखियाँ बलराम से कहती हैं कि जाकर व्रजराज नंद से कह दो, आकर मोहन को छुड़ा लें। गोविंदस्वामी की ललिता तो सब गोपियों में आगे है जो 'गोकुल के राइ' से साफ-साफ कह देती है कि राधा प्यारी को सिर नवाने पर ही हम तुम्हें जाने देंगी।

श्रीकृष्ण की चतुरता भी गोपियों से कम नहीं है। वे उपवन में जाकर छिपते और कदंब की 'डार' पर बैठकर मुरली बजाते हैं। गोपियाँ उन्हें इधर-उधर खोजती हैं, पर पाती नहीं। जब श्रीकृष्ण उन्हें समीप आया देखते तब फिर छिप जाते हैं। पश्चात्, उन्होंने गोपियों को खिझाने का दूसरा उपाय सोचा। उन्होंने अपना रूप एक 'गोपी' का बनाया; सारी-कंचुकी पहनी, फूलों से शृंगार किया और गोपियों के बीच आकर खड़े हो गये। एक नयी गोपी को सामने देखकर राधा की सखियों ने परिचय पूछा तब नयी गोपी ने बताया—राधा मुझे पहचानती है। इसकी माता ने मुझे राधा के साथ रहने को भेजा है। इसके अनंतर सारी बात जानकर कृष्ण को पकड़ने का उसने एक नया उपाय भी सुझाया—तुम लोग एक साथ उन्हें ढूँढ़ती हो तो तुम्हारा कोलाहल सुनकर वे छिप जाते हैं। कहीं इस तरह उन्हें पकड़ा जा सकता है? दो-दो सखियाँ साथ हो जाओ, चुपचाप अलग-अलग उन्हें ढूँढ़ने निकलो और अचानक ही उन्हें पाकर पकड़ लो। गोपियों की समझ में नयी 'गोपी' की यह युक्ति आ गयी और दो-दो गोपियाँ साथ होकर कृष्ण को खोजने चलीं। इधर गोपी-रूपिणी कृष्ण ने राधा के साथ प्रणय-विहार के लिए 'कुंज' की राह ली।

चतुर्भुजदास के कृष्ण की उन्मत्तता या उद्दंडता का वर्णन एक गोपी ने किया है। वह कहती है कि होली खेलते-खेलते मोहन ने गुलाल, अबीर

और कुमकुमा से मेरा बदन भर दिया। मेरे खीझने की कुछ चिंता न करके निकट आकर मेरा अंचल झटका और मुझे अंक में भरकर मेरे कपोल चूम लिये।

ग्वाल-बालों के परस्पर होली खेलने का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने किया है। उनका परस्पर मारना, ताड़ना, भागना, गाजना, धाना, पकड़ना, हरषना, लड़खड़ाना, घात परखना, नेत्रों में गुलाल डालना, रंग ढरकाना, कभी एकत्र, कभी अलग-अलग फिरना, दाँव देने से बचना, गाना, नाचना, मृदंग आदि बजाना इत्यादि सभी कुछ उन कवियों ने लक्ष्य किया था।

युवतियों के साथ फाग खेलते हुए ग्वाल-बालों को 'होरि हो' 'होरि हो' कहते कुंभनदास ने भी सुना है। पिचकारियों से रंग छिड़कते और 'कीक' देते हुए वे सब व्रज की गलियों में घूमते हैं। नंददास के ग्वाल-बाल भी नायक कृष्ण के साथ 'हो हो हो हो होरी' बोलते हुए व्रज की गलियों में फिरते हैं। चतुर्भुजदास के ग्वाल-बाल नीले-पीले, सफेद और लाल वस्त्र पहने, अबीर-गुलाल फेंटों में भरे 'महा रस-माते' हो कृष्ण के साथ 'हो हो बोलते' गलियों का चक्कर लगाते हैं। गोविंदस्वामी के मदनमोहन भी कोलाहल करने में किसी से पीछे नहीं हैं। उनके अहीर 'कूकें' देते हुए प्रमदागण पर भी अबीर-गुलाल बरसाते हैं।

होली का यह खेल केवल नंद या वृषभानु की 'पौरी' या उनके भवनों के 'चौक' में ही नहीं होता; प्रत्युत गोकुल के 'चौहटे' और 'यमुना-तट' पर भी खूब होता है। सारी तैयारी करके श्रीकृष्ण अपने सखाओं के और राधा अपनी सखियों के साथ, सब 'चौहटे' पर आकर एकत्र होते हैं। सारा गोकुल ही जैसे इस समय चौराहे पर एकत्र है; यहाँ तक कि भवनों में कोई भी 'मनुष्य' नहीं रह जाता।

चतुर्भुजदास ने भी फाग खेलने के लिए श्रीकृष्ण और उनके सखाओं के 'चौहटे' पर आने की बात लिखी है।

कभी-कभी होली का खेल जमुना के किनारे भी होता है जब केसरि, कुमकुम, अबीर, मृगमद, चंदन, गुलाल आदि एक दूसरे पर डाला, छिड़का या उड़ाया जाता है। प्रभु हँसकर राधा पर 'गेंदुक' चलाते हैं और वह फुर्ती से बचा जाती है। ललिता दौड़कर मोहन को पकड़ती और उनका पीतांबर तथा उनकी मुरली 'छिंड़ा लेती' है, तभी दूसरी सखी

आकर उन्हें छुड़ाती है। इसी प्रकार कभी-कभी दस-पाँच सखियाँ आकर श्रीकृष्ण को अकेले पकड़ लेती हैं और अरगजा-अबीर भरे कनक-घट उनके सिर से उँडेलती, कुमकुमा छिड़कती और 'बंदन-धूरि' 'भुरकती हैं' जिससे श्रीकृष्ण की शोभा साँझ समय के बादलों-जैसी हो जाती है।

परमानंददास ने भी जमुना के पुलिन पर घनश्याम और राधा के दलों में होली खेले जाने की बात लिखी है। नंददास यमुना तीर पर 'अहीरों' सहित बलबीर के साथ 'युवतियों की भीर' के होली खेलने की बात लिखते हैं। गोविंदस्वामी के राधा-कृष्ण कालिंदी के तट या 'यमुना के तीर' पर होली खेलते हैं। साथ ही उनके कृष्ण तो पनघट की 'बाट' पर भी रंग खेलने पहुँचते हैं जहाँ वे गोपियों की 'गागरि' ढरका देते हैं और 'अचकाँ-अचकाँ' आकर राधा प्यारी उनके अरगजा-कुंकुम आदि लगाकर बदला ले लेती है।

चोवा, चंदन, अबीर, कुमकुमा आदि पिचकारियों में भर भर कर छिड़का जाता है और कभी उक्त पदार्थों के साथ-साथ टेसू के फूलों का रंग, रत्न-जटित पिचकारियों से डाला जाता है। साथ में अरगजा, 'बंदन-बूका', मृगमद, कुंकुम आदि भी छिड़का जाता है। चारों ओर अबीर-गुलाल उड़ रहा है। झोली भर भर कर अबीर का बूका उड़ाया जाता है जिससे बादल तक लाल हो जाते हैं और सारे 'अटा-अटारी' रँग जाते हैं। अबीर गुलाल के उड़ने से 'साँझ' का दृश्य हो जाने अथवा 'साँझ' फूलने की बात सूरदास और नंददास ने लिखो है। नंददास को उड़ता हुआ गुलाल 'उमड़ता हुआ अनुराग'-सा जान पड़ता है।

अबीर-गुलाल की झोलियाँ आदि सब ग्वाल-बालों ने कमर से कस रखी हैं। केवल अबीर-गुलाल ही नहीं, चंदन और कपूर का चूर्ण भी ग्वाल-बाल 'फेंटों' में भरे रहते हैं। हाथ से उड़ाया गया अबीर सूरदास और नंददास को आकाश में उड़ती हुई 'पंकज-धूरि' या पराग-सा जान पड़ता है। परमानंददास ने भी ग्वाल-बालों की कमर में गुलाल की 'झोरी' बँधी रहने की बात कही है और वे बराबर अबीर भी उड़ाते घूमते हैं। कुंभनदास की ललितादिक गोपियाँ भी अबीर-गुलाल उड़ाने में ग्वाल-बालों से पीछे नहीं हैं। पिचकारियों के छूटे हुए रंग से अटा-अटारी के रँग जाने की बात नंददास ने भी लिखी है। चतुर्भुजदास भी चोवा, चंदन, बूका-बंदन, अबीर, गुलाल आदि के उड़ाये जाने की बात लिखते हैं। उनके खिलाड़ियों द्वारा फेंका गया गुलाल गगन तक इस तरह छा गया है जैसे आँधी ने उसे सर्वत्र फैला दिया

हो। छीतस्वामी के मोहन प्रातःकाल से ही चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा, केसर, अबीर आदि झोली में भरकर होली खेलने निकलते हैं। गोविंदस्वामी ने भी झोली में भरे हुए चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा, गुलाल, अबीर आदि के उड़ाये जाने की बात कई पदों में कही है।

इस प्रकार होली खेलने पर श्याम का पीतांबर तथा अन्य वस्त्र विविध रंगों से रँगकर उनके श्याम शरीर पर अत्यंत शोभित होते हैं जिसका वर्णन सूरदास, कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने किया है। राधा के गोरे शरीर पर तरह-तरह के रंगों से तर साड़ी और सुरंग-रँगी कंचुकी बहुत भली लगती है। श्याम के पीले वस्त्र अनेक रंगों में और राधा की कंचुकी तथा तनसुख की सारी पीत रंग से रँग गयी है। सब लोग नीले, लाल, सफ़ेद, पीले आदि रंगों में रँगे वस्त्र पहने घूम रहे हैं।

व्रज की गलियों में इतना रंग खेला गया है कि सर्वत्र उसकी 'कीच' मच गयी है। होली खेलने के लिए जो अबीर तैयार किया गया है, वह भी एक-दो रंगों का नहीं, पचासों रंगों का है और स्वयं ही उन गलियों में छिड़का गया है जिनसे होकर मोहन होली खेलने निकलते हैं। कुंकुम-कस्तूरी आदि की मिलावट से व्रज की गलियों की कीच बहुत सुगंधित हो गयी है जिसका वर्णन सूरदास, कुंभनदास, नंददास, चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने किया है।

श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ घाट-बाट, गृह-बन, सबका मार्ग रोकते फिरते हैं और व्रज की कोई भी नारी उनके रंग-गुलाल के खेल से बच नहीं पाती। व्रज की जो बालाएँ श्याम के रंग में रँगी हैं, वे तो उनके साथ होली खेलने में पूरा आनंद लेती हैं; परंतु वहाँ अनेक वधुएँ ऐसी भी हैं जो सासु-ननद के डर से होली नहीं खेल सकतीं और कृष्ण से प्रार्थना करती हैं कि हम पर पिचकारी से रंग मत डालो। जब कृष्ण इस पर भी नहीं मानते तब वे नंद जी की दुहाई देती हुई कहती हैं—रंग उससे खेलो जो तुम्हारे लायक हो। हम कहाँ तुम्हारे योग्य हैं? कृष्ण इस पर उत्तर देते हैं—तुम 'अनलायक' कैसे हो जब हमारी ही तरह तुम भी 'नवल' हो? इतना सुनते ही ग्वालिनें हँस पड़ती हैं और कहती हैं—तुम बड़े गुन-भरे हो।

होली के खिलाड़ियों को दूसरों के मुख और नेत्रों में रंग और गुलाल डालने में विशेष आनंद आता है। श्रीकृष्ण और उनके सखाओं की 'बानि' भी ऐसी ही है जिसके कारण अनेक बार गोपियों को निवेदन करना पड़ता

है कि हमारी आँखों में गुलाल मत भरो और परस्पर बात करती हुई गोपियाँ भी नैनों में 'अबीर मारने' की कृष्ण की बान का उल्लेख करती हैं। कुंभनदास के ग्वाल-बाल युवतियों के मिल जाने पर किसी की 'चारु चिबुक' का स्पर्श करते हैं, किसी की बेसरि, खुभी आदि देखते हैं, किसी की कंचुकी के बंद तोड़ते हैं, किसी के हार छीनते हैं, किसी की भुजा मरोड़ते हैं और किसी को खाली झकझोरते डोलते हैं। और उनके नायक कृष्ण गोपियों के हार तोड़ने, चूड़ी फोड़ने, खुभी ले भागने, नेत्र ताक कर पिचकारी चलाने, नकबेसरि पकड़ने, चोली फाड़ने, बेनी गहने, कंठश्री झटकने आदि में सभी ग्वालबालों से आगे हैं। गोविंदस्वामी की एक गोपी कृष्ण की उद्दंडता का उलाहना देने यशोदा के पास भी पहुँच जाती है और कहती है कि यमुना के तट पर मोहन ने मेरी बाँह मरोड़ दी, माला तोड़ दी, कंचुकी फाड़ दी, गाल स्पर्श किये, मुख पर गुलाल डाला और फिर भी पानी न भरने दिया।

होली के अवसर पर 'ग्वालिनों' की तुलना सूरदास ने 'मदमाती हथिनियों' से की है जो गिरिधर रूपी गज के निकट जाने में कुल का अंकुस नहीं मानतीं और 'वेद की साँकल' भी तोड़ देती हैं। प्रियतम को पाकर वे वृन्दावन की वीथियों में 'नागबेलि' चबाती घूमती हैं। सुगंध उनके मस्तकों से चू रही है, घुँघरू घंटों से बज रहे हैं, अंचल बैरख-सा फहर रहा है और वे प्रियतम पर कुंकुम, बंदन आदि छिड़कती हुई उनके साथ क्रीड़ा में रत हैं। राधा तो 'गारी' गाते समय 'झुकि झुकि' पड़ती है। उन्मत्तता की अति तो उन नारियों के व्यवहार में देखने को मिलती है जिनके संबंध में कभी कुछ देखा-सुना भी नहीं गया था। वे ही आज पुरुषों से जरा भी नहीं लजातीं और 'कटि-वस्त्र' तक फाड़ने में संकोच नहीं करतीं। उन उन्मत्त गोपियों को जहाँ कहीं भी 'तपी, संयमी, धर्मी, आचारी' आदि होने का पता लगता है, वे वहीं पहुँच जाती और उनके आवास पर धावा बोल देती हैं। 'होली' के अवसर पर उन्मत्तता को लक्ष्य करके ही सूरदास ने 'सठ और पंडित' तथा 'बेस्या और बधू' के 'इकसार' होने की बात कही है। 'साधु-असाधु' का ध्यान न करके 'बिकार-बचन' बोलना भी वस्तुत: उन्मत्तता का ही परिणाम है। उन्मत्तता के कारण 'लाज छूट जाने' और अपना 'तन भी न सम्हारने' की बात परमानंददास ने लिखी है। कुंभनदास भी होली के अवसर पर 'लाज' छोड़कर 'उघरि नाचने' की बात लिखते हैं। चतुर्भुजदास की सम्मति में तो लोक-मर्यादा छूटने में ऋतु का भी प्रभाव है जिसके फलस्वरूप मुनि और पंडितगण ही नहीं, 'शिव-

विरंचि' तक बौरा गये हैं। अतएव चतुर्भुजदास की मदमाती तरुणियाँ 'कुल का अंकुस' भी नहीं मानतीं।

'होली' के अवसर पर 'कुल की परिमिति' फोड़ने' और 'लोक-बेद-कुल-धर्म की कानि न मानने' के साथ-साथ फाग खेलते समय मोहन के अनुराग के कारण गोपियाँ गुरुजन की लाज का जरा भी डर नहीं करतीं। सूरदास की गोपियाँ तो गुरुजन के सामने ही, उनको 'तृन' सम मानकर, 'चुंबन-दान' देती और लालन की भुज अपने उर पर धरती हैं। जिन गोपियों को गुरुजन की थोड़ी-बहुत लाज है, वे भी कृष्ण के साथ होली खेलने का कोई न कोई उपाय निकाल ही लेती हैं। अपने 'बैरी गुरुजनों' से छुटकारा पाने के लिए कोई तो बछड़ों को खोलकर वन में भगा देती है क्योंकि वह जानती है कि उनको पकड़ लाने के लिए वे मुझको अवश्य भेजेंगे और कोई भरी हुई 'गागरि' लुढ़काकर जमुना-जल लाने के बहाने कृष्ण से जा मिलने की योजना बनाती है। परमानंददास की गोपियाँ भी होली के अवसर पर 'कुल-लज्जा और मरजादा' तोड़ने से संकोच नहीं करतीं। चतुर्भुजदास के अनुसार बरसाने की ग्वालिनें फाग खेलते समय माता, पिता, सुत, कंत, किसी का भय नहीं मानतीं।

होली हिंदुओं का एक ऐसा पर्व है जिससे सहयोग और सामाजिकता की भावना के प्रचार में बड़ी सहायता मिलती है। इस त्यौहार के अवसर पर रंग खेलते समय धनी-निर्धन और बड़े-छोटे का भेद सर्वत्र भुला दिया जाता है। चतुर्भुजदास ने एक स्थान पर होली के खिलाड़ियों द्वारा किसी राजा-राय के कुछ न गिने जाने का उल्लेख किया है। होली खेलने का आवेश ऐसा होता है कि किसी को तन-बदन की सुधि नहीं रहती। अबीर, गुलाल और रंग के डर से सब लोग मुख मूँदे रहते हैं। स्त्रियों की 'बेनी' ढीला हो जाती है, 'चिकुर' छूट जाते हैं, उनके केस बिखर जाते हैं, कंचुकी के बंद टूट जाते हैं और मोतियों की माला बिखर जाती है। स्वयं छबीलेलाल भी 'तनी को चोली' तोड़ने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। इस पर जब राधा खीझती है तो सखियाँ गले लगाकर उससे कहती हैं कि खेल में इस तरह कौन मान करता है। होली खेलने में गोपी-ग्वाल इस तरह दत्त-चित्त हैं कि, कुंभनदास के अनुसार, वे सब-कुछ भूल गये हैं, यहाँ तक कि न किसी को आभूषणों के टूटने का ध्यान है और न वस्त्रों के फटने का ही। समय बीतने का भी उन्हें पता नहीं चलता।

होली के अवसर पर गीत गाकर किये गये खेल-तमाशे 'चाँचरि'

कहलाते हैं। अपने-अपने 'टोले' में ब्रज के सब लोग 'चाँचरि' खेलते हैं और ग्वालिनें तो घर-घर फाग खेलता हैं। इस अवसर पर 'गधे' की सवारी में भी प्राय: संकोच नहीं होता। सूरदास के 'ग्वाल-बाल' भी 'गधों' पर सवार होकर और 'बरात' सजाकर चलते हैं। इस त्यौहार पर भाँग, मदिरा आदि के पान का चलन भी हो गया है। सूरदास के एक पद में गोपियों के लिए मिटाई-पान के साथ-साथ 'कोटि कलस भर बारुनी' मँगाये जाने का उल्लेख हुआ है।

'चौहटे' पर एकत्र होकर आनंद से झूम-झूमकर मधुर बानी से 'गीत' और झूमके गाये जाते हैं। गोपों के 'धमार' गाने का वर्णन भी सूरदास ने किया है। कुंभनदास ने गोपियों के गाने और नृत्य करने का वर्णन किया है। उनके ग्वाल-बाल 'नटनारायन' राग गाते हैं। चतुर्भुज-दास ने एक पद में तो यही बात कुंभनदास के ही शब्दों में लिखी है और दूसरे में 'झूमक' गाये जाने का वर्णन किया है। उन्होंने ब्रज में 'होरी' खेलते नंदकिशोर को 'गौरी' राग अलापते बताया है। एक दूसरे पद में चतुर्भुजदास ने 'धमार' गाये जाने की ओर भी संकेत किया है।

'तरुनी-बाल-सयानी', सभी के परस्पर 'गाली' गाने का वर्णन भी सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। 'गाली' गाने में उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। हरि और वृषभानु-किशोरी, दोनों में कोई 'गाली' गाने में कम नहीं है। ग्वाल-बाल तो किसी भी ब्रजबाला को देखते ही 'होरी' पढ़ने और 'गाली' गाने लगते हैं। गोपियाँ भी गाली गाने में ग्वाल-बालों से बढ़कर ही हैं। जब वे श्रीकृष्ण को पकड़ पाती हैं तब उनका स्वाँग बनाती हुई खूब 'गारी' गाती हैं। श्रीकृष्ण से तो उनका प्रेम-संबंध है; अत: उनके प्रति 'गाली' गाने में तो कोई 'हर्ज' नहीं है; लेकिन गोपियाँ इससे भी आगे बढ़कर नंद महर तक का 'बखान' करने लगती हैं। सूरदास ने एक पद में 'गाली' के आशय की ओर भी संकेत किया है। ग्वाल जब 'होली' पढ़ते हैं तब गोपियाँ श्रीकृष्ण के लिए 'गाली' गाती हुई कहती हैं—'तुम्हारी माता', यशोदा बड़ी 'गुनभरी' हैं। यों तो वे नंद जी की पत्नी हैं, परंतु तुम्हारे पिता नंद नहीं हैं। अपने 'कुलटापन' से तुम्हारी माता यशोदा ने नंदादिक अनेक व्यक्तियों का मन मोह रखा है और राधा के पिता वृषभानु की भी वे 'प्यारी' हैं। इसी प्रकार गोप भी 'बरसाने' का नाम ले लेकर 'गालियाँ' देते-दिलाते हैं। सामान्यतया होली की गालियाँ 'मीठी' और 'मन-भावनी' होती हैं। परमानंददास की गोपियाँ मर्यादा का इतना

उल्लंघन नहीं करतीं। उन्होंने भी कृष्ण के लिए 'गाली' गायी है, परंतु उन्होंने कृष्ण को 'कारो', 'नटत्रा', 'लटुवा', 'मधुकर','खंजन' आदि कहकर ही प्रसंग समाप्त कर दिया है और अंत में यह भी कह दिया है कि 'फगुवा' पा जाने पर हम गाली नहीं देंगी। कुंभनदास भी 'रस-गारी' की चर्चा करना नहीं भूले हैं। नंददास की गोपियाँ मोहन के मन को मोहनेवाली गालियाँ गाती हैं। राधा उन गालियों को सुनकर कृष्ण की ओर देखकर लजा जाती है। चतुर्भुजदास ने गोपियों के द्वारा 'गाली' गाये जाने का वर्णन दो-एक पदों में किया है और गोविंदस्वामी की गोपियाँ भी इस प्रसंग में किसी से पीछे नहीं हैं।

होली पर 'झाँझ, झिल्ली, निर्झर, निसान, डफ, भेरि, ताल, मृदंग, बीन, बाँसुरी, रबाब, रुंज, महुअरि, उपंग, झालरी, आउझ' आदि बाजे बजाये जाने की बात सूरदास ने अनेक पदों में लिखी है। परमानंददास भी उक्त बाजे बजाये जाने की बात कहते हैं। कुंभनदास ने बाजों की उक्त सूची में अघौटी बीना, शंख आदि और बढ़ा दिये हैं।

नंददास के अधिकतर बाजे उक्त सूची के ही हैं; केवल मुरज, ढोल, टनक, सहनाई उन्होंने अधिक बजवाये हैं। चतुर्भुजदास ने सामान्य बाजों के साथ-साथ 'शृंग' और 'बेत्र' भी बजाये जाने की बात लिखी है। एक दूसरे पद में उन्होंने उक्त बाजों के साथ 'गिरगिरी' के और तीसरे पद मेरे 'डिमडिम' के बजाये जाने का उल्लेख किया है। छीतस्वामी और गोविंदस्वामी के बाजे भी उक्त सूची के ही हैं। बेना, अमृतकुंडली, दमामा, धौंसा आदि के नाम उन्होंने और लिखे हैं। इतने बाजे बजते हैं और इतना कोलाहल होता है कि कान पड़ी आवाज भी नहीं सुनायी देती।

'फगुआ' या 'फगुवा' का वर्णन भी प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। श्रीकृष्ण जब 'होली' खेलने निकलते हैं तब साथ में अनेक ग्वाल-बाल रहते हैं जिनमें कोई गाता है, कोई नाचता है और कोई तरह-तरह के रंग या स्वाँग करता है। सब सखाओं के साथ श्रीकृष्ण वृषभानु की 'पौरि' पर पहुँचते हैं। व्रज की समस्त किशोरियाँ भी दौड़कर आ जाती हैं और उन्हें घेरकर कहती हैं कि यदि तुम 'फगुआ' न दे सको तो राधा के पैर छुओ। मोहन जब भी सखियों द्वारा पकड़े जाते हैं, तब छुटकारा 'फगुवा' मँगा देने पर ही मिलता है। फगुआ ले लेने पर ही गोपियाँ कृष्ण को छुटकारा देने का निश्चय हर बार करती हैं। कभी मोहन स्वयं भी फगुवा मँगा देते हैं जिसमें सामान्यतया 'पँचरँग सारियाँ' होती हैं

जिनमें से युवतियाँ मनचाही छाँट लेती हैं। कभी माता यशोदा व्रज की युवतियों को बुलवाकर रंग-रंग की 'पहिरावनी' देती हैं। गोविंदस्वामी की यशोदा को जब 'काम नृपति की जेल' में बलराम के बंदी बनाये जाने अर्थात् गोपियों द्वारा बलराम के पकड़े और स्वाँग बनाये जाने की सूचना मिलती है, तब वे 'फगुवा' देकर ही उन्हें छुटकारा दिला पाती हैं। इसी प्रकार नन्द और यशोदा, दोनों कृष्ण को छुड़ाने के लिए बहुत मेवा मँगाकर गोपियों को देते हैं। कभी बलराम बीच-बचाव करते हैं और 'फगुआ' देकर भाई को छुड़ाते हैं। इसी प्रकार बलराम के पकड़े जाने पर कृष्ण 'फगुआ' मँगा देने का प्रस्ताव करते हैं।

एक पद में तो 'फगुआ' देने का विचित्र प्रस्ताव या सुझाव दिया गया है। गोपियाँ मोहन को पकड़ लेती हैं और नन्द जी से कहती हैं—कृष्ण को छुड़ाकर संसार में यश लो। उनका संकेत यह है कि 'फगुवा' पा जाने पर हम कृष्ण को छोड़ देंगी, इसलिए तुरंत उसका प्रबंध कर दो और यदि 'फगुवा' का प्रबंध तुम न कर सको तो यशोदा को वृषभानु के यहाँ 'धर' दो, तब उसका प्रबंध सुगमता से कर सकोगे। इस पर यशोदा हँसकर राधा और उसकी सखियों को बुलाती तथा 'फगुवा'-रूप में मेवा, मिश्री, रत्नादि देकर संतुष्ट कर देती हैं। परमानन्ददास की गोपियाँ तो यहाँ तक कह देती हैं कि 'फगुवा' मिल जाने पर हम 'गाली' नहीं देंगी। नन्ददास और चतुर्भुजदास की गोपियाँ भी 'फगुवा' माँगती और न दे सकने पर राधा के पाँय लगने की बात कहती हैं। गोविंदस्वामी की गोपियाँ कभी तो बलराम और मोहन को पकड़कर 'फगुवा' पाने पर छुटकारा देती हैं और कभी उसके लिए उनकी 'मणि-माल' छीन लेती हैं। कुछ गोपियाँ तो कृष्ण का पीतांबर पकड़कर 'फगुवा' में 'गहने-मोती-हार' लेने का हठ करती हैं। 'भूषण, बसन और पिछौरी' फगुवा में दिये जाने की बात भी गोविंदस्वामी के एक पद में मिलती है।

मेवा, मिठाई, पकवान, वस्त्र आदि गोपियों को सब कुछ 'फगुवा' में मिल गया और वे उसे पाकर हर्षित भी हो गयी हैं; परंतु वास्तव में जो 'फगुवा' वे चाहती हैं, वह उससे सर्वथा भिन्न है। श्याम से उन्होंने कहा है—हम तुम्हारे रंग में रँगी हैं; कोई और रंग हमें नहीं सुहाता। अतएव तुम्हारे साथ नित्य होली खेलने का सौभाग्य हमें प्राप्त रहे, यही 'फगुवा' हम चाहती हैं; तुम हमारी यही मनोकामना पूरी कर दो।

होली खेलने के पश्चात् गोप-गोपी, सभी परस्पर 'अनुकूल' होकर

यमुना में स्नान करने जाते हैं। सूरदास के एक पद में स्नान के समय जल-क्रीड़ा द्वारा गोपियों को सुख देने का भी वर्णन हुआ है। दूसरे पद में उन्होंने गोपियों के साथ जल-क्रीड़ा करते कृष्ण को 'गजिनी संग नहाते मदन-धुजिनी गज' जैसा कहा है। सूरदास के अतिरिक्त कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास और नंददास इस प्रसंग में मौन हैं। चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने अवश्य फाग के युद्ध में जीतकर गोपियों के जमुना के कूल पर जाने का उल्लेख किया है। यह स्नान 'परिवा' को होता है।

'परिवा' को नहा-धोकर नये वस्त्र पहनने की बात अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने लिखी है। स्नान करके कृष्ण जमुना से रथ पर लौटते हैं। घर आने पर नये और कोरे वस्त्राभूषण पहने जाते हैं। नंदरानी श्रीकृष्ण पर निछावर करके वस्त्रादि दान देती हैं। विप्रसमाज उनका तिलक करता है और विप्रों के साथ बंदीजन को वे 'रत्न-कंचन की बोरी' दान में देती हैं। द्वितीया के दिन श्रीकृष्ण सब वस्त्राभूषण धारण करके सिंहासन पर बैठते हैं। नंद जी भी व्रज-सुंदरियों को नग-भूषण दान देते हैं। कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास और छीतस्वामी के पदों में यह प्रसंग वर्णित नहीं है। गोविंदस्वामी ने अवश्य एक पद में नंदरानी द्वारा कुँवर पर 'वार' कर विप्रों को बहुत दान दिये जाने की बात कही है। द्वितीया के दिन पीतपटधारी श्याम के सिंहासन पर विराजमान होने का उल्लेख भी गोविंदस्वामी के एक पद में मिलता है जिसमें उन्होंने श्रीदामा को भी युवराज के निकट उपस्थित बताया है।

समीक्षा—विविध पर्वोत्सवों और त्योहारों का जो विवरण अष्टछाप-काव्य के आधार पर ऊपर प्रस्तुत किया गया है, उससे चार निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहली बात यह है कि आठों अष्टछापी कवियों ने सभी पर्वोत्सवों और त्योहारों का वर्णन नहीं किया और जिन्होंने उन विषयों को लेकर पद-रचना की भी उन्होंने उनको समान विस्तार नहीं दिया। सूरदास, नंददास, छीतस्वामी आदि कवि अनेक प्रसंगों में मौन रहे तो कुंभनदास, कृष्णदास और चतुर्भुजदास वर्ण्य विषयों को उतना विस्तार नहीं दे सके जितना परमानंददास या गोविंदस्वामी ने दिया है।

दूसरी बात यह कि किसी भी प्रसंग में सभी अष्टछापी कवियों के विचार यदि सामूहिक रूप से लिये जाते हैं तो वर्ण्य विषय का प्रायः सांगोपांग विवरण सामने आ जाता है। उदाहरण के लिए 'दीपमालिका' का पाँच दिन का उत्सव 'धनतेरस' से प्रारंभ होकर 'भाईदूज' को समाप्त

होता है; परंतु 'धनतेरस' का वर्णन जहाँ केवल परमानंददास और कुंभनदास ने किया है, वहाँ 'भाई-दूज' का वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने किया है। अतएव आठों कवियों के विचार इस प्रकार प्रत्येक विषय में 'पूरक' की उपयोगिता रखते हैं और सम्मिलित रूप से उनका अध्ययन करने पर ही वर्ण्य विषय का पूर्ण चित्र सामने आ सकता है।

तीसरी बात यह है कि अष्टछापी कवियों ने पर्वोत्सवों और त्योहारों की उन्हीं बातों की चर्चा मुख्य रूप से की है जिनका संबंध वे अपने आराध्य से स्थापित करने में सफल हो सके; अन्य विधानों या रीतियों को उन्होंने अधिक महत्व नहीं दिया। उदाहरण के लिए 'दीपावली' के त्योहार में नारियल के 'खोपड़े' के कोयले को दूध में घिसकर 'दिवाली' रखने का प्रचलन व्रज में आज भी है और कहीं-कहीं वैसा कोयला न मिलने पर साधारण कोयले से भी 'दिवाली' रखी जाती है। परंतु ऐसी बातों का निकट संबंध संभवतः श्रीकृष्ण से न होने के कारण अष्टछापी कवियों ने इनको महत्वपूर्ण नहीं समझा। सांस्कृतिक दृष्टि से अष्टछाप-काव्य के अध्येता को उन भक्त कवियों के इस आदर्श को बराबर ध्यान में रखना चाहिए।

अष्टछापी कवियों के उक्त पर्वोत्सव और त्योहार-वर्णन की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने जितना ध्यान ऐसे अवसरों का हर्षोल्लास-वर्णन करने में लगाया है, उतना पूजा आदि विधियों का वर्णन करने में नहीं। उदाहरण के लिए पूर्णिमा की रात को 'होली' 'लगाये' या 'जलाये' जाने की चर्चा अष्टछापी कवियों द्वारा लिखे गये होली-विषयक लगभग दो सौ पदों में केवल गोविंदस्वामी के एक पद के साथ-साथ 'सूर-सारावली' में मिलती है। श्रीकृष्ण के रस अथवा आनंद-रूप के उपासक अष्टछापी कवियों के लिए यह स्वाभाविक भी था। फिर भी विभिन्न पर्वों और त्योहारों की पूजा आदि के संबंध में जो दो-चार संकेत उनके काव्य में मिलते हैं उनके आधार पर ही सोलहवीं शताब्दी में उन उत्सवों की रूपरेखा का अच्छा ज्ञान हो सकता है और जब हम अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित अनेक बातें आज भी व्रज और उसके निकटवर्ती प्रदेश में प्रचलित देखते हैं तब हमें उन कवियों की सूझ-बूझ पर हर्ष-मिश्रित आश्चर्य होता है।

५. *लोकाचार और लोकव्यवहार*—

भारतीय समाज में पारस्परिक व्यवहार में आयु और पद के साथ-

साथ कभी-कभी वर्ण का भी ध्यान रखना पड़ता है। *यही कारण है कि यदि* निम्न वर्ग का व्यक्ति आयु में बड़ा है, तब भी वह आयु में छोटे उच्चवर्गीय व्यक्ति के प्रति शिष्टाचार दिखाना अपना कर्तव्य समझता है। इसी प्रकार बड़ी आयु वाले स्वामी के लिए पद में अपने से बड़े परंतु आयु में छोटे का सम्मान करना वांछनीय समझा जाता है। ब्रह्मचारी, आचार्य अथवा ब्राह्मण-वर्ग के प्रति अन्य वर्गों की श्रद्धा के मूल में प्रथम, और *स्वामी या प्रभु के प्रति दास के सम्मान के मूल में द्वितीय भावना काम करती है। अष्टछाप-काव्य में दोनों प्रकार के कुछ उदाहरण पौराणिक* प्रसंगों में मिलते हैं। उदाहरणार्थ बटु-रूपधारी 'वामन' को देखते ही बलि का उनको 'जुहारी' करने और चरण धोकर 'चरनोदक' लेने आदि के मूल में छोटी आयु के उच्चवर्गीय व्यक्ति के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन का सामाजिक शिष्टाचार ही है। इसी प्रकार द्वारकाधीश श्रीकृष्ण भी पूर्व सहपाठी निर्धन ब्राह्मण सुदामा को 'विप्र' जानकर ही हाथ जोड़ते हैं; अस्तु। अष्टछाप-काव्य में लोकाचार और लोक-व्यवहार का वर्णन बहुत कम स्थलों पर हुआ है; जो थोड़े-बहुत उदाहरण उसमें वर्णित हैं उनको मुख्यतः चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—क. सम्मान-प्रदर्शन, ख. विनम्र व्यवहार, ग. आदरातिथ्य तथा घ. अन्य लोकाचार।

क. *सम्मान-प्रदर्शन*—सम्मान-प्रदर्शन के लिए जिन शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में किया गया है उनमें नमन-नमस्ते, नमस्कार, साष्टांग प्रणाम, पालागन, प्रनाम, जुहार आदि शब्द मुख्य हैं।

अ. *नमन-नमस्ते*—समाज में जिन पुरुषों के व्यक्तित्व में लोक-कल्याणकारिणी असाधारणता होती है, सामान्यतया हर समझदार व्यक्ति का मस्तक उनके सामने झुक जाता है। वीतराग महापुरुष इसी वर्ग में आते हैं जिनके प्रति बड़े-बड़े सम्राटों के मुकुट झुकने की बात हमारे साहित्यकारों ने कही है। अष्टछाप-काव्य में वर्णित कुछ पौराणिक प्रसंगों में इस प्रकार के 'नमन' के उदाहरण मिलते हैं। उदाहरणार्थ युवावस्था में ही 'श्रीमद्भागवत' का अमूल्य उपदेश देकर अपने असाधारण व्यक्तित्व का परिचय देनेवाले श्रीशुकदेव जी के प्रति राजा परीक्षित 'नमो-नमो' कहकर ही अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। परब्रह्म-रूप में श्रीकृष्ण की स्तुति करनेवाले 'वेद' भी 'नमो नमस्ते' कहकर ही उनके प्रति अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हैं।

आ. *नमस्कार*—सामान्यतया 'नमस्कार' शब्द का प्रयोग पद,

मान आदि में बराबर वाले एक दूसरे से करते हैं, परंतु अष्टछाप-काव्य में एक स्थान पर श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये अक्रूर के मुख से पांडवों को अकारण दुख न देने का उपदेश सुनकर उत्तर में अपनी विवशता प्रकट करते हुए वयोवृद्ध अंधसम्राट कुरुपति ने 'पैर पकड़कर नमस्कार' कहलाया है।

इ. *साष्टांग अथवा दंडवत् प्रणाम*—भारतीय शिष्टाचार के अनुसार 'साष्टांग प्रणाम' ही अभिवादन की सर्वोत्तम विधि है। इसमें सिर, हाथ, पैर, हृदय, आँख, जाँघ, वचन और मन—इन आठ अंगों से भूमि पर लेटकर प्रणाम किया जाता है। इसे ही जनभाषा में 'दंडवत् प्रणाम' भी कहते हैं। इस विधि से प्रणाम सामान्यतया उन्हीं व्यक्तियों को किया जाता है जिनके प्रति व्यक्ति में पूज्य भाव रहता है। रावण की मृत्यु के पश्चात् अशोकवाटिका से वंदिनी सीता को ले जाने के लिए उनके देवर लक्ष्मण कुछ सहायकों के साथ आते हैं; तभी जामवंत, सुग्रीव और विभीषण उनको देखते ही 'दंडवत्' प्रणाम करते हैं।

ई. *पालागन*—वनवास के पश्चात् अपने सहायकों और सेवकों के साथ राम अयोध्या पहुँचते हैं। गुरुवर वशिष्ठ आदि के साथ भरत उनका स्वागत करने आते हैं। गुरुवर के दर्शन करते ही उनका परिचय देकर राम अपने सहायकों से उनको 'पालागन' करने को कहते हैं। 'प्रनाम' भी पालागन का एक रूप है। परमानंददास ने इसी अर्थ में 'पाँय लगने' की बात कही है। नंद यशोदा का संदेश लेकर आयी हुई पंथी राजरानी देवकी के 'पाँइ लगती' है।

उ. *जुहार*—सामान्यतया ग्रामीण वर्ग में ही 'जुहार' शब्द अधिक प्रचलित है, यद्यपि कहीं-कहीं नागरिकों के प्रति भी इस शब्द के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं। अष्छाप-काव्य में नंदजी द्वारा देवकी को 'जुहार' करने की बात पीछे लिखी जा चुकी है। राम-कथा-प्रसंग में सीता की खोज करते हुए हनुमान जब अशोकवाटिका में बंदिनी सीता का दर्शन करके अपरिचित होने के कारण चिंतित हो जाते हैं, तब आकाशवाणी द्वारा उनको आदेश मिलता है कि वैदेही यही हैं, इन्हें 'जुहार' करो। राजा के प्रति भी 'जुहार' करने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है जिससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के साथ-साथ सभ्य समाज में भी सविनय अभिवादन-सूचक यह शब्द प्रचलित हो गया था। कंस को मारने के पश्चात् उग्रसेन को सिंहासन पर बैठाकर श्रीकृष्ण उनको सविनय 'जुहार' करते हैं।

ख. *विनम्र व्यवहार*—सामान्यतया मनुष्य की वाणी और

शारीरिक हाव-भाव द्वारा व्यक्त शालीनता में शब्दों की गंभीरता तथा उनके द्वारा अभिव्यक्त शिष्टता के भाव सन्निहित रहते हैं। कृष्ण, पांडव के दूत बनकर कौरवपति की सभा में जाते हैं, 'क्षेम-कुशल' और 'दंडवत्-प्रणाम' के बाद वे बड़ी शिष्टता से पांडवों की माँग रखते हैं। इसी प्रकार अर्जुन ने भी कृष्ण को अपने पक्ष में लाने के लिए 'कृपा' करने की बात कही है। अपनी तुच्छता दिखलाना और दूसरे की उदारता एवं महानता का बखान करना शालीनता का एक अंग है। माता यशोदा के द्वारा देवकी को भेजे गये संदेश में दीनता और करुणा के साथ-साथ विनम्रता की स्पष्ट छाप है। संबोधन के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्दों द्वारा भी मौखिक शिष्टाचार प्रकट होता है। रुक्मिणी एक ब्राह्मण द्वारा कृष्ण को पत्र भिजवाती है। उस ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त 'देव' संबोधन इसी बात का परिचायक है। नंद और जशोदा के लिए क्रमशः प्रयुक्त होनेवाले शब्द, 'महर' और 'महरि' व्रजवासियों की विनम्रता के द्योतक हैं।

शारीरिक क्रिया द्वारा प्रदर्शित शिष्टता में हृदय की सम्मान-भावना और विनम्रता का व्यावहारिक रूप प्रस्फुटित होता है। पांडवों के दूत कृष्ण हाथ जोड़कर पांडवों का संदेश राजा दुर्योधन को सुनाते हैं।

समान आयु के व्यक्तियों में एक बार मित्रता का जो संबंध स्थापित हो जाता है, पद या अधिकार में उनके बढ़ जाने पर भी वह थोड़ा-बहुत बना ही रहता है, यद्यपि जिन व्यक्तियों की स्थिति वैसी ही बनी रहती है या गिर जाती है उनके मन में उन्नति कर जानेवाले के प्रति मित्रता के भाव में कुछ संकोच भी आ जाता है। ऐसे पूर्व परिचित मित्र या सुहृद जब बहुत समय बाद मिलते हैं, तब परस्पर अंकमाल देते या एक दूसरे को छाती से लगाते हैं। श्रीकृष्ण का सहपाठी निर्धन ब्राह्मण सुदामा जब वर्षों बाद, उनके अपूर्व ऐश्वर्य-संपन्न हो जाने की सूचना पाकर, उनसे मिलने के लिए द्वारका जाता है, तब वे 'अंकमाल देकर' उससे मिलते हैं। अपरिचित व्यक्तियों के प्रति अत्यंत स्नेह और आत्मीयता व्यक्त करने के लिए भी 'अँकवार भर भेंटा' जाता है। सीता की खोज में गये हुए हनुमान के लंका पहुँचने पर रावण का भाई विभीषण उन्हें 'अँकवार भरकर' भेंटता है।

ग. *अतिथि-सत्कार*—भारतीय संस्कृति में अतिथि-सत्कार का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अपना घर छोड़ना मानव को कभी प्रिय नहीं लगता; परंतु शरीर, परिवार और समाज की कुछ ऐसी आवश्यकताएँ होती हैं जिनके लिए उसे इच्छा-अनिच्छा से प्रवास में जाना ही पड़ता है।

किसी परिचित-अपरिचित परिवार में पहुँचने पर ऐसे लोग 'अतिथि' कहलाते हैं। इनमें सुख-संपन्न और दुख के मारे, दोनों प्रकार के व्यक्ति होते हैं। सामान्यतया सुख-संपन्न अतिथि का जितना स्वागत-सत्कार किसी परिवार में होता है, दुखी-पीड़ित का उतना नहीं, यद्यपि भारतीय संस्कृति दोनों का ही स्वागत-सत्कार करने की प्रेरणा बराबर देती रही है।

अतिथि-सत्कार में अतिथि के प्रति हृदय के उल्लास को प्रकट करने के दो प्रमुख साधनों का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है—अ. स्वागत-सत्कार और आ. सेवा।

अ. *स्वागत-सत्कार*—अनेक मांगलिक पदार्थों को लेकर अभ्यागत का स्वागत करने की परिपाटी भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है। सूरदास ने ऊधव के व्रज आने पर गोपी-ग्वाल द्वारा 'कंचन कलस', 'दूब', 'दधि', 'रोचन' आदि से उनका सत्कार कराया है। अतिथि के तिलक लगाना और उसकी 'प्रदच्छिना' करना भी उनके स्वागत का एक अंग है। सुफलक-सुत अक्रूर श्रीकृष्ण के शुभागमन की सूचना पाते ही दौड़कर मार्ग में ही उन्हें मिलते हैं और सादर घर लिवा लाते तथा उनके चरण धोते हैं। उस जल को बारबार वे माथे से लगाते एवं विविध सुगंधित पदार्थ, वस्त्राभूषण आदि लाकर उनके सामने रखते हैं।

आ. *अतिथि-सेवा*—भारतीय संस्कृति में अतिथि को साक्षात् नारायणस्वरूप माना गया है। अतः उसके आने पर तन-मन-धन से उसकी सेवा करना प्रत्येक गृही का कर्त्तव्य हो जाता है। सुदामा के आने पर द्वारकाधीश श्रीकृष्ण उनकी सेवा स्वयं करते हैं। उन्हें मलमल कर स्नान कराते हैं। चंदन, अगर, कुमकुम, केशर और परिमल का लेप उनके शरीर में करके अपनी शालीनता का परिचय देते हैं।

घ. *अन्य लोकाचार*—समाज में प्रचलित आचारों को ही 'लोकाचार' की संज्ञा प्रदान की जाती है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति लौकिक आचारों का प्रसन्नतापूर्वक अथवा लौकिक मर्यादा की रक्षा के लिए विवशता के साथ निर्वाह करता है। अष्टछापी कवियों ने जिन लोकाचारों का वर्णन किया है, उनमें दो मुख्य हैं—एक है उपहार भेजना और दूसरा, शुभकामना करना।

अ. *उपहार भेजना*—अष्टछापी कवियों ने राजाओं के उपहारों के साथ-साथ सामान्य जन की भी भेंट की चर्चा की है। गोपों के 'कमल'

पुष्प लेकर आने पर कंस ने नंद के लिए उपहार में 'सिरोपाव' (पाँचों कपड़े) भेजे थे। जन-साधारण में जब किसी मित्र अथवा संबंधी के घर कोई मिलने जाता था तो वह उपहार में कोई न कोई वस्तु अवश्य ले जाता था। सुदामा जब कृष्ण से मिलने गये तो दरिद्र होने पर भी उन्होंने इस प्रथा का पालन माँगे हुए कच्चे चावल ही भेंट में देकर किया था। इसके अतिरिक्त आनन्ददायी अवसरों पर भी उपहार भेजने की प्रथा प्रचलित थी। राजा दशरथ के यहाँ पुत्र-जन्म होने पर देश-देश से टीका आया जिसमें रत्न, मणि आदि बहुमूल्य पदार्थ थे। पुरवासी भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार पान-फूल लेकर दसरथ के यहाँ जाते हैं।

आ. शुभकामना—घर से बाहर जाते समय व्यक्ति की कुशल-मंगल की कामना से प्रेरित होकर दही और रोली का टीका लगाने की प्रथा लोक में प्रचलित थी। कृष्ण जब कंस के निमंत्रण पर मथुरा जाने लगते हैं तो माता सुपारी और रुपये देकर दधि और रोचन का तिलक लगाकर उनके प्रति अपनी शुभकामना व्यक्त करती है।

६. विश्वास और मान्यताएँ—

प्रत्येक जाति की संस्कृति का घनिष्ठतम संबंध उसमें प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं से रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जातीय जीवन के संगठन और नियंत्रण में विश्वासों और मान्यताओं का बड़ा हाथ रहता है। जिस जाति की संस्कृति का इतिहास जितना दीर्घकालीन होता है उसमें प्रचलित विश्वास और मान्यताएँ भी उतनी ही विविध और बहुसंख्यक होती हैं। भारतवर्ष की आर्य जाति का सांस्कृतिक इतिहास दीर्घकाल व्यापी है; अतः भारतीय समाज में प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं की संख्या स्वभावतया बहुत अधिक है। किसी भी युग की कथा लेकर काव्य-रचना करनेवाला भारतीय कवि यहाँ के समाज के विश्वासों और लोकमान्यताओं की ओर संकेत करने पर ही जातीय जीवन के यथार्थ चित्रण में सफल होता है। अष्टछापी कवियों के काव्य में भी इसी कारण भारतीय जन-समुदाय में प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं का उल्लेख अनेक बार हुआ है। अध्ययन की सुविधा के लिए उनकी रचनाओं में उल्लिखित विश्वासों और मान्यताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. पौराणिक विश्वास, ख. लोक-विश्वास और मान्यताएँ एवं ग. कवि-प्रसिद्धियाँ।

क. पौराणिक विश्वास—भारतीय संस्कृति में पौराणिक विश्वासों

का बड़ा महत्व है; क्योंकि वास्तव में पुराणों में ही उसका यथार्थ स्वरूप लक्षित होता है। पौराणिक विश्वास के प्रति अष्टछापी कवियों की पूर्ण आस्था रही है। उनके काव्य में वर्णित विविध पौराणिक विश्वासों को स्थूल रूप से नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ. चौबीस अवतार, आ. परब्रह्म के अवतार राम, इ. परब्रह्म के अवतार कृष्ण, ई. राम-कृष्ण की एकता, उ. परम शक्ति की अवतार सीता और राधा, ऊ. राम-कृष्ण की लीलाएँ देखने देवताओं का आना, ए. अन्य देवताओं-संबंधी पौराणिक प्रसंग, ऐ. अन्य पौराणिक प्रसंग और ओ. पौराणिक वृक्ष, पशु-पक्षी, वाहन आदि।

अ. *चौबीस अवतार*—'श्रीमद्भागवत' के अनुसार अगाध सरोवर से निकलनेवाली सहस्रों नालियों के समान ही भगवान के अवतार भी असंख्य हैं। 'सूरसागर' और 'सूर-सारावली में पृथ्वी के रज-कण और आकाश के नक्षत्रों के समान अवतारों की संख्या अगण्य बतायी गयी है। परंतु भारतीय मनीषी उनकी गणना का प्रयत्न बहुत पहले से करते आ रहे हैं। 'श्रीमद्भागवत महापुराण' के प्रथम अध्याय में भगवान के बाइस अवतारों का उल्लेख हुआ है—सनकादिक, सूकर, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष, ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कच्छप, धन्वंतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध और कल्कि। अष्टछापी कवियों में सूरदास के अतिरिक्त किसी ने 'अवतारों' की संख्या का उल्लेख नहीं किया है। सूरदास ने अवश्य उक्त अवतारों में से दस अवतार प्रमुख माने हैं—मच्छ, कच्छ, वराह या सूकर, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, वासुदेव या कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। इसी पद में उन्होंने चौदह अन्य अवतारों का भी उल्लेख किया है—सनकादिक, व्यास, हंस, नारायण, ऋषभदेव, नारद, धन्वंतरि, दत्तात्रेय, पृथु, यज्ञपुरुष, कपिल, मनु, हयग्रीव और ध्रुव। इस प्रकार 'श्रीमद्भागवत' में 'मोहिनी' और 'बलराम' की गणना भी अवतारों में की गयी है; परंतु सूरदास ने उनको हटाकर हंस, मनु, हयग्रीव और ध्रुव की अधिक चर्चा करके चौबीस अवतार-संबंधी भारतीय समाज का प्रसिद्ध पौराणिक विश्वास व्यक्त किया है।

आ. *परब्रह्म के अवतार राम*—भगवान के दस प्रमुख अवतारों में राम की गणना सभी पुराणों में की गयी है। अष्टछापी कवियों ने भी उनको परब्रह्म का अवतार माना है। सूरदास ने 'भू-भार उतारने' के लिए राम का अवतरित होना बताया है।

इ. *परब्रह्म के अवतार कृष्ण*—परब्रह्म के अवतार श्रीकृष्ण तो अष्टछापी कवियों के आराध्य हैं ही, अतएव उनके दिव्य गुणों के परिचायक विविध नामों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में बड़े विस्तार से हुआ है। सूरदास ने 'सूरसागर' में उन्हें 'पूरन ब्रह्म' का अवतार माना है और उनके लिए अशरण-शरण, 'अबिगत', 'अबिनासी', उदार-उदधि, करुणामय, करुणा-निधान, कला-निधान, जगत-गुरु, जगत-पिता, जगदीस, जगन्नाथ, जगपाल, 'जान-सिरोमनि', दीन-बंधु, दीनानाथ, पुरुषोत्तम, मधुसूदन, श्रीपति, सकल-गुन सागर, सुख-सागर आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो प्राय: सभी पुराणों में परब्रह्म के लिए प्रयुक्त होते आये हैं। 'सारावली' में भी उन्हें 'अबिगत', आदि, अनंत, अनूपम, 'अलख' पुरुष, 'अबिनासी', 'पूरनब्रह्म', पुरुषोत्तम आदि कहा गया है। अष्टछाप के अन्य कवियों ने उनके लिए अंतर्यामी, 'अबिनासी', कमलाकांत, कमलापति, गोविंद, जगन्नाथ, त्रिभुवनपति, 'दीनन-दुखहारी', परब्रह्म, पुरुषोत्तम, श्रीपति, सुखसागर आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

कुंभनदास ने परब्रह्म के तीन रूपों, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तथा उनके कार्यों—उत्पत्ति, पालन और संहार—की बात कही है और यह तथ्य स्वयं कृष्ण अपने मुख से स्वीकार करते हैं। इसी पद में कुंभनदास के कृष्ण स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में अपनी ही ठकुराई होने की बात कहते हैं। 'सूरदास' के नारद जी अपनी स्तुति में श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठता की स्पष्ट घोषणा करते हैं। वेदों ने भी उनके सर्वव्यापी और अंतर्यामी रूप की वंदना की है। सूरदास के एक पद में हरि के विराट रूप की आरती का वर्णन करके अनंत ब्रह्मांड में व्याप्त उनके 'विराटत्व' की ओर संकेत किया गया है।

ई. *राम और कृष्ण की एकता*—अष्टछाप के कवि परब्रह्म श्रीकृष्ण को अपना आराध्य मानते हुए भी राम और कृष्ण की एकता में आस्था रखते हैं। सूरदास ने एक पद में इसकी चर्चा बड़े विस्तार से की है। इंद्रादि देवता पद के एक चरण में राम की और दूसरे में कृष्ण की स्तुति इस प्रकार करते हैं :—

जै गोबिंद माधव मुकुंद हरि। कृपा सिंधु कल्यान कंस अरि।
प्रनत - पाल केसव कमलापति। कृष्न कमल लोचन अगतिनि-गति।
रामचंद्र राजीव-नैन बर। सरन साधु श्री-पति सारँगधर।
बनमाली बामन बीठल बल। बासुदेव वासी ब्रज - भूतल।

खर-दूखन-त्रिसिरासुर खंडन ! चरन-चिह्न-दंडक भुव मंडन ।
बकी - दवन बक-बदन बिदारन । बरुन - बिषाद नंद निस्तारन ।
रिषि-मख-त्रान ताड़का-तारक । बन बसि तात-बचन-प्रतिपालक ।
काली-दवन केसि-कर-पातन । अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन ।
रघुपति प्रबल पिनाक बिभंजन । जगहित जनक-सुता मन - रंजन ।
गोकुलपति गिरिधर गुन सागर । गोपी-रवन रास-रति नागर ।
करुनामय कपि-कुल-हितकारी । बालि - बिरोधि कपट मृग-हारी ।
गुप्त गोप - कन्या-व्रत पूरन । द्विज - नारी - दरसन - दुख - चूरन ।
रावन - कुंभकरन - सिर छेदन । तरुवर सात एक सर भेदन ।
संख - चूड़ - चानूर-सँहारन । सक्र कहै मम रच्छा - कारन ।
उत्तर क्रिया गीध की करी । दरसन दै सबरी उद्धरी ।
जे पद सदा संभु हितकारी । जे पद परसि सुरसरी तारी ।
जे पद रमा हृदय नहिं टारैं । जे पद तिहूँ भुवन प्रतिपारैं ।
जे पद अहि-फन-फन-प्रतिधारी । जे पद बृन्दा बिपिन बिहारी ।
जे पद सकटासुर संहारी । जे पद पांडव-गृह पग धारी ।
जे पद-रज गौतम-तिय तारी । जे पद भक्तनि के सुखकारी ।
सूरदास सुर जाँचत ते पद । करहु कृपा अपने जन पर सद ।

उक्त पद इस बात का प्रबल प्रमाण है कि उदारमना अष्टछापी कवि राम और कृष्ण की एकता में पूर्ण विश्वास रखते और दोनों को परब्रह्म का अवतार मानते थे । हिंदी के समस्त भक्ति-साहित्य में इस प्रकार के पद अधिक नहीं मिलेंगे ।

उ. *परमशक्ति की अवतार सीता और राधा की एकता*—राम और कृष्ण की एकता के समान ही सीता और राधा को भी अष्टछापी कवियों ने एक ही परमशक्ति का अवतार माना है । यही कारण है कि जिस प्रकार वे सीता को 'जगत-जननी' कहते हैं, उसी प्रकार राधा को भी 'सेस-महेस-गनेस, सुकादिक, नारदादि की स्वामिनी, जगत-जननी' आदि मानते हैं ।

ऊ. *राम-कृष्ण की लीलाएँ देखने देवताओं का आना*—परब्रह्म का अवतार होने के कारण राम और कृष्ण सभी देवताओं के पूज्य हैं; अतएव उनकी लीलाएँ देखने के लिए देवता सदैव उपस्थित रहते हैं । राम-लक्ष्मण के विवाह में वे दुंदुभी बजाते हैं और आकाश में 'व्योम विमानों' की 'भीर' हो जाती है । श्रीराम के धनुष तोड़ते ही अमरगण 'जयजय' ध्वनि करते हैं । इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण कालियनाग के नाथने में सफल होते हैं तब

भी 'अमर' जयजय ध्वनि करके 'धन्य धन्य' कहते हैं। गोवर्द्धन-पूजा का कौतुक देखने के लिए भी देवगण आते हैं और 'जय' ध्वनि करके फूल बरसाते हैं। रासलीला का अद्भुत दृश्य देखकर तो देवगण के हर्ष की सीमा ही नहीं रहती। वे बार-बार फूल बरसाते, गोपी-ग्वाल और व्रजजन को ही नहीं, बंसीबट, जमुनातट, लता-तमाल, वृन्दावन, सभी को 'धन्य' कहते हैं। इस अवसर पर वे 'नीसान' भी बजाते हैं। शिव, शारद, नारद आदि भी 'धन्य धन्य' कहने में उनका साथ देते हैं। चतुर्भुजदास ने भी रासलीला के अवसर पर 'व्योम विमानों का मुग्ध और थकित' हो जाना कहा है। परमानंददास के अनुसार 'घोष' के कौतूहल देखने के लिए देवता विमानों पर एकत्र होते हैं। केशी आदि दैत्यों के वध के अवसर पर भी देवतागण के 'पुहुप' बरसाने की बात अष्टछाप-काव्य में मिलती है।

इसी प्रकार राधा का अद्भुत सौन्दर्य और उनकी परम भावती लीलाएँ देखने के लिए 'रमा, उमा, शची और अरुंधती' प्रति दिन आती हैं। रासलीला के अवसर पर तो 'देव-ललना पति-गति बिसराकर' निहारती रह जाती हैं और उनसे अपने लोक लौटते नहीं बनता। इस अवसर पर उन्हें 'देव-वधू' होने का बड़ा दुख है और 'अमरपुर' को छोड़कर वृन्दावन में द्रुमलता होने का वरदान वे 'करता' से माँगना चाहती हैं। व्रज में 'दासी'-जीवन बिताना भी उन्हें स्वर्ग की 'देवी' होने से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। मन में इस प्रकार विचार करती 'अमर ललनागण' स्व-लोक बिसारकर 'बिथकी'-सी रह जाती हैं।

ए. *अन्य देवताओं संबंधी पौराणिक प्रसंग*—ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीन देवता परब्रह्म के रूप कहे जाते हैं। इनमें से ब्रह्मा और महेश के संबंध में दो पौराणिक प्रसंग बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रथम है 'बाल-वत्स-हरण' प्रसंग जिसमें ब्रह्मा व्रज के बाल-वत्सों का हरण करके ब्रह्मलोक पहुँचा देता है और परब्रह्म के अवतार कृष्ण उनकी पुन: सृष्टि करके उसका गर्व हरते हैं। ब्रह्मा वह नयी सृष्टि देखकर चकित होता, सुबुद्धि का उदय होने पर 'पुरुष-पुरान' को पहचानता, अपनी धृष्टता के लिए पश्चाताप करता और अपराध क्षमा कराने के लिए उनकी प्रार्थना करता है। अंत में माधव से वृन्दावन की रेणु ही कर देने की प्रार्थना करने पर उसे शांति मिलती है।

दूसरा प्रसंग शिव के मोह का है। कामारि शिव भगवान से उस मोहिनी-रूप का दर्शन कराने का निवेदन करते हैं जिसे देखकर सागर-मंथन के समय सुर और असुर मोहित हो गये थे। समझाने पर भी जब वे नहीं

माने तब भगवान ने मोहिनी-रूप धरकर दर्शन देने का वचन दिया। उमा सहित शिव वन में जाकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय सूर्य, चंद्र और चपला से भी अधिक कांतिवती ज्योति-स्वरूपिणी मोहिनी के दर्शन उनको हुए। उसे देखकर उमा तो मुग्ध हो ही गयीं, शिव भी इतने मोहित हुए कि लपककर उन्होंने उसे पकड़ लिया। तभी मोहिनी अपने को छुड़ाकर जब बड़े हाव-भाव से उनकी ओर देखती हुई आगे बढ़ी कि कामातुर शिव का वीर्य स्खलित हो गया। उमा की उपस्थिति में अपनी यह दशा देखकर शिव बहुत लज्जित हुए और मन में पश्चाताप करने लगे कि मैंने यह क्या किया। तभी भगवान ने दर्शन देकर उन्हें सांत्वना दी।

भगवान के इन दोनों रूपों के अतिरिक्त, पौराणिक विश्वास के अनुसार, गोवर्द्धन-पूजा के प्रसंग में देवराज इंद्र का अभिमान नष्ट होने की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मिलती है। ब्रह्मा और शिव से संबंधित उक्त पौराणिक प्रसंगों के प्रति तो सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने अधिक रुचि नहीं दिखायी है, परंतु इंद्र की पराजय की चर्चा प्रायः सबने विस्तार से की है। मन ही मन श्रीकृष्ण की महिमा का गान करता हुआ इंद्र अपनी धृष्टता पर अत्यंत लज्जित होकर उनकी शरण आता है।

ए. *अन्य पौराणिक प्रसंग*—इस वर्ग में पृथ्वी का कच्छप और शेषनाग पर स्थित होना, प्रलय, उससे संबंधित अक्षय वट जिसका नाश 'प्रलय'-काल में भी नहीं होता, चंद्रमा का राहु द्वारा ग्रसा जाना, सागर-पुत्र होने के कारण पूर्ण चंद्र को देखकर सिंधु की लहरों का बढ़ना, चंद्रमा के रथ में मृगों का जुता होना, अमृत का देवेन्द्र के पास होना और उसकी वर्षा से लंका-युद्ध के मृतक भालु-कपियों तथा राम-पक्ष के अन्य वीरों का जी उठना आदि वे पौराणिक प्रसंग आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास ने विशेष रूप से किया है।

किन्नर, गंधर्व, विद्याधर आदि देवजातियों का राम-कृष्ण की लीलाओं से प्रसन्नता प्रकट करने और फूल बरसाने का उल्लेख भी अष्टछापी कवियों के पौराणिक विश्वास से संबंध रखता है। लंका के युद्ध के पश्चात् अमृत-वर्षा से मृतकों के जी उठने पर 'गंधर्वगण' 'जय-जय' ध्वनि उचारते हैं। कृष्ण-जन्म के अवसर पर देवता जब आकाश में दुंदुभी बजाते हैं तब विद्याधर, किन्नर और गंधर्व अपनी प्रसन्नता नाच-गाकर प्रकट करते हैं। श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन-लीला के अवसर पर भी गंधर्वादि मुग्ध हो 'धन्य-धन्य'

कहते हैं। रासलीला के अवसर पर भी किन्नरों की 'जय-जय' ध्वनि अष्टछापी कवियों को सुनायी देती है।

'आकाशवाणी' और 'अनाहतवाणी' का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है जो भारतीय समाज के तत्संबंधी पौराणिक विश्वास का ही परिचायक है। अशोक-वाटिका में सीता को न पहचानने पर हनुमान जब चिंतित बैठे हैं तब 'आकाशवाणी' से उन्हें सुनायी देता है कि सीता तुम्हारे सामने है, उन्हें 'जुहार' करो। इसी प्रकार कंस जब बड़े उत्साह से बहन देवकी का विवाह करके वसुदेव को बहुत दायज देकर विदा करने को प्रस्तुत होता है तभी 'अनाहतबानी' से उसे सूचना मिलती है कि इसकी 'कोखि' से उत्पन्न पुत्र तेरे प्राण हरेगा।

आ. *पौराणिक पशु, पक्षी, वृक्ष, वाहन, सर्प आदि*—पौराणिक विश्वासों के अंतर्गत वे पशु, पक्षी, पशु-वाहन, सर्प आदि आते हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में स्फुट रूप से अथवा देव-वर्ग से संबंधित करके हुआ है। इनमें से उच्चैश्रवा, धवलबरन ऐरावत, कामधेनु अथवा सुरधेनु, गरुड़, तक्षक, वासुकि और कल्पद्रुम की चर्चा पीछे की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त अष्टसिद्धि और नवनिधि तथा चिंतामणि की चर्चा भी पौराणिक विश्वासों के अंतर्गत ही मानी जानी चाहिए। देव-वाहनों के नाम गोवर्द्धन-प्रसंग में उद्धृत सूरदास के एक पद में पीछे दिये जा चुके हैं।

ख. *लोक-मान्यताएँ और सामान्य विश्वास*—इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाली बातें मुख्यत: पाँच उपशीर्षकों में विभाजित की जा सकती हैं—अ. परंपरागत मान्यताएँ, आ. उपचार-संबंधी विश्वास, इ. शकुन, ई. अशकुन और उ. अन्य विश्वास।

अ. *परंपरागत मान्यताएँ*—समाज-विशेष में प्रचलित वे बातें 'परंपरागत मान्यताएँ' मानी जाती हैं जिनकी सत्यता का अनुभव मानव-जाति परंपरा से करती आयी है। ऐसी मान्यताओं की पुष्टि पूर्व युगों के विविध ग्रंथों से तो होती ही है, परिवार या समाज के बड़े-बूढ़े भी अनेक आख्यानों-उपाख्यानों के द्वारा उनके प्रति विश्वास रखने की प्रेरणा दिया करते हैं। शताब्दियों तक प्रचलित रहने के कारण ऐसी मान्यताएँ किसी देश या समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाती हैं। भारतीय संस्कृति से संबंधित जिन परंपरागत मान्यताओं का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है, उनमें छह मुख्य हैं—१. भाग्यवाद, २. कर्मवाद, ३.

पुनर्जन्मवाद, ४. ज्योतिष के प्रति मान्यता, ५. स्वस्तिवाचन के प्रति विश्वास और ६. भूत-प्रेतादि में विश्वास ।

१. *भाग्यवाद*—अपनी शक्ति के सीमित होने का अनुभव मानववर्ग सृष्टि के आदि से ही करता आया है। अपनी अनेकानेक योजनाओं के क्षणमात्र में ही नष्ट हो जाने की निराशा भी जीवन में अनेक बार उसने अनुभव की है। इसी प्रकार असंभावित और अयाचित घटनाओं और कार्यों को प्रत्यक्षत: घटित और संपादित होते भी उसने देखा है। इन सब बातों से मनुष्य का विश्वास 'भाग्यवाद' के प्रति सनातनकाल से दृढ़ होता आया है और भारतीय संस्कृति का तो यह परंपरा से प्रमुख अंग रहा है। 'भाग्यवाद' के मूल में जहाँ अपनी शक्ति के सीमित होने का विश्वास निहित है, वहीं दैव की अपरिमित सामर्थ्य के प्रति आस्था भी है। अतएव भारतीयों का सदा से यह विश्वास रहा है कि सृष्टि का प्रत्येक कार्य पूर्व निर्दिष्ट भाग्य-विधान के अनुसार ही होता है; उसमें परिवर्तन लाना मानव की क्षमता के बाहर की बात है।

अष्टछाप-काव्य मे 'भाग्यवाद' के समर्थन में अनेक उक्तियाँ मिलती हैं जो भारतीय समाज की तत्संबंधी परंपरागत मान्यता ही सूचित करती हैं। सूरदास के अनुसार संसार में वही होता है जो गोपाल करना चाहते हैं। दुख-सुख, हानि- लाभ, सब कुछ उन्हीं की देन है; उनमें व्यक्ति का पुरुषार्थ मानना भूल है और ईश्वर की इच्छा के विपरीत कार्य करने में मनुष्य के साधन, जंत्र-मंत्र, उद्यम, बल, सब व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं। सामान्य मनुष्य ही नहीं; सिद्ध, साधक, मुनि आदि भी 'रघुनाथ' के निश्चित कार्य को घटा-बढ़ा नहीं सकते और 'हांनी' होकर ही रहती है।

'भाग्यवाद' के प्रति ऐसी आस्था रखने के मूल में दो उपयोगी भाव हैं। पहली बात तो यह है कि किसी कार्य या योजना में सफल होने पर व्यक्ति उस सफलता को भाग्य की देन समझता है, उसका श्रेय स्वयं न लेने से वह उस गर्व से बचा रहता है, जो उसके परमाराध्य को जरा भी नहीं भाता। दूसरी बात यह कि किसी योजना के पूरी न होने पर असफलता की स्थिति में हृदय पर जो भयंकर आघात होता है, उसको किसी सीमा तक सहन करने की शक्ति भी 'भाग्यवाद' पर विश्वास से मिलती है जिसके फलस्वरूप मानवीय ही नहीं, दैवी आपत्तियाँ तक व्यक्ति सहज ही सहन कर लेता है। बालि की असंभावित मृत्यु पर जब उसका पुत्र अंगद बहुत दुखी होता है तब उसको धीरज बँधाते हुए सूरदास के राम कहते हैं कि

'होनी' बड़ी प्रबल होती है; उसको मिटाया नहीं जा सकता। अशोक-वाटिका में दु:खिनी सीता के प्रति 'निसिचरी' का भी कथन है कि 'बिधि-सँजोग' टाले नहीं 'टरता', नहीं तो जनक-जैसे राजा की पुत्री होकर तुम वन के कष्ट क्यों भोगतीं ?

गोविंदस्वामी के कृष्ण सुरपति की पूजा का प्रसंग चलाये जाने पर पिता नंद तथा अन्यान्य व्रजवासियों को समझाते हैं कि जो तुम्हारे कर्म में लिखा है, वही मिलेगा; सुरपति तुम्हें आकर और क्या दे देगा ? सूरदास की गोपियाँ भी दुख-सुख, कीर्ति आदि को 'भाग्य' की देन समझकर ही स्वीकार करने को कहती हैं। कंस के बंदीगृह में अपने सात मृतक पुत्रों के साथ-साथ, चोरी-छिपे गोकुल पहुँचकर माता-पिता की छत्रछाया से बिछुड़कर जीवित रह सकनेवाले आठवें पुत्र कृष्ण को याद करके देवकी जब बहुत दुखी होने लगती है तब वसुदेव सुख-दुख को भाग्य की देन समझने की बात कह कर उसे धैर्य देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के वसिष्ठ भी भरत को समझाते हुए 'हानि-लाभ जीवन-मरन जस-अपजस' का विधि के हाथ में ही होना कहकर धीरज देते हैं। इसी प्रकार कंस के मारे जाने के पश्चात् देवकी जब बारह वर्ष के पुत्र श्रीकृष्ण को छाती से लगाकर बिलखती है कि मैंने गोद में नहीं खिलाया, तब कृष्ण उसे समझाते हुए कहते हैं कि भाग्य का लिखा कोई मेट नहीं सकता।

२. *कर्मवाद*—प्राणी के जीवन में दुख-सुख, हानि-लाभ आदि का जो क्रम चला करता है उसके कारण सामान्यतया प्रत्यक्ष नहीं होते। ऐसी स्थिति में 'भाग्यवाद' का आश्रय लेने पर व्यक्ति को उत्तर तो मिल जाता है; परंतु यह उसके लिए अधिक उपयोगी नहीं होता। इस कारण भारतीय मनीषियों ने दुख-सुख, हानि-लाभ आदि को प्राणी के पाप-पुण्य का परिणाम बताकर दोहरे उद्देश्य की सिद्धि का प्रयत्न किया है। पहला उद्देश्य तो यह है कि जब दुख, हानि आदि से बचा नहीं जा सकता, तब प्राणी उनके प्रति तिरस्कार की भावना रखते हुए भी उन्हें अपने ही कुकृत्यों का कुफल मानकर, और दूसरों के प्रति उपालंभ या खिन्नता का भाव न रखकर, भोगने को प्रवृत्त हो। दूसरी बात यह कि दुख, हानि आदि का एक बार कष्टदायी अनुभव करने के पश्चात् भविष्य में अपने कृत्यों को सुधारने के लिए भी वह प्रयत्नशील रहे जिससे सामाजिक जीवन अधिक सुख और शांतिमय हो सके; अस्तु। अष्टछापी कवियों की भी इस कर्मवाद के प्रति पूरी आस्था रही है और वे भी यह मानते हैं कि जैसा बोया जायगा, वैसा

ही काटना होगा, बबूल बोकर दाख फल की आशा करना अपनी मूर्खता का ही परिचय देना है।

यदि हानिकारिणी बातों को करने के लिए अपनी परवशता के कारण किसी को विवश होना पड़ता है, अथवा अनायास ही कोई ऐसी विपत्ति व्यक्ति पर पड़ जाती है जिसके कारण उसकी सर्वस्व-हानि होती है, तब भी वह अपने पुण्य कर्मों के क्षीण हो जाने अथवा पापों के उदय होने की ही बात कहता है। कंस के भेजे हुए अक्रूर जब बलराम और कृष्ण को मथुरा लिवा जाने को आते हैं तब विलाप करती हुई यशोदा अपने पूर्व कृत्यों के 'तिरछे' हो जाने अर्थात् पापों के उदय होने की बात कहती हैं।

किसी असाधारण कष्ट के पड़ने पर भारतीय जन-समाज का ध्यान दैव या ईश्वर को दोष देने की ओर न जाकर सदैव अपने पापों की ओर जाता है। सूरदास के वसुदेव-देवकी जब-जब कंस द्वारा अपने सात पुत्रों के मारे जाने और आठवें अर्थात् कृष्ण को चोरी से भगाकर बचाने की बात सोचते हैं, तब-तब उनका ध्यान अपने 'पापों' की ओर ही जाता है। किसी कष्ट या विपत्ति से मुक्ति पाने पर भी भारतीय जन-समाज उसे पूर्व पुण्यों का ही सुफल समझता है। सूरदास के नंद जब वरुणपाश से मुक्त होकर सकुशल घर लौटते हैं तब यशोदा स्पष्ट शब्दों में कहती है कि पूर्व पुण्यों से ही तुम इस प्रकार सकुशल लौट सके हो। कृष्ण के व्रजवास-काल में गोपियों को बहुत सुख मिला और उनकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गयीं। वैसा असाधारण रूप से सुखी जीवन बिताने और श्रीकृष्ण द्वारा अपनाये जाने का कारण परमानंददास की गोपियाँ अपने पूर्व जन्मों के सुकृत्यों को ही मानती हैं। 'कर्मवाद' से संबंधित व्यक्ति की यह धारणा निश्चित हो जाती है कि मुझको अपने भले-बुरे कर्मों का सुफल या कुफल स्वयं ही भोगना होगा; मेरा कोई प्रियजन या आत्मीय इच्छा रखते हुए भी उसमें भाग नहीं बटा सकता। अतएव व्यक्ति को पिछले पापों का कुफल स्वयं भोगने के पश्चात् अपने भावी कर्म सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

३. *पुनर्जन्मवाद*—भारतीय समाज की तीसरी मान्यता है पुनर्जन्म की। चौरासी लाख योनियाँ हमारे यहाँ मानी गयी हैं जिनमें से अनेक में अपने कर्मानुसार भटकने के पश्चात् जीव को सर्वश्रेष्ठ मानव-योनि प्राप्त होती है। अष्टछापी कवियों ने भी कभी तो जल, थल, आकाश की अनेक योनियों में भटकने की बात स्पष्ट रूप से लिखी है और कभी 'केतिक

जनम'-जैसे पदों का प्रयोग करके 'पुनर्जन्मवाद' के प्रति अपनी आस्था का प्रमाण दिया है।

४. *ज्योतिष के प्रति आस्था*—ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक शुभ कार्य अथवा संस्कार आदि के लिए गुणी गणक या ज्योतिषी को बुलाकर शुभ मुहूर्त आदि जानने का प्रयत्न भारतीय समाज में सदा से होता आया है। सूरदास ने कृष्ण के 'अन्नप्राशन' के अवसर पर 'सुदिन' सोधे जाने और परमानंददास ने कनछेदन के अवसर पर 'दोष-रहित मुहूर्त' निकलवाये जाने का जो उल्लेख किया है, वह इसी विश्वास का परिचायक है। इस प्रकार के अन्य उदाहरण 'संस्कार'-वर्णन के अंतर्गत पीछे दिये जा चुके हैं।

५. *स्वस्तिवाचन के प्रति विश्वास*—प्रायः प्रत्येक शुभ कार्य का आरंभ 'स्वस्ति-वाचन' आदि के पश्चात् करना भारतीय समाज में मान्य रहा है। 'सारावली' में शिशु कृष्ण के प्रथम बार करवट लेने पर माता रोहिणी विप्र को बुलाकर 'स्वस्ति-वाचन' कराती है और नंददास के नंद जी 'नामकरण' संस्कार के पूर्व 'स्वस्ति-वाचन' कर लेने का अनुरोध करते हैं।

६. *भूत-प्रेतादि के प्रति विश्वास*—भूत-प्रेत के अस्तित्व पर भी भारतीय समाज के कुछ भाग का विश्वास है, यद्यपि शिक्षित वर्ग वैसा मानने को प्रस्तुत नहीं है। जो हो, मानव की मृत्यु के पश्चात् यदि उसका अंत्येष्टि संस्कार न हो तो, सामान्य जन-विश्वास के अनुसार, वह 'भूत' बन जाता है। सूरदास ने एक पद में इस विश्वास की ओर संकेत भी किया है। दूध-जैसी सफेद चीज खाकर आने पर भूतादि की छाया जल्दी पड़ जाने का विश्वास भी स्त्रियाँ करती हैं। इसी से शव-यात्रा से लौट कर आज भी दूध-दही-जैसी सफेद चीजें खाने से मना किया जाता है। नंददास की रूप-मंजरी को मूर्छित देख कर सखियाँ उस पर 'किसी' की छाया पड़ जाने की बात कहती हैं, क्योंकि वह घर से 'दूध-भात' खाकर आयी थी। इसी प्रसंग में 'भूतों' के 'भूतों' का भी विनाश करनेवाले श्रीकृष्ण की चर्चा से भी 'भूतों' के अस्तित्व में जन-विश्वास का परिचय मिलता है। रूपमंजरी की मूर्छा काफी समय तक रहने पर सबको 'भूतावेश' का विश्वास हो जाता है।

आ. *उपचार-संबंधी विश्वास*—इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाली बातों की सत्यता की परख तो की या करायी नहीं जा सकती, परंतु उनके प्रति समाज के बड़े भाग का विश्वास अवश्य रहता है। आधुनिक शिक्षित वर्ग इस वर्ग की अधिकांश बातों को 'अंध-विश्वास' ही मानता है, परंतु कवि-वर्ग आज भी समाज के यथार्थ रूप का परिचय देने के लिए उनकी चर्चा

अपने काव्य में करना आवश्यक समझता है। ऐसी बातें मुख्यतः नौ वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं—१. नजर लगना, २. डिठौना, ३. राई-नोन उतारना, ४. तिनका तोड़ना, ५. निछावर, ६. पानी उतारकर पीना, ७. सयानों से हाथ दिलाना, ८. टोना-टोटका और ९. तंत्र-मंत्र पर विश्वास।

१. *नजर लगना*—यों तो भारतीय समाज के विश्वास के अनुसार किसी भी अवस्था के व्यक्ति को दूसरों की 'नजर' लग सकती है, तथापि बच्चों को 'नजर' लगने का डर बहुत जल्दी रहता है। पिता का ध्यान इस ओर कम जाता है; परंतु माता सदैव इस विषय में सतर्क रहती है; क्योंकि उसका यह दृढ़ विश्वास रहता है कि स्वस्थ और सुन्दर बालकों को यदि कोई आँख भर देख ही ले तो उसे 'नजर' लग जाती है। हँसता-खेलता बालक यदि सहसा अनमना या 'निढाल' हो जाय, हँसना-खेलना और खाना-पीना छोड़ दे, या बार-बार रोने लगे, तब 'माता' को यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि उसको किसी की 'दीठि' लग गयी है। अभारतीय समाज की दृष्टि में इस प्रकार के विश्वास भले ही हास्यास्पद हों, परंतु भारतीय स्त्री-वर्ग की आज भी इनके प्रति पूर्ण आस्था है। इस बीसवीं शताब्दी में लिखे गये 'यशोधरा' काव्य में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'नजर' लगने का लक्षण 'खाना-पीना छूटना' बताया है।

सूरदास का बालक कृष्ण जब शाम से ही 'बिरुझाने' लगता है और सोते-सोते बार-बार चौंक पड़ता है, तब उसके खेलते समय किसी के 'दीठि' लगा देने की आशंका माता यशोदा को तत्काल हो जाती है। इसी प्रकार परमानंददास के बालक कृष्ण को 'निढाल' या 'अनमना' होते देखते ही माता यशोदा कहने लगती है कि किसी 'निरासी' ने दृष्टि लगायी है। एक दूसरे पद में बालक को 'दृष्टि' लगानेवाली नारी को 'निसिचरि' कहकर माता यशोदा अपने मन की खीझ निकालती है। राधा की माता कीर्ति जब पुत्री को अनमनी देखती है तब उसे भी 'टटकी नजरि' लग जाने की आशंका होती है।

नंददास की रूपमंजरी को भी कभी 'नीकी' और कभी 'मुरझाई' देखकर उसकी सखी कहती है कि अपने अनुपम रूप के कारण 'छिन छिन में इसे दृष्टि' लग जाती है। अच्छे खाते-पीते घराने के बालकों को हर आते-जाते के सामने खाने से इसी कारण रोका जाता है कि यदि दूसरा व्यक्ति उसकी ओर ललचायी दृष्टि से देख कर टोंक देगा या प्रसन्न होकर उसके रूप, गुण, क्रीड़ा आदि की सराहना ही कर देगा, तब भी उसको

'दीठि' लगने का भय बना रहता है। इसी आशंका से माता यशोदा कुँवर कन्हाई को माखन देते हुए कहती है कि मेरे आगे ही खा लो, बाहर जाकर कभी कुछ न खाना, नहीं तो किसी की 'डीठि' लग जायगी। नंददास के अनुसार, अनुपम सुन्दरी किशोरी रूपमंजरी की सखी तो नजर लग जाने के भय से उसके न तो सुगंध या फुलेल लगाती है और न उसे दर्पण ही देखने देती है कि कहीं उसे उसकी ही 'नजर' न लग जाय।

२. *डिठौना*—बच्चों को 'नजर लगने' से बचाने के लिए उनके माथे पर काजल का 'डिठौना' या 'दिठौना' लगा दिया जाता है। इसी कारण सूरदास की यशोदा श्रीकृष्ण के नहलाने-धुलाने और वस्त्राभूषण पहनाने के बाद 'मसिबिंदा' या 'डिठौना' लगाना कभी नहीं भूलती। गोस्वामी तुलसीदास ने भी, 'गीतावली' में, नहाये-धोये और वस्त्राभूषण पहने राम के माथे पर लगे 'मसि-बिंदु' का वर्णन किया है। आधुनिक युग के गुप्त जी की यशोधरा भी राहुल के 'डिठौना' लगाती है।

३. *राई-नोन उतारना*—बच्चों पर से राई-नोन उतार कर आग में डाल देने का चलन आज भी कुछ घरों में है। इस विश्वास के मूल में दो उद्देश्य हैं। पहला तो यह कि ऐसा करने से बच्चों के 'नजर' लगती ही नहीं और दूसरा यह कि यदि किसी की 'नजर' उनको लग जाय तो 'राई-नोन' उतारने से 'नजर' भी 'उतर' जाती है। बालक कृष्ण पर से जब यशोदा 'राई-नोन उतारती' है तब उनके सामने भी उक्त दोनों उद्देश्य रहते हैं। कभी तो वे अच्छे वस्त्राभूषण पहनाते ही 'नजर' से बचाने के लिए राई-नोन उतारती हैं और कभी 'नजर' लग जाने पर उसके दोष से बालक को बचाने के लिए वैसा करती हैं। 'सारावली' में यमलार्जुन वृक्षों के गिरने पर उनके नीचे से बचकर निकल आनेवाले कृष्ण पर से 'राई-लोन' उतारे जाने की बात कही गयी है।

४. *तिनका तोड़ना*—किसी के अद्भुत रूप, गुण, कार्य अथवा असाधारण सुख को देखकर 'तृन' तोड़ देने से यह विश्वास किया जाता है कि वह सब अनिष्टों से बचा रहेगा। बालक कृष्ण को औटा हुआ दूध कनक-कटोरे में पीता देखकर माता रोहिणी और यशोदा का 'तृन' तोड़ना 'सारावली' में कहा गया है। राधा-कृष्ण की अद्भुत कुंज-लीला कुंज-रंध्रों से अवलोकती हुई सखियाँ भी 'सारावली' में 'तृन' तोड़-तोड़कर उन पर अपना तन-मन वारती हैं। श्रीकृष्ण के त्रिभंगी रूप की अद्भुत छवि देखकर भी 'तृन' तोड़े जाने की बात सूरदास ने लिखी है।

५. *निछावर करना*—बच्चों के ऊपर से रुपया-पैसा, वस्त्राभूषण आदि निछावर करके या 'वार' कर ब्राह्मणों या याचकों को दान कर देने के मूल में भी यही विश्वास है कि इससे उनके सब रोग-धोग या अनिष्ट आदि दूर हो जाते हैं। किसी के अद्भुत कार्य करने पर भी ऐसा करने का चलन भारतीय समाज में रहा है। श्रीकृष्ण की सुन्दर छवि देखकर माता सर्वस्व निछावर करने के पश्चात् सोचती है कि इसकी सुन्दर 'दँतुलियों' पर अब क्या निछावर करूँ। किसी भयानक विपत्ति से बालक के बच जाने पर भी धन, आभूषण आदि निछावर किया जाता है। तृणावर्त के आघात से श्रीकृष्ण के बच जाने पर गोपियाँ उन पर से वार-वारकर 'आभूषण' देती हैं।

६. *पानी उतारकर पीना*—माता की ममता सदैव यही मनाया करती है कि बालक के रोग-धोग मुझे भले ही लग जायँ, पर मेरा पुत्र सुखी रहे। दैवी विपत्तियों से बालक के बच जाने पर भी उस पर से 'पानी उतारकर' पिया जाता है। तृणावर्त के आघात से शिशु कृष्ण के बच जाने पर व्रज की युवतियाँ उन पर से पानी 'उतार' कर पीती हैं। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर भी पुत्र के ऊपर से 'पानी उतार कर' माता पी लेती है जिसके मूल में यही विश्वास है कि उसने बच्चे का सारा रोग-धोग अपने ऊपर ले लिया है और अब वह सुखी रहेगा। अद्भुत रूप-लावण्यवती रुक्मिणी से श्रीकृष्ण का विवाह होने पर, दोनों की मनोहर जोड़ी देखकर, माता देवकी उन पर से बार-बार पानी वारकर पीती है जिससे दोनों सदैव सुखी रहें।

७. *सयानों से हाथ दिलाना*—बच्चे को अनमना देखकर 'सयाने' या 'कुलगुरु' आदि से 'हाथ दिलाने' पर रोग-धोग से उसकी मुक्ति के प्रति भी भारतीय स्त्रियों का विश्वास रहा है। गोस्वामी तुलसीदास की कौशल्या बालक राम को 'भोर से ही अनरसे' देखकर कुलगुरु को बुलाकर 'हाथ दिलाती' हैं। सूरदास की यशोदा भी कृष्ण को 'अनमना' देखकर 'घर-घर हाथ दिवाते' डोलती हैं। बालक जब कोई अनहोनी बात करता है तब माता को उस पर किसी अपदेवता की छाया पड़ जाने की आशंका होती है और वह सयानों से 'हाथ दिलाने' को प्रवृत्त होती है। यशोदा जब पुत्र के मुख में तीनों लोक देखती हैं तब वे भयभीत होकर पुनः 'घर-घर हाथ दिलाती' घूमती हैं।

८ *झाड़-फूँक और टोना-टोटका*—भारतीय स्त्रियों का 'झाड़-फूँक और टोने-टोटके' में भी विश्वास रहा है। तुलसीदास की कौशल्या जिस

प्रकार राम को 'अनरसे' देखकर झाड़-फूँक कराती हैं, उसी प्रकार परमानंद-दास की यशोदा बालक को नजर लग जाने की आशंका से डरकर स्वयं अंचल से झाड़ती हैं। झाड़-फूँक द्वारा सर्प का विष उतारने की बात भी 'सूरसागर' में कही गयी है। सूरदास के एक अन्य पद में 'टोना-टामनि' करने की चर्चा है। अनिष्टाशंका से पुत्र के गले में 'बघनियाँ' आदि बाँधना भी एक प्रकार का 'टोना' ही है। इसी प्रकार बालक कृष्ण जब सकटासुर का वध करता है, तब भयभीत व्रजवासी, 'सारावली' के अनुसार, उसके हाथ पर 'बच्छ-पुच्छ' रखकर 'टोने-टोटके' में अपने विश्वास का प्रमाण देते हैं।

८. *जंत्र-मंत्र*—'टोटे-टोटके' की तरह 'जंत्र-मंत्र' के प्रति भी व्रज-वासियों के विश्वास का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। तुलसीदास के वशिष्ठ 'अनरसे' राम का उपचार 'नरसिंह मंत्र' पढ़कर करते हैं। अष्टछापी कवि यद्यपि इस प्रकार के किसी मंत्र का नाम नहीं लेते, यथापि सामान्य रूप से मंत्रोपचार का उल्लेख उनके काव्यों में कई स्थलों पर हुआ है। बालक कृष्ण को सोते-सोते चौंक पड़ते देखकर माता यशोदा स्वयं मंत्र पढ़कर उसके तन-दोष का निवारण करती हैं। इसी प्रकार जब बालक कुछ अनमना हो जाता है तब माता उसे मंत्राभिषिक्त जल पिलाकर स्वस्थ करना चाहती है।

साँप के काटने पर उसका विष मंत्र पढ़कर उतारने का विश्वास तो इस बीसवीं शताब्दी में भी किया जाता है। यह विश्वास राधा की माता कीर्ति को भी है। जब वह 'काले' से पुत्री के डसे जाने की बात सुनती है तब 'गारुड़ी' बुलाकर मंत्रों से उसका उपचार कराती और असफल होने पर श्रीकृष्ण को बुलाने पहुँचती है कि वे मंत्र पढ़कर 'काले' का विष उतारकर उसकी पुत्री की प्राण-रक्षा कर दें। नंददास की 'श्याम-सगाई' में भी 'नाग' द्वारा राधा के डसे जाने पर माता जल्दी उपाय करने की बात कहकर पछाड़ खाकर गिरती है, तब भी मनमोहन गारुड़ी को बुलाने की बात कही जाती है। इसी प्रकार नंददास की रूपमंजरी को मूर्छित देखकर जब उस पर सबको 'भूतावेश' का निश्चय हो जाता है, तब भी मंत्र पढ़नेवालों को बुलाने का प्रस्ताव किया जाता है जिससे स्पष्ट है कि वैसी बातें भी मंत्रों द्वारा दूर किये जाने पर भारतीय समाज का विश्वास रहा है।

९. *शकुन*—शरीर और प्रकृति के कुछ कार्यों और व्यापारों, यथा शरीर के विविध अंगों का फड़कना, स्वप्न देखना, विशेष पशु-पक्षियों का दिखायी देना या उनकी बोली सुनायी पड़ना आदि, से मनुष्य को आगामी

सुख-दुख की पूर्व सूचना मिल जाता है। साहित्य में ऐसी बातों का वर्णन भावी घटनाओं की पूर्व सूचना देने के लिए होता है जिससे सामान्यतया पाठक उनके संबंध में उत्सुक हो जाता है। अष्टछाप-काव्य में भी भावी सुख-दुख-सूचक व्यापारों का वर्णन इसी उद्देश्य से हुआ है। जो कार्य और व्यापार मंगल के सूचक होते हैं उनको 'शकुन' कहते हैं। भारतीय समाज की 'शकुन' के प्रति पूर्ण आस्था रही है और उनसे कार्य की सिद्धि अथवा किसी शुभ सूचना के मिलने की उसको पूर्ण आशा हो जाती है। इसी जन-विश्वास के आधार पर अष्टछापी कवियों ने शकुन के विविध रूपों का उल्लेख अपने काव्य में किया है। उनके द्वारा वर्णित शकुन-सूचक कार्यों और व्यापारों को, स्थूल रूप से, चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—१. मन:स्थिति, २. प्राकृतिक व्यापार, ३. शारीरिक व्यापार और ४. जीव-जंतुओं की शकुन-सूचक क्रियाएँ।

१. *शकुन-सूचक मन:स्थिति*—कभी-कभी अकारण ही स्त्री या पुरुष का चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, उसे अतीव प्रसन्नता का अनुभव होता है और वह जैसे उल्लास और उत्साह से भर जाता है। यह अकारण हर्ष या उल्लास भावी शुभ कार्य अथवा आगामी सिद्धि का सूचक माना जाने से 'शकुन' के अंतर्गत आता है। श्रीकृष्ण के मथुरा-प्रवास के पश्चात् गोपियाँ जब उनके लिए दुखी होकर उनके लौटने की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से कर रही हैं तभी एक दिन सहसा उनके मन में दुख और सुख का साथ-साथ उदय होता है जो आगे चल कर कृष्ण के न आने के दुख और उनका संदेश मिलने के सुख का सूचक है। इसी प्रकार सूर्यग्रहण के अवसर पर जब श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र पहुँचकर नंद, यशोदा तथा अन्य व्रजवासियों को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं तब भी गोपियों का मन अनायास 'गहगहा' हो जाता है और उन्हें माधव से मिलने की पूर्व सूचना मिल जाती है। अष्टछाप-काव्य में इस प्रकार की शकुन-सूचक मन:स्थिति का उल्लेख बहुत कम स्थलों पर हुआ है।

२. *शकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार*—'रामायणकालीन संस्कृति' के अनुसार 'दिशाओं का प्रसन्न हो जाना, सूर्य का निर्मल जान पड़ना, शीतल, मंद और सुगंधित पवन का चलना, जल का मधुर और स्वच्छ होना, वनों का फलों और वृक्षों का पुष्पों से युक्त होना' आदि बातें शकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापारों के अंतर्गत गिनायी गयी हैं। अष्टछाप-काव्य में उक्त प्राकृतिक व्यापारों में वन में वसंत छा जाने और वृक्षों में नये पात आ जाने

की बात श्रीकृष्ण के कुरुक्षेत्र पहुँच कर ब्रजवासियों को बुलाने के लिए दूत भेजने के प्रसंग में लिखी गयी है। इसी संबंध में बिना वायु के 'अंचल और ध्वज' डोलने लगना भी शकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार ही है जिसका उल्लेख सूरदास के काव्य में हुआ है।

३. *शकुन-सूचक शारीरिक व्यापार*—पुरुषों के कुछ दाहिने अंगों और स्त्रियों के वामांगों का फड़कना शकुन-सूचक माना जाता है। इन अंगों में नयन और भुजा या बाहु मुख्य हैं। तुलसीदास ने भरत के 'दच्छिन नयन-भुज' और सीता के वाम 'बिलोचन-बाहु' फड़कने को शकुन-सूचक माना है। अष्टछाप-काव्य में भी इस प्रकार के शकुन-सूचक शारीरिक व्यापारों का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। स्त्रियों के बायें नयन और भुज के साथ-साथ उनके 'उर और अधर' फड़कने को भी हमारे कवियों ने 'शकुन' ही माना है। 'श्रीमद्भागवत' में स्त्रियों की बायीं जाँघ का फड़कना भी शुभ कहा गया है। अशोकवाटिका में बंदिनी, सूरदास की सीता 'नैन और उर' फड़कने को 'सगुन' मानती है। इसी प्रकार उधर कुरुक्षेत्र में पहुँचकर श्रीकृष्ण ब्रजवासियों को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं और इधर गोपियों के 'कुच, भुज, नैन और अधर' फड़कने लगते हैं। इन शकुनों का शुभ फल बताती हुई सखी स्पष्ट शब्दों में राधा से कहती है कि आज श्याम से 'मिलावा' अवश्य होगा, इसलिए चिंता छोड़ कर प्रसन्न हो जाओ; विधाता ने हमारा सोया हुआ भाग्य जगा दिया है।

परमानंददास की गोपी भी भुजाओं के फड़कने और 'कंचुकि बंद के तड़कने' से प्रियतम अथवा उसके संदेशवाहक के आने के प्रति आश्वस्त हो जाती है। छीतस्वामी की गोपी तो 'सगुन' के संबंध में और भी भाग्यशालिनी है। जिस दिन श्रीकृष्ण से उसका मिलन होता है, उस प्रातःकाल को उसकी नींद शुभांगों के फड़कने के साथ खुलती है और केसर घोलते समय तो उसकी भुजा 'फरफर फरकती' है। इसी प्रकार नंददास की रुक्मिणी के शुभ अंग भी उसी समय से फड़क कर उसके हृदय में मनोरथ-पूर्ति की आशा जगा देते हैं जिस समय श्रीकृष्ण द्वारका से, उसका पत्र पाकर, प्रस्थान करते हैं। 'श्रीमद्भागवत' में रुक्मिणी को बायीं जाँघ, बायीं भुजा और बायें नेत्र के फड़कने से कृष्ण के शुभागमन की पूर्व सूचना मिल जाती है।

प्रातःकाल उठते ही अथवा किसी काम के लिए चलते समय किसी 'अच्छे' का मुख दिखायी दे जाना भी 'शकुन-सूचक' समझा जाता है यदि

उस कार्य में सिद्धि मिल जाय अथवा विशेष लाभ हो जाय। इस सामान्य विश्वास के उदाहरण परमानंददास के काव्य में दो-तीन पदों में मिलते हैं। कोई ग्वालिनी किसी दिन कृष्ण का मुख देखकर दही बेचने जाती है; उसका सारा दही जाते ही बिक जाता है और दूना लाभ यह होता है कि घर में उसकी गाय काली बछिया ब्याती है। अतएव वह ग्वालिनी दूसरे दिन भी कृष्ण का मुख देखने आती है। एक दूसरे पद में कृष्ण का दर्शन सबेरे ही पा जानेवाली गोपी को बहुत लाभ होने की आशा होती है। तीसरी गोपी तो कृष्ण से ही स्पष्ट कह देती है कि प्रातःकाल ही तुम्हारे शुभ दर्शन करने इसीलिए आयी हूँ कि मुझे खूब लाभ हो और मार्ग में भी सुख ही मिले।

४. *जीव-जंतुओं की शकुन-सूचक क्रियाएँ*—इस वर्ग में पशु, पक्षी तथा अन्य कीट-पतंगों की शकुन-सूचक क्रियाएँ आती हैं। शकुन-सूचक पशुओं में मुख्य हैं—गाय, मृग और 'लोवा' या लोमड़ी। 'रामचरित-मानस' में बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय के दर्शन के साथ-साथ 'लोवा' या लोमड़ी का दिखायी देना और मृगों की टोली का घूम कर दाहिनी ओर को आ जाना शुभ बताया गया है। अष्टछापी कवियों ने उक्त पशुओं में से केवल मृगमाला के दाहिनी ओर दिखायी देने की बात 'शकुन' के अंतर्गत लिखी है। कंस की आज्ञा से जब अक्रूर, बलराम और कृष्ण को लेने गोकुल जाने लगते हैं, तब दोनों बालकों की रक्षा के लिए वे बहुत चिंतित हो जाते हैं। इसी समय उन्हें दाहिनी ओर मृगों का दर्शन होता है जिससे वे दोनों बालकों की ओर से निश्चिंत होकर इन शकुनों के फलस्वरूप शीघ्र ही गोपाल को भेंटने का सुअवसर पाने के सौभाग्य की बात सोचते सोचते अत्यंत पुलकित हो जाते हैं।

शकुन-सूचक पक्षियों में 'रामचरित-मानस' में बायीं ओर चारा लेते चाषु या नीलकंठ, दाहिनी ओर खेत में कौए, बायीं ओर वृक्ष पर श्यामा आदि के दर्शनों की चर्चा की गयी है। अष्टछाप-काव्य में उक्त पक्षियों में से 'काग' की चर्चा अनेक स्थलों पर विस्तार से मिलती है। स्त्री-वर्ग के विश्वास के अनुसार घर की छत पर 'कउए' का आकर बैठना और बोलना किसी आत्मीय जन के आगमन का सूचक होता है। राम-लक्ष्मण के आगमन की बात सोचती हुई कौशल्या राजभवन पर बैठे कौए को देख 'सगुन' जानना चाहती है। 'दोनों मुझे कब मिलेंगे' की बात कौशल्या के मुख से सुनकर जब कौआ हरी डार पर उड़कर बैठ जाता है, तब वह

शीघ्र ही पुत्र-मिलन के संबंध में आश्वस्त हो जाती है और पुत्रों का दर्शन होने पर कौए को दूध-भात खिलाने तथा 'चोंच और पाँखि' सोने के पानी से मढ़ाने का वचन देती है। इसी प्रकार 'बायस' या कौए के द्वारा गोपियों को भी अनेक अवसरों पर शकुनों की सूचना मिलती है जिनके सम्बन्ध में 'प्राकृतिक जीवन' के अंतर्गत विस्तार से लिखा जा चुका है।

कीट-पतंगों में 'भौंरे' का कान के पास आकर बोलना अष्टछाप-काव्य में 'शकुन'-रूप में वर्णित है।

ई. अशकुन- भावी अनिष्ट, विपत्ति अथवा असफलता आदि की सूचना देनेवाले कार्य और व्यापार 'अशकुन' माने जाते हैं। जीवन के दैनिक व्यवहार में सभी व्यक्ति अनेक रूपों में अशकुनों की चर्चा किया करते हैं। आनेवाले कष्ट या अनिष्ट की हानि या पीड़ा यद्यपि अशकुनों के द्वारा उनकी पूर्व सूचना से किसी प्रकार कम नहीं हो जाती, तथापि इतना निश्चित है कि बार-बार अशकुनों की चर्चा से दुख या कष्ट का सामना करने को प्राणी तैयार अवश्य हो जाता है; और वैसी स्थिति में अनिष्ट की बात सर्वथा असंभावित नहीं जान पड़ती। काव्य में इनकी चर्चा से पाठक की सहज उत्सुकता बढ़ती है और पात्रों की गति-विधि को वह बहुत रुचि से लक्ष्य करता है; अस्तु। 'शकुन' के समान ही अशकुनों को भी चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. मनःस्थिति, २. प्राकृतिक-व्यापार, ३. शारीरिक व्यापार और ४. जीव-जंतुओं की अशकुन-सूचक क्रियाएँ।

१. अशकुन-सूचक मनःस्थिति—प्रफुल्लित चित्त का सहसा उदास हो जाना, मन में उत्साह की कमी होना, व्यक्ति का अकस्मात खिन्न हो जाना, किसी कार्य में ध्यान न लगना आदि बातें 'अशकुन-सूचक मनःस्थिति' के अंतर्गत आती हैं। अष्टछाप-काव्य में स्वतंत्र रूप से अशकुन सूचक मनःस्थिति का वर्णन नहीं मिलता; अन्य अशकुनों के उल्लेख के साथ ही उसकी भी चर्चा की गयी है।

२ अशकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार—प्रकृति के सामान्य व्यापारों का किसी प्रकार के उत्पातों में परिवर्तित हो जाना साधारणतया अशकुन-सूचक माना जाता है। उदाहरण के लिए जब अकारण ही भूमि काँपने लगे, पर्वत-शिखर थर्राने लगें, वृक्ष उखड़कर गिर पड़ें तब मानव को स्वभावतया किसी अनिष्ट की आशंका होने लगती है। अष्टछाप-काव्य में अशकुन-सूचक ऐसे प्राकृतिक व्यापारों की चर्चा भी दो-एक स्थलों पर ही की गयी है। उदाहरण के लिए अर्जुन को द्वारका पहुँचकर यादवों के क्षय होने

का जब समाचार मिलता है, तभी युधिष्ठिर के यहाँ प्राकृतिक उत्पातों, यथा भुव का काँपना, वर्षा का न होना आदि, से उस 'शोक-समाचार' की पूर्व सूचना मिल जाती है। इसी प्रकार नंददास के कृष्ण जब कालीदह में कूद पड़ते हैं तब भी भूमि-कंप आदि प्राकृतिक उत्पात व्रजवासियों को शंकित कर देते हैं। 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित आकाश में उल्कापात, पृथ्वी में भूकम्प आदि अशकुन भी इसी वर्ग में आते हैं।

३ *अशकुन-सूचक शारीरिक व्यापार*—कार्य-विशेष को जाते हुए स्वयं को 'छींक' आ जाना या किसी का बायीं ओर से 'छींक' देना 'अशकुन' का लक्षण माना जाता है। अष्टछाप-काव्य में पूर्वोक्त दोनों व्यापारों से अधिक विस्तार से अशकुन-सूचक इस क्रिया की चर्चा की गयी है। कंस कालीदह के फूल भिजवाने की आज्ञा नंद को दूत के द्वारा भेजता है। नंद जी को इस विपत्ति की सूचना घर के भीतर जाते समय बायीं ओर 'छींक' हो जाने से मिल जाती है। कृष्ण के कालीदह में कूदने और इस प्रकार विपत्ति में फँस जाने की आशंका भी पिता नंद को घर में घुसते ही बायीं ओर होनेवाली छींक से हो जाती है।

सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि अशकुन-सूचक 'छींक' हो जाने पर यदि कुछ समय तक रुक लिया जाय या कुछ खाकर दो-एक घूँट पानी पी लिया जाय अथवा केवल पान ही खा लिया जाय तो 'अशकुन' का दोष मिट जाता है। अष्टछाप-काव्य में ऐसे जन-विश्वास का भी उल्लेख हुआ है। यशोदा जब रसोई के भीतर जाने लगती है तभी एक ग्वालि 'छींक' देती है। 'छींक' सुनते ही यशोदा द्वार पर ही ठिठक जाती और मन में सोचती हैं कि यह तो अच्छी बात नहीं जान पड़ती, फिर आँगन में एक बार आकर और इस प्रकार 'छींक' का दोष मिटाकर रसोई की ओर बढ़ती है। दान-लीला-प्रसंग में जब गोपियाँ कृष्ण के द्वारा घेर ली जाती हैं तब कहती हैं कि घर से हम 'छींकते' तो चली नहीं थीं; फिर यह 'विपत्ति' कहाँ से आ गयी ? उनका यह वाक्य भी भारतीय समाज में 'छींक' का अशकुन-सूचक माना जाना ही सूचित करता है।

अशकुन-सूचक अन्य शारीरिक व्यापारों में पुरुषों के बायें नयन या बाहु का और स्त्रियों के दाहिने नेत्र, बाहु, अधर, 'उर' का फड़कना आदि आता है। अष्टछाप-काव्य में इन व्यापारों का स्वतंत्र वर्णन बहुत कम हुआ है। केवल नंददास ने दो-तीन स्थलों पर अशुभसूचक 'गात' के फड़कने का उल्लेख किया है।

असंभावित हानि होने या कष्ट मिलने पर प्रातःकाल किसी-किसी का मुँह देखना भी अशकुन-सूचक ही माना जाता है। दान-लीला-प्रसंग में श्रीकृष्ण द्वारा घेर लिये जाने की विपत्ति जब गोपियों के सामने आती है तब वे कहती हैं कि पता नहीं किसका मुँह आज सबेरे देखा था जो यह विपत्ति सामने आयी। उनके इस कथन से भारतीय समाज का यह विश्वास पुष्ट होता है कि प्रातःकाल किसी-किसी का 'मुँह देखना' भी कभी-कभी भावी कष्ट या विपत्ति का कारण हो जाता है।

४ *जीव-जंतुओं की अशकुन-सूचक क्रियाएँ*—पशुओं में बैल, घोड़े और हाथी का रोना, दिन में स्यार का बोलना, दाहिनी ओर गदहे का रेंकना, कुत्ते का द्वार पर कान फटकना, बिल्ली का रास्ता काट देना आदि बातें अशकुन-सूचक मानी गयी हैं। अष्टछापी कवियों ने कृष्ण के स्वर्गवास की सूचना युधिष्ठिर को अशकुन-सूचक अन्य बातों के साथ-साथ बैल, घोड़े और हाथी के रोने तथा दिन में स्यार के बोलने से दिलायी है। कालीदह में कृष्ण के कूद पड़ने पर यशोदा को उसकी सूचना बायीं ओर 'खर' के बोलने से और नंद को द्वार पर कुत्ते के कान फटकने से मिलती है। इनके अतिरिक्त बिल्ली भी यशोदा का रास्ता बार-बार काटकर भावी अनिष्ट की सूचना देती है।

पक्षियों में कौए और गररी की कुछ क्रियाओं को अष्टछापी कवियों ने अशकुन-सूचक माना है। श्रीकृष्ण का द्वारका में स्वर्गवास होने की सूचना अन्य अशकुनों के साथ रात में कौए के बोलने पर मिलती है। 'श्रीमद्‌भागवत' में भी रात में कौए का बोलना अशुभ बताया गया है। बायीं ओर कौए का बोलना अथवा माथे पर से होकर उसका उड़ जाना यशोदा को किसी अनिष्ट की सूचना दे देता है और पाठक जानता है कि वह अनिष्ट है कृष्ण का कालीदह में कूद पड़ना। नंद जी को इसकी सूचना पक्षियों में 'गररी' को लड़ते देखकर मिलती है।

उ. *अन्य विश्वास*—इस वर्ग के अंतर्गत मुख्य रूप से चार बातें आती हैं—१. स्वप्न, २. शपथ, ३. शाप और ४. आशीर्वाद - संबंधी विश्वास।

१. *स्वप्न-संबंधी विश्वास*—मानव-वर्ग सोते समय प्रायः स्वप्न देखता है जिनमें से कुछ सत्य सिद्ध होते हैं और कुछ असत्य; कुछ का संबंध वह विगत या आगामी घटनाओं से जोड़ लेता है और कुछ को निरर्थक समझता है। अष्टछाप-काव्य में भी अनेक स्थलों पर स्वप्नों की

चर्चा की गयी है जिनको स्थूल रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—य. आगामी सुख-सूचक स्वप्न, र. भावी दुख या अनिष्ट-सूचक स्वप्न, ल. भावी गति-विधि निर्देशक स्वप्न और व. अन्य स्वप्न।

य. आगामी सुख-सूचक स्वप्न—कष्ट और संकट में पड़ा हुआ व्यक्ति कभी तो स्वयं ऐसे स्वप्न देखता है और कभी उसके शुभचिंतक को वे दिखायी देते हैं जिनसे संकट या विपत्ति से शीघ्र ही मुक्ति मिलने की आशा हो जाती है। ऐसे स्वप्न आगामी सुख-सूचक समझे जाते हैं। अशोकवाटिका में बंदिनी सीता जब राम के विरह में अत्यंत दुखित होती है और अपनी मुक्ति के संबंध में निराश-सी हो जाती है, तभी उसका हित चाहनेवाली राक्षसी त्रिजटा रात में एक स्वप्न देखने की बात कहती है। स्वप्न में उसने देखा कि सीता राघव के पास कुसुम-विमान पर बैठी है। राम के शीश पर श्वेत छत्र सूर्य की किरणों से दमक रहा है। दानव-कुल वाणों के भय से भाग चुका है। रावण का शीश पृथ्वी पर पड़ा है और मंदोदरी उसके निकट विलाप कर रही है। कुंभकरण कीचड़ से लथपथ पड़ा है और लंका विभीषण को मिल गयी है। राम का कपि-दल लंका में प्रवेश करता है और चारों ओर उनकी दुहाई फिर जाती है।

भारतीय जन-समाज का सामान्य विश्वास यह है कि जो स्वप्न प्रात:काल दिखायी देता है, वह अवश्य सत्य होता है। त्रिजटा भी उक्त सुस्वप्न प्रातःकाल ही देखती है। इसी से बड़े विश्वास के साथ वह कहती है कि इस स्वप्न का भाव कभी 'विफल' नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण जब कंस को मारकर माता-पिता को बंदीगृह से छुड़ाने के लिए पहुँचने को होते हैं, तभी वसुदेव, देवकी से रात के स्वप्न में नृपति कंस द्वारा अक्रूर को भेज कर बलराम तथा कृष्ण को बुलाया जाना और उनके आने पर कंस का मारा जाना देखना बताते हैं एवं, स्वप्न के अनुसार, आज-कल में उनके आने की बात कहते हैं। उनका यह स्वप्न संकटों से मुक्ति मिलने की शुभ सूचना देता है। अष्टछाप-काव्य में इस प्रकार के आगामी सुखसूचक स्वप्न अधिक नहीं दिखाये गये हैं।

र. भावी अनिष्ट-सूचक स्वप्न—अष्टछापी कवियों ने भावी अनिष्ट या दुख-सूचक स्वप्नों की चर्चा अपेक्षाकृत अधिक की है। कालीदह में कूदने की घटना के पूर्व की रात्रि को श्रीकृष्ण सहसा सोते से चौंक उठते हैं। माता दीपक जलाकर या उकसाकर उनके 'झझक' उठने का कारण जानना चाहती है तब कृष्ण अपना देखा हुआ स्वप्न बताते हैं—मैंने स्वप्न में देखा

कि मुझे किसी ने जमुनादह में गिरा दिया है। पुत्र को इस प्रकार भयभीत देखकर माता उसे धीरज देती है और कहती है कि दिन में जमुना में नहाने की याद बनी रहने से ही तुझे ऐसा स्वप्न दिखायी दिया है; इसलिए डरने की कोई बात नहीं है। इसके पश्चात् बालक तो सो जाता है, परंतु नंद-यशोदा उस दुःस्वप्न की ही चर्चा करते रहते हैं। दूसरे दिन जब श्रीकृष्ण के कालीदह में कूद पड़ने की सूचना माता यशोदा को मिलती है तब वे रात्रि के दुःस्वप्न के सत्य होने की बात सोच-सोचकर पछताती हैं।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित अनिष्ट-सूचक स्वप्न का दूसरा उदाहरण कृष्ण के मथुरागमन प्रसंग में मिलता है। बलराम और कृष्ण को बुलाने के लिए इधर कंस अक्रूर को भेजता है और उधर नंद को स्वप्न दिखायी देता है कि बलराम तथा कृष्ण कहीं खो गये हैं या उन्हें कोई ले गया है। स्वप्न में उन्होंने ग्वाल-बालों को यह कहकर रोते भी सुना कि कृष्ण अभी तो हमारे साथ खेल रहे थे; अब कहीं दिखायी नहीं देते। कोई दूत उन्हें अपने साथ लिवाने आया; उसने उन पर न जाने कौन सी 'ठगौरी' की कि हम खड़े देखते ही रहे और बलराम तथा कृष्ण हमारे प्रति निष्ठुरता दिखा कर दूत के ही साथ हो गये। नंद, यशोदा, व्रज के समस्त गोपों और गोपियों तथा कृष्ण के सखा ग्वाल-बालों को भी उन्होंने रोते सुना। स्वप्न में इतना देखते ही धकधकाते हृदय से, और नेत्रों से आँसू बहाते हुए नंद जाग पड़े एवं पास सोये कृष्ण के शरीर पर हाथ फेरने लगे। यशोदा व्याकुल होकर उनकी इस दशा का कारण पूछने लगी, लेकिन उन्होंने स्वप्न में देखी हुई बात उसे बताना उचित नहीं समझा। परंतु अगले दिन कंस के दूत के आने की बात सुनते ही रात्रि के 'दुःस्वप्न' का स्मरण करके वे अत्यंत त्रस्त हो जाते हैं।

उधर कंस को भी इसी अवसर पर दुःस्वप्नों से आगामी अनिष्ट की सूचना मिल जाती है। बलराम और कृष्ण को मथुरा बुलाने का निश्चय करके जब कंस सोता है तब उसको स्वप्न में भी वे दोनों बालक काल के समान सामने खड़े दिखायी देते हैं जिससे वह शंकित होकर जाग पड़ता है। उसके साथ ही सब रानियाँ भी जागती और व्याकुल होकर उसके अकुलाने का कारण पूछने लगती हैं। कंस उन रानियों से तो कुछ नहीं कहता, लेकिन उसका जी बराबर धड़कता रहता है। पति को निरुत्तर देख कर रानियाँ बार-बार उसकी चिंता का कारण जानना चाहती हैं, लेकिन वह कुछ कह नहीं पाता और प्रतिहार, पौरिया आदि को सावधान करके पुनः

लेटता है; परंतु बलराम और कृष्ण के भय से उसकी पलक नहीं लगती। इस दु:स्वप्न का कंस पर इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि रात्रि का शेष भाग उसके लिए युग से भी 'भारी' हो जाता है। उसका सारा याम जागते ही बीतता है। उसे एक क्षण भर भी शांति नहीं मिलती; कभी उठता है, कभी बैठता है, कभी लेटता है और कभी अजिर में जा खड़ा होता है। इस प्रकार रात्रि का शेष समय उससे काटे नहीं कटता और वह बार-बार 'जोतिक' से 'घरी' पुछवाता है। 'जोतिक' के यहाँ गया हुआ एक आदमी लौट नहीं पाता कि उतावली में कंस दूसरा और भेज देता है।

परमानंददास ने इसी प्रसंग में श्रीकृष्ण के भी एक स्वप्न की चर्चा की है। जिस दिन व्रज में अक्रूर आने को हैं उस दिन कृष्ण अपने सखाओं के साथ-साथ भाई बलराम को भी सुनाकर कहते हैं—मैंने स्वप्न में देखा है कि हम सब मथुरा गये हैं। वहाँ मैंने कंस को मारकर रंगभूमि में डाल दिया है। पश्चात्, मैं अपने कुल के लोगों से मिलता हूँ।

ल. *भावी गति-विधि निर्देशक स्वप्न*—कभी-कभी ऐसे स्वप्न भी दिखायी दे जाते हैं जिनमें भावी गति-विधि-संबंधी निर्देश रहता है। सामान्य व्यक्ति चाहे ऐसे स्वप्नों पर विश्वास न करे, परंतु धर्म-भीरु हिन्दू-समाज उनकी सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता; विशेषकर उस समय जब स्वप्न में कोई देवता कार्य-विशेष का संपादन करने का आदेश दे। धर्म-प्राण जनता ऐसे आदेश का उल्लंघन करने का कभी साहस नहीं करती; क्योंकि वैसा करने पर उसे अनिष्ट होने की आशंका होती है। इंद्र की पूजा के अवसर पर सात वर्षीय कृष्ण जब स्वप्न में एक 'अवतारी पुरुष' के दर्शन होने और गिरि गोवर्द्धन की पूजा का उसके द्वारा आदेश मिलने की बात कहते हैं तब पहले तो कोई सुखी होकर उनकी बात मानने को कहता है और कोई इंद्र के भय से डरता है; अंत में सब गोवर्द्धन-पूजा के लिए सहमत हो जाते हैं।

व. *अन्य स्वप्न*—अष्टछाप-काव्य में वर्णित उक्त स्वप्न सामान्यतया ऐसे अवसर पर दिखायी देते हैं जब पात्रों को तत्संबंधी घटनाओं की सूचना नहीं है। इनसे भिन्न वर्ग में उन गोपियों के स्वप्न आते हैं जो विरहिणी होने के कारण प्रतिपल प्रियतम के ध्यान में लीन रहती हैं। प्रथम तीनों वर्गों के स्वप्न अष्टछापी कवियों ने सत्य होते दिखाये हैं; क्योंकि वे अकस्मात् दिखायी दिये हैं; परंतु गोपियों के स्वप्न उस प्रियतम से संबंध रखते हैं जिसका ध्यान वे कभी छोड़ती ही नहीं। अतएव इनके स्वप्नों की

सत्यता-असत्यता के संबंध में अष्टछापी कवि प्रायः मौन रहे हैं। विरह की व्यथा के कारण पहले तो गोपियों को नींद ही नहीं आती कि स्वप्न दिखायी दें, पर यदि कभी जरा देर को उनकी आँख लगती है और उन्हें स्वप्न दिखायी देता है तो बीच ही में उनकी नींद टूट जाती है। कभी-कभी वे स्वप्न में प्रियतम के संयोग-सुख का अनुभव भी करती हैं, परंतु उसी समय आँख खुल जाने से उनकी 'हिलकी' रोके नहीं रुकती। पश्चात्, उनकी आँख फिर लगती नहीं और स्वप्न के संयोग-सुख से भी वे वंचित हो जाती हैं।

२. *शपथ पर विश्वास*—सभी देशों के निवासी यह विश्वास करते हैं कि जो बात 'शपथ' खाकर कही जायगी अथवा जिसके करने के लिए 'शपथ' खिला दी जायगी, सामान्यतया व्यक्ति उसका निर्वाह अवश्य करेगा। 'शपथ' के प्रति विश्वास का यह भाव वातावरण अथवा संस्कार के प्रभाव से बाल्यावस्था से ही अंकुरित हो जाता है। इसका एक बहुत रोचक उदाहरण अष्टछाप-काव्य में मिलता है; बालक कृष्ण माता से गाय चराने जाने की आज्ञा चाहता है; परंतु उसे भय है कि जमुना में मैं कहीं स्नान न करूँ, इस भय से माता मुझे जाने से रोक सकती है। अतएव वह पहले ही कह देता है कि तू मुझसे 'सौंह' या 'शपथ' ले ले, मैं जमुना में स्नान नहीं करूँगा।

'शपथ' या 'सौंह' का दूसरा उदाहरण 'दान-लीला-प्रसंग' में मिलता है। श्रीकृष्ण जब गोपियों को उनसे 'दान' लेने के लिए रोकते हैं और मुँह फेरकर भौंह 'मोरते' हैं तब गोपियाँ उनको नंद की, गोधन की, यशोदा की और बलदाऊ की 'सौंह' दिलाकर पूछती हैं कि 'भौंह सकोरने' का कारण सच-सच बता दो। उनके 'सौंह' दिलाने के मूल में भी यही विश्वास है कि अब कृष्ण झूठ नहीं बोलेंगे। कृष्ण ने हँसकर गोपियों की बात उड़ाते हुए श्रीदामा से कहा—जरा तुम्हीं इन्हें समझाओ कि क्या ऐसी बातों में 'सौंह दिलाना' चाहिए। तब श्रीदामा ने गोपियों से समझाया—हँसी को ऐसी बातों में 'सौंह' नहीं दिलायी जाती। तुम सब भी परस्पर हँसी कर रही हो, लेकिन हम तो तुम्हें 'सौंह' नहीं दिला रहे हैं। वास्तव में 'शपथ' खाना या खिलाना बहुत अच्छी बात नहीं समझी जाती; इसी से गुप्त जी ने उसे 'दुर्बलता का चिह्न' कहा है। श्रीदामा भी 'नान्हे' लोगों को ही 'सौंह' दिलाने के योग्य समझता है, श्रीकृष्ण-जैसे प्रभु को नहीं।

'शपथ' का तीसरा उदाहरण 'परमानंदसागर' में मिलता है। परमानंददास की चंद्रावली के पास 'हरि के उर का गजमोती' देखकर जब

सखी उससे पूछती है कि यह तुझे कहाँ मिला, तब उसका उत्तर है—मुझे यह 'दधि के पलटे' में श्रीकृष्ण से मिला है; यदि तुझे इस पर विश्वास न हो तो 'सपथ' देकर उनसे पूछ ले। चंद्रावली का यह कथन भी सूचित करता है कि 'शपथ खा लेने' या 'खिला दिये जाने' पर कोई झूठ नहीं बोल सकता।

२. *शाप या कोसने में विश्वास*—मानवीय स्वभाव के अनुसार, जिस व्यक्ति से हमें कष्ट मिलता है, उसके प्रति शालीनतावश अपशब्द का प्रयोग हम भले ही न करें, फिर भी उसके लिए हृदय में 'शाप' देने-जैसी भावना अवश्य जाग्रत होती है जिसको प्रचलित भाषा में 'कोसना' कहते हैं। यद्यपि सभी जानते हैं कि हमारे 'शाप' या 'कोसने' में अन्यायी, अत्याचारी या पीड़क का प्रत्यक्ष या तत्काल अनिष्ट करने की सामर्थ्य नहीं होती, फिर भी कष्ट देनेवाले को 'कोसकर' जनसाधारण को एक प्रकार का संतोष होता ही देखा गया है। 'शाप' देने या 'कोसने' की बात वस्तुत: तब अधिक सामने आती है जब पीड़ित जन असहाय या असमर्थ होता है। कारण यह है कि यदि उसमें अत्याचारी का सामना करने की सामर्थ्य हो तब तो ईंट का जवाब पत्थर से देकर वह अपना बदला सहज ही ले सकता है। अष्टछाप-काव्य में इसके भी दो-एक उदाहरण मिलते हैं। सूरदास के वसुदेव-देवकी बंदीगृह में जब कंस द्वारा मरवाये गये सात पुत्रों का, और चोरीसे भगाकर बचाये गये आठवें पुत्र कृष्ण का स्मरण करते हैं, तब उस नृशंस से बदला लेने में सर्वथा असमर्थ होने के कारण उसको कोसते हुए वे कहते हैं कि वह मर जाय, विधाता उसको 'निरबंस' करे और किसी भी तरह उसका जड़-मूल से नाश हो जाय।

कभी-कभी व्यक्ति को अनेक कारणों से ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनसे यद्यपि उसकी प्रत्यक्ष हानि नहीं होती, परंतु हृदय से वह जिनको सर्वथा अनुचित समझता है। ऐसी स्थिति में भी अपनी परवशता के कारण वह आज्ञा देनेवाले को मन ही मन 'कोसने' लगता है। सूरदास के अक्रूर की स्थिति ऐसी ही है। कंस, अक्रूर को बलराम और श्रीकृष्ण को वृन्दावन जाकर मथुरा लिवा लाने की जो आज्ञा देता है, उसे अनुचित समझ कर वे भी उस हत्यारे के 'निर्वंश' होने की बात कहकर मन ही मन कोसते हैं।

अत्याचारी और अन्यायीजन कभी-कभी ऐसे अनुचित कार्य करते हैं जिनसे हमारी तो प्रत्यक्ष हानि नहीं होती, फिर भी जिन्हें हम बहुत बुरा समझते हैं। ऐसी स्थिति में हमारी सहानुभूति पीड़ित के साथ होती है

और हम शक्ति भर उसकी रक्षा या सहायता करना चाहते हैं। परंतु यदि अपनी शक्ति या साधन-हीनता और परवशता के कारण हम वैसा करने में असमर्थ होते हैं, तब खीझकर अत्याचारी को कोसने लगते हैं। यही स्थिति मथुरा में बसनेवाली, सूरदास की वात्सल्यमयी उन नारियों की है जो अत्याचारी कंस के द्वारा बुलाये गये बलराम और कृष्ण को उसकी राजसभा की ओर जाते देखती हैं। नृपति कंस का विरोध करने की सामर्थ्य तो उनमें है नहीं, अतएव मोहन रूपधारी बालकों पर क्रोध करनेवाले कंस को 'निर्बंस' होने का शाप देकर और इस प्रकार उसे 'कोसकर' ही अपनी परवशता-जनित खीझ व्यक्त करती हैं।

४. *आशीर्वाद में विश्वास*—'शाप' या 'कोसने' में जिस प्रकार अत्याचारी या अन्यायी का अनिष्ट होने की कामना रहती है, उसी प्रकार किसी को 'आशीर्वाद' या 'असीस' देने के मूल में उसकी मंगल-कामना का भाव रहता है। मानव में मोह-ममता की भावना इतनी प्रबल होती है कि आत्मीयजन के लिए उसके हृदय से सदैव 'आशीर्वाद' ही निकलता है; अतएव काव्य में उसकी चर्चा अधिक महत्व की नहीं होती। इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने हमारे प्रति किसी प्रकार का उपकार किया है उसके लिए भी जो आशीर्वचन कहे जाते हैं, वे भी कृतज्ञता-जनित होने के कारण सामान्य महत्व के ही होते हैं। सबसे अधिक महत्व के आशीर्वचन तो वे होते हैं जो किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति कहे गये हों जिससे हमारा कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, जिसकी हानि से हमारी हानि अथवा जिसके लाभ से हमारा लाभ नहीं है; परंतु जिसके प्रति हमारी सहानुभूति मानवता के नाते ही हो जाती है।

अष्टछाप-काव्य में इसका एक बहुत सुंदर उदाहरण मथुरा की उन नारियों के आशीर्वचनों में मिलता है जो उन्होंने रूप-गुण-निधान बलराम और श्रीकृष्ण को, अत्याचारी कंस के बुलाने पर उसके दरबार की ओर जाता देखकर, वात्सल्य-भाव से प्रेरित होकर कहे हैं। कंस से दोनों बालकों को बचाना तो उन नारियों के हाथ की बात नहीं है, अतएव दोनों भाइयों का नाम ले-लेकर कोई तो विधाता से उनकी कल्याण-कामना के लिए प्रार्थना करती और अशीर्वाद देती है कि दोनों सकुशल घर पहुँचे, कोई उन्हें जीवित रहने की 'असीस' देती और कोई उनकी जीत मनाती है।

ग. *कवि-प्रसिद्धियाँ*—कवि-वर्ग में कुछ विश्वास परंपरा से प्रचलित रहते हैं जिनकी सत्यता की परख करने की आवश्यकता लोग नहीं समझते और जिनका प्रयोग निसंकोच किया करते हैं; यहाँ तक कि कुछ असंगत

बातों का वर्णन भी कवि-वर्ग में असमीचीन नहीं माना जाता। इसका कारण बताते हुए डा० गुलाबराय ने लिखा है—'इन विश्वासों और प्रसिद्धियों का आधार चाहे प्राकृतिक सत्य न हो, परंतु उनके संबंध में सारा सहृदय समाज एकमत रहता है और एक परंपरागत विना लिखा-पढ़ी का समझौता-सा बन जाता है कि कम से कम कविता में इन बातों का इसी प्रकार से वर्णन किया जाय'। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार भी 'कवि-समय' के अंतर्गत लोक और शास्त्र-विरोधी वे ही बातें आती हैं जिन्हें प्राचीन काल के पंडित सहस्र-शाख वेदों का अवगाहन करके, शास्त्रों का अवबोध करके, देशांतर और द्वीपांतर का परिभ्रमण करके निश्चित कर गये हैं। देश-कालवश उनका यदि व्यतिक्रम हो भी गया हो तो उन्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिए; अस्तु। अष्टछाप-काव्य में जिन कवि-प्रसिद्धियों का वर्णन हुआ है, वे, मुख्य रूप से, पशु, पक्षी, कीट-पतंग, पुष्प और नक्षत्र से संबंधित हैं।

१. *पशुओं से संबंधित कवि-प्रसिद्धियाँ*—हाथी के मस्तक में एक प्रकार का मोती या मणि निकलना कवियों में प्रसिद्ध रहा है। गो० तुलसीदास ने 'गजमनि' या 'गजमुकुता' की चर्चा अपने काव्य में अनेक स्थलों पर की है। अष्टछाप-काव्य में भी कई स्थलों पर इसका उल्लेख हुआ है। सूरदास ने बालकृष्ण को 'गजमनिया' धारण किये बताया है तो परमानंददास ने 'हरि के उर का गजमोती,' जिसकी कांति 'दिनमनि' की ज्योति से बढ़कर है, चंद्रावली के पास बताया है।

२. *पक्षियों से संबंधित कवि-प्रसिद्धियाँ*—चकई-चकवे का दिन में मिलन और रात में वियोग होने, चकोर और चकोरी का एकटक चंद्रमा की ओर निहारने तथा अंगार या उसकी चिनगी चुगने, चातक या पपीहे का 'पिउ पिउ' तो वर्ष भर रटने पर प्यास केवल स्वाती नक्षत्र की बूँदों से ही बुझाने, हंस का मोती चुगने अर्थात्, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, निर्मल जल पीने और नीर-क्षीर-विवेकी होने, कोयल का अपने अंडे स्वयं न से कर कौए के घोसले में रख आने और उसके बच्चों का वसंत ऋतु में अपने कुल में आकर मिल जाने आदि का जो वर्णन अष्टछापी कवियों के साथ-साथ हिन्दी के अन्य कवियों ने किया है, वह 'कवि-प्रसिद्धि' के ही अंतर्गत आता है। इस प्रसंग में विस्तार से उक्त पक्षियों की चर्चा करते समय पीछे लिखा जा चुका है।

३. *कीट-पतंग संबंधी कवि-प्रसिद्धियाँ*—कीट-वर्ग में सर्प या फनिग के पास मणि होना और यह उसे अत्यंत प्रिय भी होना; तथा पतंग-वर्ग में

भ्रमर का चंपे के फूल के निकट न जाना आदि कवि-वर्ग में प्रसिद्ध रहा है।

४. *पुष्प-संबंधी कवि-प्रसिद्धियाँ*—यों तो अशोक, कर्णिकार या कनेर, कुंद, कुमुद, कुरवक, चंदन, चंपक, तिलक, नीलोत्पल, पद्म या कमल, प्रियंगु, भूर्ज-पत्र, मंदार, मालती आदि कई वृक्षों और पुष्पों के संबंध में कवि-प्रसिद्धियाँ हैं, तथापि अष्टछाप काव्य में इनमें से केवल 'कमल' के संबंध की कुछ 'प्रसिद्धियों' की ही विशेष रूप से चर्चा है; यथा कमल का सूर्य के दर्शन से विकसित होना और चंद्रमा को देख कर मुँद जाना तथा भौंरे का उसमें बंदी हो जाना। कुंद के लालिमा लिये हुए फूल को अष्टछापी कवियों का श्वेत मान कर दाँत से उसकी उपमा देना भी कवि-प्रसिद्धि के अंतर्गत माना जा सकता है।

५. *नक्षत्र-सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियाँ*—नक्षत्रों के सम्बन्ध में दो प्रकार की प्रसिद्धियाँ अष्टछाप-काव्य में मिलती हैं। पहली में शनि का वर्ण नील, शुक्र का श्वेत, बृहस्पति का पीला और भौम का लाल माना गया है। दूसरे, स्वाति नक्षत्र में बरसे जल के सम्बन्ध में प्रसिद्धि यह है कि सर्प के मुख में पड़ने पर विष, कदली पर पड़ने से कपूर और सीपी में पड़ने पर मोती बन जाता है। नंददास ने इन तीन बातों में से केवल प्रथम दो का ही वर्णन किया है।

समीक्षा—भारतीय समाज में प्रचलित जिन विश्वासों और लोक-मान्यताओं की चर्चा ऊपर की गयी है, उनमें से प्रायः सभी के प्रति आज भी उस वर्ग की आस्था बनी हुई है जो अभी तक विदेशी संस्कृतियों से किसी सीमा तक अप्रभावित रहकर अपनी ही संस्कृति का पुजारी बना हुआ है। ग्रामीण वर्ग के तो सभी स्त्री-पुरुषों में, परंतु नगर में बसनेवाले पुरुषों में कम, घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों में विशेष रूप से, उन विश्वासों और मान्यताओं के प्रति श्रद्धा-भावना देखी जाती है। गीति काव्य में यद्यपि ऐसी बातों की चर्चा के लिए बहुत कम अवकाश रहता है, तथापि उनका वर्णन करनेवाले अष्टछापी कवियों की निस्संदेह यह उल्लेखनीय विशेषता है जो वे धर्मप्राण भारतीय जनता के हृदय को समझ सके और उसके मनोभावों को अपने काव्य में इस प्रकार चित्रित कर सके। काव्य-कला-संबंधी विशेषताओं को यदि छोड़ भी दिया जाय तब भी, केवल इस विशेषता के कारण ही, जन-जीवन के सांस्कृतिक पक्ष के अध्येता के लिए अष्टछाप-काव्य का महत्व सदैव बना रहेगा और भारतीय समाज में उसकी लोकप्रियता भी दिन-दिन बढ़ती जायगी।

---

६ वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका के साधन-रूप

वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका-साधन की चर्चा ऐसा तथ्यात्मक विषय है जिसके लिए गीतिकाव्य में बहुत कम अवकाश रहता है। फिर जो गीतिकाव्य ग्रामीण जीवन को लेकर लिखा गया हो, उसमें तत्संबंधी वर्णन की संभावना और भी नहीं रह जाती, क्योंकि व्यापार आदि का संबंध मुख्यत: नागरिक जीवन से रहता है। स्वयं सूरदास ने एक पद में कहा है कि निर्गुण-जैसी बहुमूल्य वस्तुएँ मथुरा-जैसी बड़ी नगरी में ही बिक सकती हैं, वृन्दावन-जैसे ग्राम में नहीं। इन्हीं दो कारणों से अष्टछाप-काव्य में वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका-साधनों का उल्लेख बहुत कम हुआ है। कृष्णदास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी ने तो उनकी चर्चा नहीं के बराबर की है, एवं परमानंददास के काव्य में तत्संबंधी कुछ स्फुट शब्द प्रयुक्त हुए हैं। केवल सूरदास के पदों में तद्विषयक उल्लेख अधिक मिलते हैं, यद्यपि वे भी क्रमबद्ध नहीं हैं; अस्तु। अष्टछाप-काव्य में वर्णित वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका के साधन-रूप-वर्णन को, अध्ययन की सुविधा के लिए, पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. स्थान, रीति और वस्तुएँ, २. रूप और साधन, ३. विविध व्यवसाय और व्यवसायी, ४. जीविका के विविध साधन-रूप तथा ५. अन्य वर्ग।

१. व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएँ—'वाणिज्य' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'बनिज' शब्द का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं यह शब्द 'व्यापार की वस्तु या सामान' के अर्थ में भी आया है। 'वाणिज्य' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'ब्योपार' शब्द भी मिलता है। व्यापार करनेवाले को

सूरदास ने 'व्यापारी' या 'ब्यौपारी' कहा है और 'व्यापार की चीज' के लिए 'गथ', 'माल', 'वस्तु', 'सौंज' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। 'सौदा' शब्द आज दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—एक 'खरीदी गयी चीज' के लिए और दूसरे, खरीदने के व्यवहार के लिए। परमानंददास के एक पद में 'सौदा' शब्द पहले अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और उनके तथा सूरदास के कुछ पदों में दूसरे अर्थ में। व्यापारी का माल खरीदनेवाले को सूरदास ने 'ग्राहक' कहा है। परमानंददास के कृष्ण को भी गोपियों द्वारा राधा के गोरस का 'अमोलो गाहक' कहा गया है। व्यापारी की विक्रय के योग्य वस्तु को 'गाहक' उचित मूल्य देकर 'मोल' ले सकता है। दान-लीला-प्रसंग में सूरदास ने गोपियों का 'बनिज' मोल लेने का प्रस्ताव किया है।

व्यापार आरंभ करने के लिए धन की आवश्यकता होती है जिसे अष्टछाप-काव्य में 'मूल' कहा गया है। इसी अर्थ में, अर्थात् व्यापारी की सारी 'जमा-जथा' के लिए सूरदास ने एक पद में 'पूँजी' शब्द का प्रयोग किया है। किसी वस्तु को खरीद कर उसके बिकने के समय तक 'मूल' धन उसमें लगाये रहने और लाने, रखने, सजाने आदि के अपने श्रम और बौद्धिक कौशल के बदले में 'ग्राहक' से जो धन 'मूल' से अधिक मिलता है, वह उसका 'नफा' अथवा 'लाहा' या 'लाभ' कहलाता है और यही व्यापारी का चरम लक्ष्य होता है। जो व्यापारी ईमानदार नहीं होता, वह अधिक लाभ के लोभ से कभी-कभी कम भी 'तोल' देता है। इसी से परमानंददास की विनोदिनी गोपियाँ, 'हटरी'-प्रसंग में, कृष्ण से पूरी 'तोल' देने की बात कहती हैं। किसी वस्तु को बेचने पर यदि व्यापारी को स्थान-विशेष में 'मूल' से कम मिलता है तब वह उसे वहाँ न बेचकर अन्यत्र ले जाता है जहाँ उसे बेचने में लाभ हो सके। व्यापारी की इसी मनोवृत्ति को लक्ष्य करके गोपियों ने ऊधव को कभी तो मधुबन के बाजार में 'जोग' बेचने की सलाह दी है और कभी 'कासी' ले जाकर; क्योंकि वहाँ अधिक 'लाहु' होने की संभावना है और व्यापारी बिना 'नफा खाये' कभी कुछ बेचने को तैयार नहीं होता। अधिक 'नफे' के लोभ से व्यापारी-वर्ग कभी कभी 'अकरी' चीजें ले आते हैं जिससे ग्राहकों को खीभ होती है और साधारण लोग उसे खरीदने का साहस नहीं कर पाते जिससे वह 'अकरी' वस्तु बिना बिकी ही रह जाती है। व्यापारियों की इस चाल के संबंध में संकेत करते हुए गोपियों ने ऊधव की 'निर्गुन निरमोल गाठरी' के संबंध में कहा है कि ऐसो 'अकरी' वस्तु का यहाँ कोई 'गाहक' नहीं है; इसे तो मथुरा-जैसी 'बड़ी नगरी' में ले जाकर बेचो।

इसी प्रकार व्यापारी वर्ग कभी-कभी अधिक लाभ के लोभ से सामान्य वस्तु का भी अधिक मूल्य चाहते हैं। यदि वह वस्तु जीवन के लिए उपयोगी है तब तो ग्राहक अधिक मूल्य देकर भी उसे खरीदने को विवश होता है, परंतु यदि उसके बिना काम चल सकता है तो ग्राहक को वह चीज बहुत महँगी मालूम होती है और व्यापारी का 'माल' बिना बिके रह जाता है। सूरदास के एक पद में व्यापार की इस स्थिति की ओर भी संकेत किया गया है। ऊधव 'जोग ठगौरी' बेचने के लिए व्रज आये हैं जिसकी आवश्यकता गोपियों को है नहीं; अतः वे कहती हैं कि तुम्हारी 'जोग ठगौरी' तो मूली के पत्तों-जैसी है जिसके लिए 'मुक्ताहल' देने की मूर्खता कौन दिखायगा? अतएव तुम्हारा 'व्यापार' इस गाँव में नहीं चलेगा; यह तो जहाँ से लाये हो वहीं किसी के पेट में समा सकता है। यदि व्यापारी को किसी वस्तु का मूल्य 'मूल' से कम मिले तो उसकी 'हानि' होती है जिसका अर्थ है कि व्यापार मे 'लाभ' तो हुआ नहीं, उल्टे 'गाँठ' का धन ही उसमें गया और 'हानि' उठाना अपने कार्य में व्यापारी के अयोग्य होने का प्रमाण है।

नगर में बड़े व्यापारी बाजार में दूकान सजाकर बैठते हैं। अयोध्या के ऐसे व्यापारियों, यथा 'बजाज, सराफ तथा बनिक', का वर्णन 'मानस' में मिलता है जिनको कुबेर के समान बताया गया है। बड़े बाजारों के ऐसे व्यापारियों के 'दलाल' भी घूमा करते हैं जो ग्राहकों को पटाकर उन्हीं दूकानदारों के पास ले जाते हैं जिनसे बिक्री से प्राप्त लाभ का कुछ अंश मिलने की बात तय रहती है। 'दलाल' को मिला हुआ यह धन 'दलाली' कहलाता है जिसका उल्लेख सूरदास के एक पद में हुआ है। अष्टछाप-काव्य में अयोध्या, मथुरा या द्वारका-जैसे बड़े नगरों के वर्णन की ओर कवियों का ध्यान न होने से ऐसे बाजार या व्यापारियों की चर्चा नहीं है। उसमें तो उन व्यापारियों की चर्चा है जो बैल, हाथी या अन्य किसी पशु पर माल लाद कर एक स्थान से दूसरे को जाया करते थे। जिस व्यापारी के पास जितने पशु हों, उन सबको एक बार माल से लादकर ले जाने को आज भी 'खेप' कहते हैं जिसका प्रयोग अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने एक पद में किया है।

ऐसे व्यापारियों केपास सामान्यतया सुदूर प्रदेशोंसे आनेवाली वस्तुएँ ही रहती थीं। ये लोग जब 'घाट'-विशेष पर नदी पार करते थे तो इनको 'दान' अर्थात 'कर' या 'चुंगी' देनी पड़ती थी जिसको लेकर अष्टछापी कवियों ने 'दान-लीला' का वर्णन किया है। 'दान' लेने का अधिकार शासन

की ओर से मिलता था अर्थात् 'दानी' की नियुक्ति शासक की ओर से होती थी। सूरदास के कृष्ण ऐसे अधिकार को शासक की ओर से 'बीरा' दिया जाना कहते हैं और 'दान' आदि न लेने पर शासक की 'गारी' खाने की भी बात उन्होंने कही है। श्रीकृष्ण की इतनी बात से गोपियाँ समझती हैं कि उनका संकेत कंस नृपति की ओर ही हो सकता है जिससे 'दानी' की नियुक्ति शासक द्वारा ही होने की बात की पुष्टि होती है। गोविंदस्वामी की गोपी दान माँगने पर कृष्ण से पूछती है—तुम स्वयं ही 'दान' ले रहे हो या यह अधिकार किसी ने तुम्हें लिखकर दिया है? उनके एक अन्य पद से जान पड़ता है कि दूध आदि उन वस्तुओं पर 'दान' नहीं लिया जाता था, जो 'खिरक' से दुहाकर लोग अपने-अपने 'भुवन' ले जाते थे; प्रत्युत लौंग-सुपारी-जैसी उन वस्तुओं पर 'दान' लेने का नियम था जो दूसरे स्थानों से व्यापार के लिए लायी जाती थीं। उनके कृष्ण जब खिरक से दुहाकर लाये गये गोरस पर 'दान' माँगते हैं तब गोपियाँ खीझकर उन्हें 'अनोखे नए दानी' कहती हैं। एक अन्य पद में 'दूध-दही' पर 'दान' माँगने की बात को गोविंदस्वामी की गोपियाँ नयी चाल बताती हैं और संभवतः इसी कारण परमानंददास की गोपियाँ कृष्ण को 'अनोखे-दानी' और गोविंदस्वामी की 'अचगरौ दानी' कहती हैं। सामान्यतया घाट पर ही 'दान' लेने का नियम था जिसकी पुष्टि गोविंदस्वामी के कृष्ण द्वारा चंद्रावली को घाट पर ही 'दान' वसूलने के लिए रोक लेने से होती है। यही नहीं, इसी कारण सूरदास के कृष्ण अपने को 'घटवारौ' और चतुर्भुजदास की गोपियाँ उनको 'गिरिघटिया' कहती हैं। 'दान' या 'चुंगी' आदि से बचने की मनोवृत्ति सदा से व्यापारी-वर्ग में रही है। कुंभनदास के 'गोबर्धनधारी', 'गुजरेटी' को चोरी से गोरस बेचनेवाली कहते हैं। गोविंदस्वामी के कृष्ण गोपियों से 'दान मार लेने' का उलाहना देते हुए कहते हैं कि आज दिन-दिन का 'दान' वसूल कर लूँगा। 'दानी' का कार्य 'कर', 'जगात' या 'जकात' वसूल करने का होता है। इसलिए सूरदास की गोपियों ने एक पद में उन्हें 'जगाती' भी कहा है।

माल लादकर लानेवाले व्यापारी गोकुल, वृन्दावन-जैसे गाँवों में 'पैंठ करते' या दूकान लगाते थे और मथुरा, काशी-जैसे नगरों में भी माल बेचने ले जाते थे जैसा कि गोपियों द्वारा ऊधव को व्यापारिक 'सौंज' 'हरिपुर' अर्थात् मथुरा और 'जोग मोट' काशी ले जाकर बेचने की सलाह से स्पष्ट होता है। जो व्यापारी एक स्थान से दूसरे और दूसरे से तीसरे स्थान पर जाकर माल बेचा करते हैं, कभी-कभी उनको मार्ग में लुट जाने का डर भी

बना रहता है जिसकी ओर सूरदास के एक पद में संकेत किया गया है।

जिस स्थान पर व्यापारी बैठते हैं और ग्राहक क्रय-विक्रय के लिए पहुँचते हैं, उसे 'हाट' या 'पैंठ' कहा जाता है। जायसी के 'पदमावत' में सिंघल के 'हाट' का और गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' में लंका के 'हट्ट' का उल्लेख हुआ है। अष्टछाप-काव्य में भी 'हाट'-विशेष में बड़े व्यापारी के समान स्थिरता से बैठकर नग-विशेष बेचे जाने की बात कही गयी है। परमानंददास के एक पद में 'बाजार' शब्द भी मिलता है जहाँ राम-जन्म के अवसर पर आनंदमंगल गानेवाली 'सखियों' को पहनाने के लिए राजा दशरथ 'सारी' खरीदने पधारते हैं।

थोड़ी पूँजी वाले छोटे व्यापारी, जिनके पास दूकान लगाने के साधन नहीं होते, दैनिक उपयोग की वस्तुएँ लादकर, 'फेरी' लगाते हैं। अष्टछाप-काव्य में यह शब्द इसी रूप में तो प्रयुक्त नहीं हुआ है, परंतु 'फेरी' लगाकर वस्तुएँ बेचने की बात अनेक पदों में कही गयी है। सूरदास की यशोदा किसी 'फेरी' करनेवाले से कृष्ण के लिए 'भौंरा-चक-डोरी' खरीद कर रखती हैं। इसी प्रकार परमानंददास ने 'बेर' और 'आम' बेचनेवालियों के साथ काछिन के भी 'फेरी' लगाकर माल बेचने का वर्णन किया है। सूरदास के एक पद में 'जोग-मोट' को 'बोझ' भी कहा गया है जिसे ऊधव सर पर लादकर ब्रज में ला उतारते हैं। ब्रज की ग्वालिनें तो दूध, दही, माखन और घृत के माट या मटुकी सर पर उठाकर बेचने के लिए नित्यप्रति ही मथुरा जाती हैं; क्योंकि वे जानती हैं कि 'गोरस' लोग प्रायःकाल ही खरीदते हैं। 'फेरी' लगानेवाला अपना माल तब तक सर पर लिये घर घर डोलता है, जब तक वह उचित मूल्य पर बिक नहीं जाता।

व्यापारी अपनी वस्तु अधिक से अधिक मूल्य पर बेचना चाहता है और ग्राहक उसका मूल्य कम से कम देना चाहता है। ऐसी स्थिति में 'मोल-तोल' होता है। परमानंददास और गोविंदस्वामी के कृष्ण गोपियों से स्पष्ट शब्दों में पूछते हैं कि अपने दूध-दही के ठीक ठीक 'दाम' या 'मोल' कह दो। कभी-कभी बेचनेवाले को प्रलोभन दिया जाता है कि यदि कुछ कम अथवा बिलकुल ठीक दाम बता दो तो सारी चीज खरीदी जा सकती है, और शीघ्र ही सारा माल बिक जाने के लोभ से प्रायः व्यापारी इस बात से सहमत भी हो जाते हैं। परमानंददास के कृष्ण व्यापारियों की इस प्रकृति से परिचित जान पड़ते हैं; तभी तो उन्होंने 'उचित मोल' बता देने पर सगरी 'मटुकिया' खरीद लेने की बात कही है। कुंभनदास के कृष्ण और

भी चतुर हैं जो माल के साथ उसकी मालकिन को भी घर ले चलने की घात लगाते हैं। वे ग्वालिनी से दही का मोल सच-सच बता देने की बात तो कहते हैं, पर उनके पल्ले है कुछ नहीं। इसलिए कभी तो सखाओं की 'साखी' दिला कर दही लेने को कहते हैं, कभी विश्वास कराने के लिए अपनी 'कंठसिरी' उसके पास रखना चाहते हैं और कहते हैं कि मेरे साथ घर चल; वहीं तेरे सब दाम दे दूँगा।

माल खरीदने में साधारणतया ग्राहक ही ठगा जाता है, परंतु परमानंददास की एक गोपी ने गोरस बेचते समय अपने 'ठगे' जाने की विचित्र बात कही है। कभी कभी 'दाम' के नाम पर व्यापारी और ग्राहक में झगड़ा भी हो जाता है। इसीलिए परमानंददास ने अपने कृष्ण को 'दाम का झगरी' बताया है।

व्यापारी-वर्ग में दिन की पहली बिक्री बड़े महत्व की समझी जाती है। इसी को उनकी भाषा में 'बोहनी' कहते हैं। प्रत्येक व्यापारी चाहता है कि उसकी 'बोहनी' अच्छी हो, क्योंकि उसका यह विश्वास होता है कि उस दशा में सारे दिन उसकी बिक्री अच्छी होगी। जब तक 'बोहनी' नहीं हो जाती, कोई व्यापारी न उधार देता है और न 'कर' या 'दान' आदि के रूप में कुछ बिना मूल्य के ही दे सकता है। इसी से श्रीकृष्ण के 'दान' माँगने पर सूरदास और परमानंददास की गोपियाँ साफ-साफ कह देती हैं कि बिना 'बोहनी' हुए हम दूध, दही आदि छूने भी नहीं देंगी, देना तो दूर की बात है।

कभी कभी बजार 'मंदा' हो जाता है; अर्थात् बिक्री के योग्य वस्तु की अधिकता या उसकी अनावश्यकता, ग्राहकों की कमी अथवा ऐसे ही अन्य किसी कारण से 'माल' के दाम इतने कम हो जाते हैं कि व्यापारी का परिश्रम तो व्यर्थ जाता ही है, उसका 'मूल' भी संकट में पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में यदि व्यापारी सदैव की तरह अपने 'माल' का पूरा दाम चाहता है तो उसे कोई खरीदता नहीं और बिना बिका 'माल' व्यापारी के पास पड़ा रह जाता है। सूरदास की गोपियाँ भी ऊधव से कहती हैं कि तुम्हारी 'जोग ठगौरी' व्रज में न बिक सकेगी और तुम्हारा सारा व्यापार 'धरा' रह जायगा; क्योंकि तुम 'मूली के पत्तों'-जैसी सस्ती चीज का 'मुक्ताहल'-जैसा अत्यधिक मूल्य माँग रहे हो। 'मंदी' की ऐसी स्थिति में व्यापारी के सामने दो ही मार्ग रहते हैं—वह 'घाटा' उठाकर माल बेच दे या अन्यत्र ले जाकर बेचने का यत्न करे। थोड़ी 'पूँजी' के व्यापारी के लिए

दूसरा ही मार्ग कल्याणकारी है। इसी कारण सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि अपनी 'मुक्ति' को तुम व्रज में बेचने तो आये हो, परंतु जान पड़ता है कि सगुन-सायन सोच-विचार कर नहीं चले थे। व्रज में 'मुक्ति' का बाजार बहुत मद्दा है। उधर तुम्हारी सारी 'पूँजी' 'मुक्ति' खरीदने में लग चुकी है, इसलिए 'घाटा' उठाकर बेचना भी तुम्हारे लिए संभव नहीं है। अतएव तुम्हारे लिए सर्वोत्तम मार्ग यही है कि इसे अन्यत्र ले जाकर बेचो।

स्थान-विशेष में किसी चीज का उचित मूल्य न मिल सकने का एक अन्य कारण भी अष्टछाप-काव्य में बताया गया है। यदि सब ग्राहक 'एकमत' होकर वस्तु-विशेष को न खरीदने अथवा उसका अधिक मूल्य न देने का निश्चय कर लें, तब भी व्यापारी की वस्तु या तो बिकने से रह जायगी या उचित से कम मूल्य पर बिकेगी। सूरदास की गोपियाँ 'मुक्ति' को न खरीदने का निश्चय जब एकमत होकर कर लेती हैं तब 'घर-घर डोलने' पर भी ऊधव को उसका कोई ग्राहक नहीं मिलता।

जो वस्तु एक स्थान पर उचित मूल्य में नहीं बिकती; क्योंकि उसकी वहाँ किसी को चाह नहीं है, वह दूसरे स्थान पर अधिक लाभ से भी कभी-कभी बेची जा सकती है, यदि वहाँ के निवासियों को उसकी आवश्यकता हो अथवा उसकी उपयोगिता वे समझते हों। इसी तथ्य की ओर संकेत करती हुई गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि तुम्हारा 'जोग' व्रज में नहीं बिक सका, क्योंकि यहाँ उसकी किसी को आवश्यकता नहीं थी; अतएव इसे तुम सम्हाल कर 'मधुबन' ले जाओ, वहाँ की नारियाँ इसे सुनते ही 'बिसाह' लेंगी।

बड़े व्यापारी को अष्टछाप-काव्य में 'साहु' कहा गया है जिसके प्रतिनिधि या 'एजेंट', 'साहु' की 'छाप' से, इधर-उधर माल बेचते फिरते हैं। ऐसे प्रतिनिधियों में कुछ ऐसे होते हैं जो अधिक लाभ के लोभ से अथवा ग्राहक को 'भोला' और 'अनाड़ी' जान कर उसे 'ठग' भी लेते हैं। वे अपने बहुत साधारण माल को किसी प्रसिद्ध 'साहु' के यहाँ का बताते हैं और उसके लिए 'भोले' और 'अनाड़ी' लोगों से बहुत अधिक मूल्य माँगते हैं। सूरदास की गोपियों ने ऊधव से कहे हुए एक पद में व्यापारियों की इस 'ठग-प्रवृत्ति' की आलोचना की है। ऊधव की 'ज्ञान-जोग की खेप' उनके लिए 'फाटक' के समान है जिसको वे श्रीकृष्ण-जैसे प्रतिष्ठित 'साहु' के यहाँ का बताकर, उस खोटे माल के बदले में 'हाटक' चाहते हैं। परंतु गोपियाँ स्पष्ट कह देती हैं कि हम इतनी 'अनाड़ी' नहीं हैं जो तुम्हारी यह चाल न

समझें। यदि तुम्हारे कथन में सच्चाई है तो यहाँ जरा भी देर मत लगाओ, शीघ्र जाकर अपने 'साहु' को ही यहाँ लिवा लाओ, तब हम तुम्हें 'मुँहमाँगा' दाम देने को सहर्ष प्रस्तुत हो जायँगी।

अब प्रश्न आता है व्यापार की वस्तुओं का। जैसा पीछे कहा जा चुका है, अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित व्यापार की वस्तुएँ दो वर्गों में आती हैं—एक, स्थानीय वस्तुएँ; और दूसरे, सुदूर प्रदेशीय वस्तुएँ।

क. व्यापार की स्थानीय वस्तुएँ—इस वर्ग में मुख्यत: वे वस्तुएँ आती हैं जो सामान्यतया दैनिक जीवन में अत्यावश्यक होती हैं; यथा दूध, दही, माखन, घी, फल, तरकारी आदि। अहीरों के जीवन की चर्चा करने के कारण दूध, दही, घी, माखन आदि बेचने की बात प्राय: सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। आम, बेल आदि फल तथा तरकारियाँ बेचने आनेवाली 'काछिन' का उल्लेख अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने किया है। इन सभी वस्तुओं के बेचे जाने का उल्लेख जिस रूप में हुआ है, उसकी चर्चा इसी परिच्छेद में पीछे की जा चुकी है।

ख. सुदूर प्रदेश से आनेवाली वस्तुएँ—ऐसी वस्तुओं में मुख्यत: नारियल, दाख आदि मेवे तथा लौंग, हींग, मिरिच, पीपरि, अजवाइनि, कूट, कायफल, सोंठ, सुपारी, चिरायता, कटजीरा, मजीठ, लाख, सेंदुर, बाइबिडंग, बहेड़ा, हरैं आदि मसाले और अन्य उपयोगी वस्तुएँ आती हैं जिनका उल्लेख 'दान-लीला-प्रसंग' के एक पद में सूरदास ने किया है।

२. *व्यापार के रूप और साधन*

बड़े या छोटे किसी भी व्यापारी की प्रत्येक वस्तु को खरीदने के लिए उसका 'मूल्य' दिया जाना चाहिए। यह 'मूल्य' 'दाम' के रूप में तो दिया ही जाता है, कभी कभी दूसरी उपयोगी वस्तु के रूप में भी दिया जा सकता है। नगरों में तो आज पहली ही रीति सर्वत्र प्रचलित है, परंतु गाँवों में अब भी 'मूल्य' चुकाने के दोनों ढंग अपनाये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में ग्रामीण जीवन का ही प्रमुख रूप से चित्रण होने के कारण उक्त दोनों विधियों की चर्चा की गयी है। परमानंददास ने बेर बेचनेवाली को, बेरों के बदले में, आँगन में सूखते हुए धान 'अँजुली' भर दिये जाने की बात लिखी है। परंतु सस्ती या साधारण चीज को, मूल्यवान वस्तु के बदले में लेने की मूर्खता कोई 'अनाड़ी' भी नहीं दिखाना चाहता। इसीलिए गोपियाँ ऊधव से पूछती हैं कि क्या 'मूली के पत्तों' के बदले में कोई 'मुक्ताहल' दे सकता है? ग्राहक को जिस चीज की आवश्यकता नहीं है

वह कितनी भी उपयोगी क्यों न हों उसके लिए 'फाटक' के समान है और ऊधव से गोपियाँ कहती हैं कि ऐसी वस्तु का मूल्य 'हाटक' के रूप में कोई 'अनाड़ी' भी कभी नहीं चुका सकता। बहुमूल्य वस्तुओं का 'मोल' 'हीरा' बताये जाने की बात गोविंदस्वामी के एक पद में मिलती है जिसमें वृषभानुनंदिनी के 'निरमोलिक' दही का मोल 'स्याम हीरा' बताया गया है। परमानंददास ने भी 'दधि' का मोल 'कंचन' बताते हुए एक पद में उसके बदले में गोपी-विशेष को 'दुलरी' दिलायी है। परमानंददास की चंद्रावली के पास 'हरि के उर का गजमोती' देखकर कोई सखी उससे पूछती है—'यह तूने कहाँ से पाया'? उत्तर में चंद्रावली उसको 'दधि के पलटे' में पाने की बात कहती है और विश्वास न होने पर शपथ धराकर पूछ लेने की सलाह देती है। उक्त सभी उदाहरण अष्टछापी कवियों के समय में 'वस्तु' के विनिमय में 'वस्तु' दिये जाने की रीति के प्रचलन की पुष्टि करते हैं।

व्यापारी की कोई वस्तु 'संतमेंत' अर्थात बिना मूल्य चुकाये किसी को नहीं मिल सकती; उसके लिए तो वह मूल्य देना ही होगा जो व्यापारी लेने को सहमत हो जाय—वस्तु विशेष का वह मूल्य चाहे दूसरी वस्तु, यथा अनाज, सोना, चाँदी, हीरा आदि के रूप में चुकाया जाय, चाहे शासक द्वारा प्रचलित 'सिक्कों' के रूप में। व्यापार के प्रथम अर्थात् 'वस्तु-विनिमय'-रूप की चर्चा ऊपर हो चुकी है; जहाँ वह 'रूप' नहीं चलता अथवा जहाँ व्यापारी वस्तु-विनिमय के लिए सहमत नहीं होता, वहाँ बिक्री की वस्तु का मूल्य सिक्कों के रूप में चुकाना पड़ता है। सभी देशों और कालों में व्यापार का यह रूप प्रचलित रहा है। अष्टछाप-काव्य में भी कुछ सिक्कों के नाम आये हैं, यद्यपि उनके संबंध में अधिक विस्तार से नहीं लिखा गया है। ऐसे सिक्कों में टका, दमड़ी, दाम, रुपा आदि उल्लेखनीय हैं।

अ. *टका*—उन्नीसवीं शताब्दी में 'टका' शब्द ताँबे के अधन्ने बराबर सिक्के के रूप में प्रचलित था; परंतु अष्टछापी कवियों के समय में यह चाँदी का एक सिक्का था। 'टका' का उपयोग अष्टछाप-काव्य में दो स्थलों पर विशेष रूप से हुआ है। राधा की माता ने पुत्री की खोई हुई 'मोतिसिरी' 'लाख टके' में लाने की बात एक पद में कही है। इस प्रकार वह 'मोतिसिरी' बहुमूल्य थी और कोई भी घर बैठे ही ऐसी 'निधि' पाकर अपना भाग्य सराहेगा। एक दूसरे पद में इस सिक्के का उल्लेख 'नेग'-रूप में दिये जाने के प्रसंग में हुआ है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर माता यशोदा दाई का नेग 'लाख टके' देती हैं।

आ. *दमड़ी*—'आइने अकबरी' के अनुसार 'दाम' का आठवाँ भाग 'दमड़ी' होता था। अष्टछाप-काव्य में धन-द्रव्य के लोभी को 'दमरी को पूत' कहा गया है।

इ. *दाम*—'आइने अकबरी' में 'दाम' को ताँबे का सिक्का बताया गया है जो रुपए के चालीसवें भाग के बराबर होता था। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने इस सिक्के की चर्चा विशेष रूप से की है। राधा की माता ने पुत्री द्वारा खोई हुई 'मोतिसिरी' के एक-एक नग का मूल्य 'सत-सत दाम' बताया है। परमानंददास ने 'दाम' का प्रयोग 'सिक्के' के अर्थ में किया है।

ई. *रुपा*—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित चौथा सिक्का 'रूपा' है जिसका अर्थ 'चाँदी' होने से स्पष्ट है कि यह चाँदी का सिक्का था। इसकी पुष्टि 'आइने अकबरी' से भी होती है जिसमें 'गोल' और 'वर्गाकार', दो प्रकार के रुपए चलने की बात कही गयी है। सूरदास ने 'रूपै' शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थ में और परमानंददास ने 'रुपए' सिक्के के अर्थ में किया है।

ये तो हुए वे सिक्के जो 'टकसाल' में बनकर शासक की ओर से प्रचलित किये जाते थे। इनके अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में दो-एक स्थलों पर 'कौड़ी' का भी उल्लेख हुआ है जो सिक्के की तरह ही कुछ समय पूर्व तक भारत के अनेक प्रदेशों में व्यवहार में आती थी। हिसाब-किताब में 'कौड़ी' का तात्पर्य 'नाममात्र के मूल्य' से होता है जिसके लिए परिश्रम करनेवाले, सूरदास की सम्मति में, नितांत मूर्ख हैं। सूरदास के एक अन्य वाक्य से भी 'कौड़ी' की अत्यंत तुच्छता का पता चलता है जिसमें गोपियों की दृष्टि में, कृष्ण रहित गोकुल का मूल्य 'कौड़ी' के बराबर भी नहीं रह जाता। 'कौड़ी' का तात्पर्य 'अधीनस्थ राजाओं द्वारा सम्राट को दिये जाने वाले कर' से भी होता है। 'दानी' बन कर श्रीकृष्ण जब गोपियों से 'कौड़ी-कौड़ी' वसूल लेने की बात कहते हैं, तब उसका सामान्य अर्थ तो स्पष्ट है ही, कर-संबंधी विशेष अर्थ की ओर भी उसका संकेत लिया जा सकता है।

सूरदास के एक पद में 'खोटे दाम' का प्रयोग मिलता है जिससे सूचित होता है कि राजकीय 'टकसाल' के बाहर 'खोटे सिक्के' भी बना लिये जाते थे जिनको न पहचान कर लोग ठगे जाने के कारण खीझते थे। इसी प्रकार नंददास की 'श्याम-सगाई' नामक रचना में 'अरथ-द्रव्य' का प्रयोग

हुआ है जिनका संकेत 'धन' के साथ-साथ 'टकसाली' सिक्कों की ओर भी है।

३. विविध व्यवसाय और व्यवसायी—

इस वर्ग में आलोच्य कवियों द्वारा उल्लिखित वे व्यवसायी आते हैं जो वस्तु-विशेष का उत्पादन अथवा निर्माण स्वयं करके समाज में उसकी बिक्री करते हैं। अष्टछाप-काव्य में वर्णित ऐसे व्यवसायियों को, स्थूल रूप से, सत्रह उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अहीर, कृषक, बनजारे या व्यापारी, पंसारी, महाजन, जौहरी, सर्राफ, बजाज, काछी, कुलाल, मनिहार, गंधी, चोलिनि, तमोली, तेली, पारधी और कसाई।

क. *अहीर*—अष्टछापी कवियों के परम आराध्य जिन व्यक्तियों के यहाँ पले थे, वे अहीर थे। मथुरा की नारियों ने कृष्ण का परिचय परस्पर 'नंद अहीर के सुत' कहकर ही दिया है। अष्टछाप-काव्य में 'अहीर' के लिए 'गोप' और 'ग्वाल' या 'ग्वार' तथा उनकी स्त्रियों के लिए 'अहीरिन', 'गोपी', 'ग्वालि' या 'ग्वारि', 'गुजरेटी' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। गाय पालना और उनका दूध दुहकर, उससे दही, माखन, घी आदि बनाकर बेचना इस वर्ग का व्यवसाय रहा है। माट-मटुकी में दूध, दही, माखन आदि लिये मथुरा की ओर जाती हुई ग्वालिनों के रोक लिये जाने पर इस वर्ग के व्यवसाय का स्पष्ट उल्लेख 'दान-लीला'-प्रसंग में हुआ है। सूरदास और कुंभनदास की ग्वालिन तो 'अहीर' जाति का धंधा ही दही आदि बेचना बताती है। गोप-बालकों के साथ कृष्ण के गाय चराने की बात का उल्लेख तो सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। घर में ग्वालिनों के दही मथने की बात भी उन्होंने लिखी है। स्वयं यशोदा का भी यही कार्य रहा है, यहाँ तक कि 'पाहुनी' से भी दही मथने की बात कहने में वह संकोच नहीं करती। अहीरों के व्यवसाय का यह क्रम आज भी चल रहा है, यद्यपि उनकी स्त्रियों का दूध, दही आदि बेचना अब प्रायः बंद हो गया है।

वस्तुतः 'गोपालन' इस देश में सदैव से महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा है। जो लोग दूध, दही नहीं बेचते थे, वे भी 'गोपालन' में सदैव रुचि लेते थे। ब्राह्मण-वर्ग के लिए भी यह कार्य महत्व का था। यज्ञों में ऋत्विजों को दक्षिणा में 'गायें' भी दी जाती थीं। नंद जी भी ब्राह्मणों को दो-दो लाख गायें दान में देते हैं।

ख. कृषक—'कृषि' भारत का सर्वप्रमुख व्यवसाय है। परंतु अष्टछाप-काव्य के विषय से उसका निकट संबंध न होने के कारण उसमें कृषक-जीवन का वैसा विस्तृत वर्णन नहीं मिलता जैसा अहीरों के जीवन का मिलता है। सूर के अतिरिक्त प्रायः सभी अष्टछापी कवि तो इस संबंध में एक प्रकार से मौन हैं ही, स्वयं सूरदास ने भी कृषक और उसके व्यवसाय के संबंध में अधिक नहीं लिखा है। 'सूरसागर' के एक पद में, रूपक-रूप में, खेती की चर्चा अवश्य इस प्रकार की गयी है कि उससे कृषक की जीवन-चर्या पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। उसमें सूरदास कहते हैं—मैंने इस प्रकार खेती की कि 'बंजर' भूमि में, बिना उसको समतल किये ही, 'हल जोता'। काम और क्रोध मेरे 'बैल' थे, जिनको 'हाँकनेवाला' था मेरा मन और बैलों के कंधों पर रखा जानेवाला 'जुआ' था माया का। मेरी इंद्रियाँ 'किसान' बनीं जिन्होंने विषय-वासनाओं के शीघ्र उगनेवाले 'तृणों' के 'बीज' बोये जिनसे 'नयी लताएँ' उत्पन्न हुई।

'खेती' के लिए 'वर्षा' ही जीवन है। अतएव उक्त पद के अंत में प्रभु से 'कृपा की वर्षा' करने की प्रार्थना कवि सूर करता है। 'खेती' करनेवाले को 'खेतिहर' भी कहा जाता है जिसका उल्लेख सूरदास के एक अन्य पद में हुआ है। ग्रीष्म के बाद पहली वर्षा होते ही खेतों में उगती हुई घास आदि व्यर्थ के पौधे उखाड़कर ही नयी फसल के लिए 'खेतिहर' अपना खेत 'तैयार' करता है। 'खेत' के निचले या गड्ढेवाले भाग को 'खाल' कहते हैं जिसे पाटकर भूमि को समतल कर लेना भी वह आवश्यक समझता है जिससे वर्षा या बाढ़ का जल खेत में न भरा रहे। सूरदास ने किसी अनाज की खेती का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। उनके केवल एक पद में बिना वर्षा के 'धान-अंकुर' के सूखने का उल्लेख अवश्य मिलता है। इसी प्रकार एक अन्य पद में उन्होंने 'धनिया, धान, कुम्हाड़े या कुम्हड़ा' एक ही खेत में न उपज सकने की बात लिखी है। फसल काटने के बाद सारा अनाज खरिहान में जमा होता है जहाँ 'मँड़ाई' होती है। सूरदास के एक पद में 'खरिहान' का उल्लेख भी हुआ है। भूमि तैयार करने के बाद हल से उसमें नालियाँ बनाकर 'बीज' बोने और 'पानी' देने की बात सूरदास ने एक अन्य पद में लिखी है जिससे उनके तत्संबंधी सामान्य ज्ञान का पता लगता है।

अष्टछापी कवियों के समय में खेतों की सिंचाई, वर्षा के अतिरिक्त 'कुओं' में रहट लगाकर भी की जाती थी। इसका उल्लेख परमानंददास के

एक पद में हुआ है जिसमें गोपियाँ अपने नयनों को 'रहटघरी' कहती हैं जो बार-बार भर आते और जल ढरका जाते हैं। सूरदास ने एक पद में 'ऊख पेरकर' गुड़ बनाये जाने की बात कही है और परमानंददास ने भी कोल्हू में 'ऊख पेरे जाने' की चर्चा उपमान-रूप में की है जिससे स्पष्ट होता है कि अष्टछापी कवि 'ऊख की खेती' से भली भाँति परिचित थे।

ग. *बनजारा*—घूम-घूमकर 'व्यापार' करनेवाले को 'बनजारा' कहा जाता था जिनकी स्त्रियाँ 'बनजारिनि' कहलाती थीं। जायसी के 'पदमावत' में भी 'बनिजारा' का उल्लेख हुआ है। सूरदास के एक पद में गोपियों के लिए 'दानी' वेशधारी कृष्ण ने 'बनजारिनि' शब्द का प्रयोग किया है।

घ. *पंसारी*—मेवा, मसाले तथा उन सब सूखी वनस्पतियों आदि के बेचनेवाले को आज 'पंसारी' कहते हैं जिनके नाम 'दान-लीला-प्रसंग' में व्यापारिक वस्तुओं के अंतर्गत पीछे गिनाये गये हैं। 'पंसारी' की स्त्री 'पंसारिनि' कहलाती है। इस शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण ने 'दानलीला'-प्रसंग में गोपियों के लिए किया है।

ङ. *महाजन*—व्यवसायी-वर्ग में 'महाजन' को इस कारण नहीं गिना जाना चाहिए कि वह कोई वस्तु बेचता नहीं; फिर भी इसकी चर्चा यहाँ इसलिए की जा रही है कि जिस प्रकार दूसरे व्यवसायी 'वस्तु' देकर 'ग्राहकों' से लाभ कमाते हैं; वैसे ही 'महाजन' अपना 'धन' दूसरों को देकर 'ब्याज'-रूप में लाभ उठाता है। इस प्रकार महाजन का व्यवसाय है रुपए का लेन-देन करना और 'ऋण' शब्द की प्राचीनता इस बात का प्रमाण है कि यह व्यापार बहुत प्राचीन काल से इस देश में प्रचलित रहा है। 'महाजनी' का व्यवसाय करनेवाला स्वभावतया धनी होना चाहिए। उसकी 'पूँजी' को सूरदास ने 'थाती' कहा है जिससे दूसरों को 'ऋण' दिया जाता है। महाजन से ऋण चाहनेवाले को कुछ 'जमानत' भी देनी पड़ती है जिसका तात्पर्य धन लौटाने के उत्तरदायित्व से होता है और जो 'ऋणी' के 'मुकर जाने' की स्थिति में काम आता है। यदि ऋण चाहनेवाले के घर में 'गथ' या 'पूँजी' नहीं होती, अर्थात् वह निर्धन होता है तो उसे 'जमानत' मिलने में बहुत कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में जिस महाजन का वह ऋणी है अथवा जिस ठाकुर का उसे 'कर' देना है, वह उसे लूट तक लेता है।

महाजन किसी को जो धन 'ऋण' के रूप में देता है, वह 'मूल' कहलाता है। कुछ अवधि के पश्चात् धन दिये जाने के बदले में 'ऋणी' से

जो धन उसे 'मूल' के अतिरिक्त मिलता है वह 'ब्याज' कहलाता है और यही प्राप्त करना महाजन का चरम लक्ष्य होता है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार 'ब्याज' पर रुपए देने का व्यवसाय वैदिक काल में ही आरंभ हो गया था और दस देकर ग्यारह रुपये उगाहने अर्थात् दस प्रतिशत ब्याज लिये जाने का भी उल्लेख उन्होंने किया है। अष्टछापी कवियों ने ब्याज की दर का कहीं उल्लेख नहीं किया है; हाँ, उनके काव्य से यह अवश्य ज्ञात होता है कि साधारण महाजन यह कार्य अपने प्रतिनिधियों से कराते हैं। इसी कारण सूरदास की गोपियों ने 'अक्रूर' को 'मूल' वसूल करनेवाला और ऊधव को 'ब्याज उगाहनेवाला' कहा है। जब तक ऋण लेनेवाला ब्याज सहित महाजन का 'मूल' नहीं लौटा देता तब तक वह 'उऋण' नहीं होता और वैसी स्थिति में ऋणी को 'ऋण-दास' रहकर 'महाजन' की सेवा तक करनी पड़ती थी। यही बात सूरदास के कृष्ण ऊधव से कहते हैं कि गोपियों ने तन-मन-धन अर्पण करके मुझे अपना 'ऋणी' बना लिया है। तुम उन्हें उपदेश से संतुष्ट करके मुझे उनके 'ऋण' से 'उरिन' करो। परंतु यदि वे 'ब्याज'-रूप में दिये गये तुम्हारे उपदेश को अंगीकृत नहीं करेंगी तो मैं उनका 'रिनदास' होकर, ब्रज में बस कर उनकी गायें ही चराया करूँगा। गोस्वामी तुलसीदास के लक्ष्मण ने विविध ऋणों से 'उरिन' होने की बात कहकर परशुराम से जो व्यंग्य किया है, वह भी 'महाजनों' के व्यवसाय से ही संबंध रखता है।

च. *जौहरी और सर्राफ*—हीरे, जवाहरात आदि बेचनेवाले को 'जौहरी' और सोने-चाँदी के आभूषण बेचनेवाले को 'सर्राफ' कहते हैं। अष्टछाप-काव्य में यद्यपि ये शब्द प्रयुक्त नहीं हुए हैं क्योंकि इन व्यवसायियों का संबंध मुख्यतः नगर से रहता है, ग्रामों में इनकी दूकानें नहीं होती; तथापि अनेकानेक जड़ाऊ आभूषणों की चर्चा होने से यह स्पष्ट है कि उक्त व्यवसाय भी समाज में अवश्य प्रचलित रहे होंगे। सूरदास के एक पद में राधा की माता कीर्ति पुत्री के लिए 'लाख टके' में एक 'मोतिसिरी' खरीद लाने की बात कहती है जिसमें सत-सत 'दामों' का एक-एक नग जड़ा था। निस्संदेह वह जड़ाऊ गहने बेचनेवाले किसी 'जौहरी' या 'सर्राफ' के यहाँ से खरीदा गया होगा।

छ. *बजाज*—कपड़ा बेचनेवाला 'बजाज' कहलाता है जिसकी स्त्री को सूरदास ने 'बजाजिनि' कहा है। अन्य अष्टछापी कवियों ने 'बजाज' या 'बजाजिनि' की चर्चा नहीं की है।

ज. *काछी*—फल, तरकारी आदि बेचनेवाले को 'काछी' कहते हैं जिसकी स्त्री 'काछिनि' कहलाती है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने यशोदा के यहाँ एक 'काछिन' के आने की बात लिखी है।

झ. *कुलाल*—मिट्टी के बरतन बनाने और बेचनेवाले को 'कुलाल' या प्रचलित भाषा में 'कुम्हार' कहा जाता है। उसके व्यवसाय से संबंधित दो प्रमुख शब्द अष्टछाप-काव्य मे मिलते हैं—एक है 'चाक' और दूसरा, 'आँवाँ। 'चाक' एक गोल पत्थर होता है जिसको घुमाकर वह हाथ के कुशल स्पर्श से मिट्टी के तरह-तरह के बर्तन बना डालता है। सूरदास और परमानंददास की विरहिणी गोपियों ने अपने चित्त को 'चाक चढ़ा-सा' कहकर हर समय उसके उड़े-उड़े फिरते रहने की बात कही है। घट आदि पात्र बनाने, उन पर तरह-तरह की चित्रकारी करने के उपरांत सुखाने, वर्षा से बचाने, 'आँवे' मे ईंधन से आग जलाकर, उनको घुमा-घुमाकर सब ओर अच्छी तरह पकाने आदि कुम्हार के सभी कार्यों का विवरण सूरदास ने एक पद मे विस्तार से दिया है जिसमे विधाता को 'कुलाल' मान कर रूपक बाँधा गया है।

ञ. *मनिहार*—चूड़ी बेचनेवाला 'मनिहार' कहलाता है। अष्टछाप-काव्य में इस शब्द का प्रयोग नहीं है, परंतु ब्रजबालाओं के हाथ में 'चूड़ियाँ' सदैव पड़ी रहने की चर्चा हमारे कवियों ने की है और कृष्ण के उत्पातों से खीझ कर यशोदा के पास उलाहना ले जानेवाली गोपियाँ 'गोद भर-भर फूटी चूड़ी' ले जाती है। परमानंददास की एक गोपी कृष्ण द्वारा चूड़ियाँ तोड़ दिये जाने पर खीझकर कहती है कि मैं तो अभी नयी चूड़ियाँ पहन कर आयी थी। निस्संदेह ये चूड़ियाँ किसी 'मनिहार' या 'मनिहारिनि' से ही खरीदी गयी होंगी।

ट. *गंधी*—तरह-तरह के इत्र-फुलेल आदि बनाने और बेचनेवाले को 'गंधी' और उसकी स्त्री को 'गंधिनि' कहते हैं। बिहारी ने जिस प्रकार स्पष्ट रूप से 'गंधी' के इत्र बेचने की बात कही है वैसा कोई उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं मिलता। सूरदास के एक पद में चंदन, अरगजा, केसर आदि लेकर दूलह कृष्ण के दर्शन करने जाने की 'गंधिनि' की कामना व्यक्त की गयी है। नंददास के अनुसार 'प्रेम' गंधी का वह सौदा नहीं जो जन-जन के हाथ बिकता है।

ठ. *तमोली और चोलिनी*—पान का 'बीड़ा' लगाकर बेचनेवाले को 'तमोली' और उसकी स्त्री को 'तमोलिनी' या 'चोलिनि' कहा जाता है।

नंददास के एक पद में 'बीरी' खिलानेवाले 'तमोली' की चर्चा है, तो सूरदास ने कृष्ण-विवाह-प्रसंग में 'चोलिनि' के रूप में नंदनंदन को 'बीरा' देने जाकर उनके दर्शन की कामना व्यक्त की है।

ड. *तेली*—तिल, सरसों आदि को कोल्हू में पेरकर तेल निकालने और बेचने का व्यवसाय करनेवाला 'तेली' कहलाता है। इसका मुख्य सहायक है वह 'बैल' या वृष' जो कोल्हू के चारों ओर दिन-रात घूम-घूमकर तेल पेरा करता है। अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने 'तेली' की तो नहीं, उसके 'वृष' की चर्चा अवश्य की है।

ढ. *पारधी*—पक्षी पकड़ने और उनको बेचने का व्यवसायी 'पारधी' या 'व्याध' कहलाता है। सामान्यतया यह जाल लगा कर पक्षियों को पकड़ता है, लेकिन सूरदास के अनुसार, वृक्षों की ऊँची डाल पर बैठ पक्षी को कभी-कभी बाण से घायल करके यह शिकार भी करता है। जाल में पक्षियों को फँसाने के लिए व्याध एक स्थान पर उनके लिए 'चारा' या 'दाना' डालता है और स्वयं आड़ में छिपकर बैठ जाता है। उसके एक हाथ में 'लकुट' या लकड़ी रहती है जिसमें 'लासा' नामक एक चिपचिपा पदार्थ लगा रहता है और दूसरे में पतली तीलियों का बना 'काँपा' रहता है। दाने के लोभ से किसी पक्षी के वहाँ आने पर ज्योंही उसके पंख लासे से चिपकते हैं, वह उड़ने में असमर्थ हो जाता है। तब व्याध काँपे से दबाकर उसे पकड़कर 'पिंजड़े' में बंद कर लेता है। 'पारधी' या 'व्याध' के इस कार्य की चर्चा सूरदास की गोपियाँ कृष्ण के 'रूप-कन लोभी' अपने नेत्रों की स्थिति के वर्णन में करती हैं। व्याध के जाल में फँसे हुए पक्षियों को कभी-कभी सज्जन और पुण्यात्माजन छुड़ा भी देते हैं। उस समय पक्षियों को जैसी प्रसन्नता होती है, उसका अनुभव, सूरदास के अनुसार, जरासंध के मारे जाने पर उसके यहाँ बंदी राजा स्वतंत्र होने पर करते हैं।

ण. *कसाई*—पशुओं को मारकर उनका मांस बेचनेवाला 'कसाई' कहलाता है। अष्टछाप-काव्य में इसके व्यवसाय के संबंध में तो नहीं लिखा गया है, परंतु शिशु कृष्ण को मारने के लिए कंस के सामने स्वयं प्रस्तुत होनेवाले 'श्रीधर बाँभन' के कर्म को सूरदास ने 'कसाई' के कर्म-सा बताया है।

४. *जीविका के विविध साधन-रूप*—

अपने सीमित अर्थ में 'वाणिज्य-व्यवसाय' का संबंध शुद्ध व्यापारी-

वर्ग से है जो मुख्यत: वस्तु-विशेष के उत्पादन अथवा क्रय-विक्रय के द्वारा धनार्जन करता है; परंतु इसके व्यापक अर्थ का संबंध समाज के उन सभी व्यक्तियों से है जो जीवकोपार्जन में समर्थ है और किसी भी प्रकार का कार्य करके जीवन-यापन और परिवार का भरण पोषण करते हैं। यद्यपि भारतीय संस्कृति में आचार्य, वैद्य-जैसे वर्गों को व्यवसायी नहीं माना गया है और समाज का यथार्थ कल्याण भी इसी दृष्टिकोण को अपनाये रहने में है; परंतु इस आदर्श का निर्वाह इस देश में भी, गुरुकुलों की संख्या घट जाने पर, न हो सका और कालांतर में ये वर्ग भी राज्य के वेतनभोगी हो गये। आरंभ में धनी-मानी वर्ग से धनार्जन करके समाज के सामान्य वर्ग की नि:शुल्क सेवा के क्रम का निर्वाह आचार्य और वैद्य किया करते थे। यह बात किसी अतीत की नहीं, पचास-साठ ही वर्ष पहले की है। परंतु आज इनके कार्य शुद्ध 'व्यवसाय' ('प्रोफेशन') बन गये हैं जिसकी पराकाष्ठा इस बात में देखी जा सकती है कि समाज के कल्याण से अधिक ध्यान ये लोग अपनी आय के साधन जुटाने और उनको बढ़ाने की ओर देते हैं। इसी नवीन दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जीविकोपार्जन में समर्थ समाज के विभिन्न वर्गों के व्यवसाय और उनकी जीविका के साधन-रूपों की चर्चा, अष्टछाप-काव्य के आधार पर यहाँ की गयी है। यद्यपि यह ठीक है कि शुद्ध व्यापारिक दृष्टि से किया गया विविध वर्गों का वर्गीकरण भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण रखनेवाले आलोचकों को कुछ खटक सकता है, तथापि अष्टछाप-काल में प्रचलित जीविका के भिन्न-भिन्न साधन-रूपों से एक साथ परिचय प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार का विभाजन सुगम और सुबोध समझकर ही ऐसा करने के लिए इन पंक्तियों की लेखिका को बाध्य होना पड़ा है; अस्तु।

ऊपर जिन व्यवसायियों की चर्चा की गयी है, उनमें प्राय: सभी किसी न किसी वस्तु का व्यापार करते हैं। कोई दूसरों से कुछ खरीद कर अन्यत्र बेचता है और कोई स्वयं वस्तु का उत्पादन करके उसकी बिक्री का प्रबंध करता है। इनके अतिरिक्त समाज में अनेक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो वस्तु-विशेष की खरीद या बिक्री तो नहीं करते, परंतु समाज की सेवा अपनी बुद्धि, योग्यता, कला-ज्ञान अथवा शारीरिक श्रम द्वारा करते हैं जिसके बदले में उन्हें 'धन' मिलता है। ऐसे जीविकोपार्जकों को, स्थूल रूप से, दो वर्गों में रखा जा सकता है—बुद्धिजीवी वर्ग और श्रमजीवी वर्ग।

क. *बुद्धिजीवी वर्ग*—इस वर्ग में किसी भी समाज के मुख्यत: वे जीविकोपार्जक आते हैं जिनके कार्य में बुद्धि और अभ्यास का अत्यधिक

महत्व होता है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस वर्ग के व्यक्तियों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—मान्य वर्ग और सामान्य वर्ग।

अ. *मान्य वर्ग*—इस वर्ग में वे जीविकोपार्जक आते हैं जिनके जीवन का अधिकांश भाग शास्त्रीय और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते ही बीतता है। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित इस वर्ग के जीविकोपार्जकों में आचार्य और वैद्य प्रमुख हैं।

य. *आचार्य*—अष्टछाप-काव्य में दो आचार्यों का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है; एक, संडामर्क का और दूसरे, संदीपन का। प्रथम की 'चटसार' में राजनीति पढ़ने के लिए प्रह्लाद को भेजा गया था और द्वितीय के तपोवन में कृष्ण विद्या पढ़ने गये थे। जिस रूप में हिरण्यकशिपु द्वारा संडामर्क के बुलाये जाने की चर्चा है, उससे जान पड़ता है कि वे राज्य की ओर से वेतनभोगी आचार्य थे; परंतु संदीपन गुरु से कृष्ण हाथ जोड़कर गुरु-दक्षिणा माँगने की प्रार्थना करते हैं।

र. *वैद्य*—रोगों का उपचार करके जीविकार्जन करनेवाला 'वैद्य' कहलाता है। अष्टछाप-काव्य में वैद्य की चर्चा आचार्य-वर्ग से कहीं अधिक है। सूरदास ने दो पौराणिक वैद्यों की चर्चा की है—एक हैं अश्विनीकुमार और दूसरे हैं सुखेन। प्रथम ने च्यवन ऋषि के नेत्रों का उपचार किया था और द्वितीय ने शक्ति लगने से लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर उन्हें जिलाया था। वैद्य सुखेन को लक्ष्मण के रोग का उपचार करने पर क्या मिला, इसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है, परंतु अश्विनीकुमारों को च्यवन ऋषि ने अपने कराये गये यज्ञों में सदैव भाग देने का वचन दिया था।

वैद्यक विषयक अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने ऊधव-गोपी-संवाद में किया है। ऊधव को अपनी ही बकते देखकर गोपियाँ व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि तुमको वात, पित्त और कफ के व्यतिक्रम से 'त्रिदोष' हो गया है तभी तुम इस प्रकार की बकवाद लगाये हो। अपने इस 'बड़े रोग' का मथुरा जाकर उपचार कराओ; क्योंकि इस गाँव में न तो 'मधु-रिपु जैसे बड़े वैद' हैं और न नाना भाँति के 'भेषज' ही हैं। 'सूरसागर' के हनुमान-रावण-संवाद में 'सन्निपात' रोग का उल्लेख हुआ है। इस रोग के होने पर रोगी बराबर बका करता है। रावण को भी बराबर बकते देख कर हनुमान कहते हैं कि तुझे 'सन्निपात' हो गया है। ऊधव-गोपी-संवाद में 'कफ' के व्यतिक्रम का 'राजरोग' होना एक पद में वर्णित है और

गोपियाँ कहती हैं कि इस रोग में 'दही' खिलाना वैसी ही उल्टी बात है जैसी विरहिणियों को परमार्थ का उपदेश देना।

सूरदास के एक पद में पथिक द्वारा 'कालिंदी' के ज्वर-पीड़ित होने की सूचना हरि से कह देने का निवेदन किया गया है और इस प्रकार 'ज्वर' तथा उसके उपचार की चर्चा विस्तार से करने का अवसर कवि को मिल गया है। ज्वर की अधिकता से नायिका का 'काला' और दुर्बल हो जाना, हर समय तड़पन और बेचैनी होना, कभी कभी पसीना बहना, वस्त्रों का मलिन, शरीर का कांतिहीन और बालों का रूखा-सूखा होना, चित्त का हर समय उड़ा-उड़ा फिरना, कभी-कभी उसका बकने लगना आदि सभी बातें कवि ने कालिंदी पर घटित की हैं। 'ज्वर के उपचार' के लिए 'चूर्ण' की बात कहना भी वह नहीं भूला है। इसी प्रसंग में श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का वह प्रसिद्ध पद भी स्मरण हो आता है जिसमें गोपियाँ अपने 'विषम-वियोग-ज्वर' से पीड़ित होने की बात कहकर प्रियतम के 'सुदर्शन' द्वारा उपचार न करने का उलाहना ऊधव से देती हैं; अस्तु। हित की बात कही जाने पर भी अहित की जान पड़ने पर, बुद्धि-भ्रम-जैसा भयंकर रोग बढ़ जाने पर, रोगी की मृत्यु तक की आशंका होने लगती है। सूरदास की गोपियों को भी आशंका होती है कि ऊधव को यही भयंकर रोग हो गया है; अतएव वे उनको कोई 'सुबैद' शीघ्र ही खोज कर उपचार कराने की सलाह देती हैं। एक अन्य पद में सूरदास ने ज्ञान रूपी 'सुभेषज' के खाने से अज्ञान रूपी 'मूरछा' का मिटना बताया है।

नेत्र के रोग-विशेष की चर्चा भी सूरदास ने की है जिसमें नेत्रों में 'बयारि' के भर जाने से वे हर समय खुले रहते हैं, कभी उनके पलक नहीं लगते। इस रोग में बड़ी पीड़ा होती है और किसी तरह कल नहीं पड़ती। इस रोग का उपचार 'सुअंजन आँजना' कवि ने बताया है। च्यवन ऋषि के नेत्रों का उपचार अश्विनी-कुमार ने किया था। अतएव विरह के कारण 'निमेष न लगने के अपने नेत्र-रोग' का उपचार कराने के लिए सूरदास की गोपियाँ ऊधव से अश्विनीकुमार रूपी कृष्ण से शीघ्र ही मिला देने का निवेदन करती हैं। परमानंददास ने 'रोग कुछ और उपचार कुछ' होना बहुत बुरा बताया है। वैद्य-विशेष या रसायनी द्वारा पारे की सहायता से सोने की भस्म बनाये जाने की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में हुई है।

आ. सामान्य वर्ग—इस वर्ग के जीविकोपार्जकों के कार्य में भी अभ्यास और अनुभव का स्थान यद्यपि कम आवश्यक नहीं होता, तथापि

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इनकी आवश्यकता पूर्व वर्ग की अपेक्षा कम ही होती है। हस्तकौशल की दृष्टि से इस वर्ग के व्यवसायियों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक, कलाकार वर्ग और दूसरा, अन्य वर्ग।

य. *कलाकार वर्ग*—अष्टछाप-काव्य में वर्णित जीविकोपार्जकों में से इस वर्ग में चित्रकार, मूर्तिकार, वास्तु-कलाकार और स्वर्णकार को रखा जा सकता है जिनके कार्य का मूल्य उनके हस्तकौशल पर निर्भर करता है।

१. *चित्रकार*—अष्टछाप-काव्य में यद्यपि 'चित्रकार' का स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि 'भीति बिना चित्र' या 'चित्र की पुतरी'-जैसे उल्लेखों से स्पष्ट है कि उनका ध्यान चित्रकार के व्यवसाय की ओर अवश्य था।

२. *मूर्तिकार*—'चित्रकार' के समान 'मूर्तिकार' की भी चर्चा अष्टछापी कवियों ने स्पष्ट रूप से नहीं की है; परंतु 'पाहन की पुतरी'-जैसे उनके उल्लेख मूर्तिकार के व्यवसाय का स्मरण करा देते हैं।

३. *वास्तु-कलाकार*—सभी अष्टछापी कवियों ने अनेक भव्य भवनों का उल्लेख अपने काव्यों में किया है जिससे वास्तुकलाकारों के व्यवसाय का स्पष्ट परिचय मिलता है।

४. *स्वर्णकार*—स्वर्ण या सोने के आभूषण आदि बनानेवाले को 'स्वर्णकार' कहते हैं। अष्टछाप-काव्य में इसके लिए 'सुनार' शब्द प्रयुक्त हुआ है और उसकी स्त्री को 'सुनारि' कहा गया है जो दूलह श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए भूषण गढ़कर ले जाने की कामना करती है। 'स्वर्णकार' या 'सुनार' के मुख्य दो कार्य हैं—गढ़ना और जड़ना। इसलिए 'गढ़ैया' और 'जड़ैया' का उल्लेख सूरदास ने अलग-अलग किया है। इनके एक पद में 'कनक की कलई' का भी उल्लेख हुआ है जो कुछ समय पश्चात् उतर जाती है।

र. *अन्य व्यवसायी*—इस वर्ग में अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित दरजी, बढ़ई, रँगरेज, रजक आदि जीविकोपार्जक आते हैं जिनके कार्यों में उक्त कलाकार-वर्ग की तुलना में कम हस्तकौशल अपेक्षित होता है।

१. *दरजी*—वस्त्र सीने का व्यवसाय करनेवाला 'दरजी' होता है जिसका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में कृष्ण के मथुरा पहुँचने पर, धनुष-भंग लीला के पूर्व, उनके शरीर की नाप के वस्त्र पहनाने में हुआ है। 'दरजी' की स्त्री 'दरजिनि' की कामना, सूरदास के एक पद में, दूलह श्रीकृष्ण के

उपयुक्त 'बागे' रचकर उनके दर्शन की बतायी गयी है। वस्त्र सीने के पूर्व 'दरजी' कपड़े का 'ब्योंत' लगाता है। सूरदास के एक पद में विरहिणी गोपियों ने 'तन' को 'ब्योंत' और विरह को 'दरजी' बताया है।

२. *बढ़ई* काष्ठ-शिल्पी को 'बढ़ई' कहते हैं। इसको कृष्ण-जन्म पर 'बढ़ैया' कहकर सूरदास ने चंदन की लकड़ी को भली भाँति 'खरादकर' पालना गढ़ लाने की आज्ञा दिलायी है। उनके एक अन्य पद में इसे 'बाढ़ई' भी कहा गया है।

३. *रँगरेज*—वस्त्र रँगने का कार्य करनेवाले को 'रँगरेज' और उसकी स्त्री को 'रँगरेजिनी' कहा जाता है। सूरदास की एक मानिनी गोपी कृष्ण की 'पाग' को 'जावक' से रँगी देखकर व्यंग्यपूर्वक पूछती है—क्या कोई 'रँगरेजिनी' मिल गयी थी जिसने जावक से पाग रँग दी है।

४. *रजक*—वस्त्र धोकर जीविकार्जन करनेवाला 'रजक' कहा जाता है। मथुरा पहुँचने पर कृष्ण की मुठभेड़ सबसे पहले कंस के वस्त्र धोते हुए 'रजक' से होती है जिससे वे वस्त्र माँगते हैं और उसके धृष्टतापूर्वक उत्तर देने पर उसको मारकर नृप के सब वस्त्र लुटा देते हैं। सूरदास और परमानंददास की गोपियाँ ऊधव से व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि दिगंबरपुर में 'रजक' का क्या काम रह जायगा ? अर्थात् वहाँ तो उसकी आवश्यकता ही नहीं होगी।

ख. *श्रमजीवी जीविकोपार्जक*—इस वर्ग के जीविकोपार्जकों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—सामान्य श्रमजीवी और विशेष श्रमजीवी।

अ. *सामान्य श्रमजीवी वर्ग*—इस वर्ग में कहार, केवट, नाई, बारी, माली, दाई, धाइ आदि वे पुरुष और स्त्री सेवक-सेविकाएँ आती हैं जो सामान्यतया स्वामी के यहाँ जाकर अपना कार्य करती हैं।

य. *कहार*—यों तो आज घरों में 'कहार' पानी भरने, बर्तन माँजने आदि के सेवा-कार्य के साथ-साथ 'डोला', 'बहँगी' या 'काँवरि' उठाने का काम भी करते हैं, परंतु अष्टछाप-काव्य में उनके दूसरे कार्य का ही उल्लेख है। सूरदास ने जड़भरत की कथा में रहूगण नामक नृपति के 'सुखासन' को उठाकर चलनेवाले 'कहारों' का वर्णन किया है जिनमें से एक के कुछ 'दुख' पा जाने पर उसकी जगह 'जड़भरत' को 'सुखासन' उठाना पड़ता है। एक तो अनभ्यास और दूसरे, पथ के जीवों को बचाकर चलने के

कारण अन्य 'कहारों' का साथ वे ठीक से नहीं दे पाते। गो० तुलसीदास ने भी 'कहारों' को 'काँवरि' ढोनेवाला कहा है।

२. *केवट*—नाव चलाकर जीविकार्जन करनेवाला, अष्टछापी कवियों के अनुसार, 'केवट', 'खेवट', 'धीवर', 'कनधार' 'मल्लाह' आदि कहलाता है। 'करिया', 'खेवइया', 'नाविक', 'माँझी' आदि शब्द भी उसी के लिए प्रयुक्त होते हैं। अष्टछाप-काव्य में जिस प्रकार 'केवट' के पर्यायवाची शब्दों की अधिकता है, उसी प्रकार इस व्यापार की चर्चा भी आलोच्य कवियों ने अधिक विस्तार से की है। 'केवट' अथवा उसकी 'नाव' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मुख्यत: चार रूपों में है। प्रथम पौराणिक प्रसंग राम, लक्ष्मण और सीता के गंगा पार जाने से संबंध रखता है जिसमें केवट, श्रीराम के चरण-स्पर्श से अहल्योद्धार की बात जानकर, अपनी नाव के भी 'बधू'-रूप हो जाने के भय से, बिना उनके चरण धोये नाव पर बैठाने को तैयार नहीं होता। इसी प्रसंग में अपने वर्ग की निर्धनता और नाव द्वारा जीविकार्जन की बात भी केवट कहता है। 'सेमर-ढाक' का 'बेड़ा' बना देने का प्रस्ताव भी उसने किया है।

'केवट' को दिया जानेवाला पारिश्रमिक 'उतराई' कहा गया है। केवल नदी में ही नहीं, समुद्र में भी नाव चलने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। सीता जब हनुमान से पूछती हैं कि 'सत जोजन विस्तार' वाला समुद्र कैसे पार किया, तब हनुमान ने 'राम-प्रताप' और 'सीता-सत्य' को 'नाव और कनधार' बताकर क्षण भर में ही पार हो जाने की बात कही है।

दूसरा प्रसंग यमुना में 'खेवट' बनकर श्रीकृष्ण के नाव चलाने का है जो अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास की कल्पना है जिसमें 'उतराई' लेने की बात भी कही गयी है। नाव खेते समय श्रीकृष्ण 'वृषभानुनंदिनी' की प्रतीक्षा भी करते हैं और दोनों की छवि देखकर 'सरिता-पानी' भी 'विथकित' हो जाता है।

'केवट'-संबंधी तीसरा उल्लेख सूरदास के विनय-पदों में मिलता है जिनमें 'भवसागर' में बिना 'खेवट' के अपनी असहाय अवस्था का वर्णन कवि करता है। उनके एक दूसरे पद में हरि-नाम को 'नौका' बताया गया है: भवसागर में डूबता हुआ व्यक्ति पारिवारिक मोह-ममता में फँसे रहने के कारण जिस पर चढ़ नहीं पाता।

चौथा प्रसंग गोपियों से संबंधित है। सूरदास के एक पद में गोपी-विशेष 'बढ़ी हुई नदी' में पलक रूपी 'पथिक' द्वारा धैर्य रूपी 'नाव' पकड़े न जा सकने की बात कहती है। उनके एक अन्य पद में अपने अश्रुओं से बाढ़ पर आयी हुई जमुना को पार करके श्रीकृष्ण के ढिग जाने के लिए सेज को 'घर-नाँव' बनाने की बात विरहिणी को सूझती है।

ल. नाई—बाल काटकर जीविकार्जन करनेवाला 'नाई' कहलाता है जिसका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है। 'नाई' जाति की स्त्री 'नाइनि' कहलाती है जो धनी परिवारों की महिलाओं की सेवा करती है। सूरदास के एक पद में 'नाइनि' को 'महावर' लगाने के लिए बुलाये जाने की बात कही गयी है।

व. बारी—दोने-पत्तल आदि बनाने-बेचने का व्यवसाय करनेवाला 'बारी' कहलाता है जिसकी स्त्री 'बारिनि' कृष्ण-जन्म पर 'वंदनवार' बाँधती बतायी गयी है।

श. माली—वाटिका अथवा उद्यान के रख-रखाव का कार्य और फूलों का व्यवसाय करनेवाला 'माली' कहलाता है। सूरदास ने कंस के 'माली' की चर्चा की है जो कृष्ण को देखते ही उनके चरणों पर गिरता और पुहुपमाला पहनाता है। 'सारावली' में इस 'माली' का नाम 'सुदामा' बताया गया है। 'माली' की स्त्री 'मालिनि' कहलाती है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'बारिनि' की तरह सूरदास ने लक्ष्मी-सी सजी-धजी 'मालिनि' को भी 'वंदनमाला' और 'तोरना' बाँधते बताया है। कृष्ण-राधा-विवाह के प्रसंग में 'मालिनि', सूरदास के अनुसार, दूलह कृष्ण के लिए माला गूँथकर ले जाने की कामना रखती है।

ष. दाई—बच्चा जनाने का कार्य करनेवाली सेविका को 'दाई' कहा जाता है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'दाई' के कभी 'कल साँझ' से और कभी 'अर्द्धरात्रि' से ही आ जाने का वर्णन सूरदास ने किया है। प्रौढ़ावस्था में पुत्र-जन्म बड़ी प्रसन्नता का अवसर माना जाता है; इसलिए दाई भी कभी 'कंचन-हार' के लिए और कभी 'मोतियों भरे थार' के लिए झगड़ा करती है। दाई यदि 'नार' काटने का कार्य शीघ्र ही न करे तो उसमें 'बयारि' भर जाने का डर रहता है। इसीलिए उसकी सभी माँगें शीघ्र ही पूरी कर दी जाती हैं और वह 'नार' काट कर माता-पिता आदि को बधाई देती है।

स. धाय—जन्म के पश्चात् माता से किसी भी कारण बिछुड़

जानेवाले शिशु को जो स्त्री पालती है, सामान्यतया उसे 'धाय' कहते हैं। इसीलिए सूरदास की यशोदा, देवकी के पास संदेशा भेजते समय अपने को कृष्ण की 'धाइ' कहती हैं।

आ. विशेष श्रमजीवी वर्ग—इस वर्ग में सारथी, महावत आदि वे सेवक आते हैं जिनकी सेवा का लाभ विशेष वर्ग ही उठा सकता है, सामान्य वर्ग नहीं। कृष्ण के अतिरिक्त रथ के हाँकनेवाले किसी अन्य 'सारथी' का वर्णन अष्टछाप-काव्य में दो-एक स्थलों पर ही है। हाथी के महावत का उल्लेख उसमें तीन रूपों में हुआ है। एक, कंस के यहाँ 'कुवलया' नामक हाथी के 'महावत' का जिसे 'गजपाल' भी कहा गया है। दूसरे, पावस-प्रसंग में गोपियों को चारों ओर उमड़ते हुए घन मदन के मत्त हाथी से जान पड़ते हैं जिनको पवन रूपी 'महावत' भी अपने 'अंकुस' से वश में नहीं कर पाता। तीसरे प्रसंग में विरहिणी गोपियों ने अपने मन को मत्त गज कहा है जिसका 'महावत', 'सतगुरु'; 'अंकुस', ज्ञान; और 'साँकर', 'सत्संग' को बताया गया है।

५. *अन्य वर्ग*—

इस वर्ग में आनेवाले व्यक्तियों को मुख्य रूप से पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है—गुणी, मन-रंजनकारी, प्रशस्तिगायक, याचक और तिरस्कृत वर्ग।

क. गुणी—इस वर्ग में आनेवाले जीविकोपार्जकों में प्रमुख है—'गारुड़ी' जिसका उल्लेख अष्टछापी कवियों में सूरदास और नंददास ने विशेष रूप से किया है; क्योंकि उनके परमाराध्य ही 'गारुड़ी' का अभिनय कर रहे हैं। 'गारुड़ी' का मुख्य कार्य है साँप का विष उतारना। 'मुझे काले ने डस लिया', राधा के मुख से इतना सुनते ही सखियाँ उसे लेकर घर आती और तत्काल गुनी 'बुलाने' को कहती हैं। नगर से बड़े-बड़े 'गुनी' अर्थात् 'गारुड़ी' बुलाये जाते हैं। वे सब अपना 'गुन' दिखा-दिखाकर थक गये, परंतु किसी के मंत्र से उसका विष नहीं उतरा। जब सब गारुड़ी हारकर चले जाते हैं तब श्याम को 'बेगि हीं' बुलाने को कहा जाता है। राधा की माता, कृष्ण को लिवाने जाती है; क्योंकि उसको बताया गया है कि कृष्ण ने काले की डसी हुई एक 'बिटिनिया' को तुरंत जिला दिया था। यशोदा कृष्ण को बुलाकर राधा का विष झाड़ आने की बात कहकर पूछती हैं कि क्या तुझे कुछ जंत्र-मंत्र भी आता है? श्याम स्वीकारात्मक उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे तो ऐसा मंत्र आता है कि कैसे भी विषधर

ने डसा हो, मैं जिला लूँगा। राधा के घर आकर उसका विष उतारने का अभिनय करते हुए कृष्ण कभी कुछ पढ़ते हैं, कभी उसके अंगों का स्पर्श करते हैं और तब राधा नेत्र उघारकर माता से पूछती है—यह सब क्या है? पश्चात्, राधा की माता कृष्ण को कंठ से लगाकर, मुख चूमकर घर भेज देती है।

नंददास ने इस प्रसंग का वर्णन कुछ विशेषता के साथ किया है। राधा की सखियाँ उसे सिखाती हैं कि तू माता से 'नाग के काटने' की बात कहना, तब हम श्याम को बुला लायँगी। मूर्छित राधा को लेकर जब सखियाँ घर पहुँचती हैं तब वह दो घड़ी में आँख खोलकर वैसा ही कहती है जिससे माता तत्काल कोई उपाय करने की बात कहते कहते स्वयं मूर्छित हो जाती है। तब एक-एक करके कई सखियाँ यशोदा के पास पहुँचती और सारी बात बताती हैं। यशोदा कृष्ण को बुलाकर तत्काल राधा के यहाँ जाकर उसका उपचार करने को कहती हैं। परंतु कृष्ण सहसा वहाँ जाने को सहमत नहीं होते और सखियों से इस प्रकार पूछते और बात कहते हैं जैसे वृषभानु और उनकी 'कुँवरि' राधा को जानते ही न हों। जब सखियाँ राधा का परिचय देती हैं तब कृष्ण अपने पारिश्रमिक का प्रश्न उठाते हैं। सामान्य 'गारुड़ी' अपने कार्य के बदले में 'अर्थ-द्रव्य' या 'पान-पात' पाकर संतुष्ट हो जाता है, परंतु कृष्ण को यह सब नहीं चाहिए। वे स्पष्ट कहते हैं कि राधा को 'जिलाने' के बदले में मुझे 'अर्थ द्रव्य' या 'पान-पात' की अभिलाषा नहीं है। मैं तो यह चाहता हूँ कि राजा वृषभानु एक 'डोल' गढ़ाकर मुझे उस पर राधा के साथ बैठालें और सब सखियाँ हम दोनों को झुलावें। यदि मेरी यह बात मानी जाय तो मैं चल सकता हूँ। वृषभानु के यहाँ उनके पहुँचते ही राधा की माता ने पौरि तक आकर उनका स्वागत किया और सिंहासन पर बैठाकर पुत्री का हाथ दिखाया। तब कृष्ण ने 'दरस और फूँक' का अभिनय करके सारा विष हर लिया। इसके अनंतर ही 'लड़ैती' ने नेत्र खोल दिये।

ख. मनरंजनकारी जीविकोपार्जक—इस वर्ग में नट या बाजीगर, गनिका आदि नर-नारियों का वह समुदाय आता है जो अपनी कला आदि के प्रदर्शन से समाज अथवा व्यक्ति-विशेष का मनोरंजन करके, उनको सुख पहुँचाकर, जीविका का उपार्जन करता है।

अ. नट या बाजीगर—तरह-तरह के खेल करके जन-समाज का मनोरंजन करनेवालों में 'नट' और 'बाजीगर' का प्रमुख स्थान है। अष्टछापी

कवियों ने 'नट' के 'कला दिखाने' की बात लिखी है और 'नट' का सहयोगी 'बाजीगर' को बताया है। 'नट' की स्त्री 'नटी' या 'नटिनी' स्वयं तो नाचती ही है, 'लकुट' लेकर 'कपि' को भी नचाती है। सूरदास की गोपियाँ कुब्जा को, 'नटिनी' के समान 'लकुटिया' लेकर 'कपि' को नचानेवाली ही कहती हैं। उनके एक पद में 'माया' को 'नटी' बताया गया है जो कपि की भाँति 'जीव' को 'कोटिक नाच' नचाती है और दूसरे में 'मृत्यु' को 'नटी' कहा गया है जो 'माया-रस-लंपट' जीव के 'मूँड़' पर चढ़कर नाचती है।

आ. *गनिका*—पुरुषों का मनोरंजन करनेवाली वारविलासिनी का उल्लेख भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से होता आया है। नगरों में 'गणिका संघों' की स्थापना की चर्चा तो उसमें मिलती ही है, सेना के साथ भी 'वारविलासिनियों' के होने की बात 'हर्षचरित' में कही गयी है। अष्टछापी कवियों ने 'गनिका' का वर्णन तीन प्रसंगों में विशेष रूप से किया है। प्रथम प्रसंग में वह 'शरीर का व्यापार' करनेवाली बतायी गयी है जिसके पुत्र की शोभा समाज में इस कारण नहीं होती कि उसके पिता का पता नहीं होता। परमानंददास के अनुसार ऐसी 'गनिका' धनी का ही आदर करती है। दूसरे, 'गनिका' की चर्चा होली-प्रसंग में की गयी है और प्रफुल्लित लताओं के सुमनों का रस-पान करते हुए भ्रमर 'गनिका' के गात का स्पर्श करते हुए 'विट' अर्थात् कामुक पुरुष-से बताये गये हैं। इसी प्रसंग में सूरदास ने उसके लिए 'बेस्या' शब्द का प्रयोग किया है और होली के उन्माद में 'सठ-पंडित-बेस्या-बधू', सभी का एक-सा निर्लज्ज हो जाना कहा है। तीसरे, 'गनिका' का उल्लेख उस पौराणिक प्रसंग को लेकर किया गया है जिसमें 'सुवा' पढ़ाते समय उसके तर जाने की बात आती है। इस प्रसंग को लेकर परमानंददास ने व्यंग्य किया है कि वह 'गनिका' किस राजा की पुत्री थी जो उस पर इतनी कृपा की गयी? जायसी ने 'गनिका' के लिए 'पतुरिया' शब्द का भी प्रयोग किया है।

इ. *प्रशस्तिगायक जीविकोपार्जक*—इस वर्ग में चारण, सूत, भाट, मागध आदि वे बंदीजन आते हैं जो राजा, स्वामी अथवा अन्य प्रतिष्ठित जन की प्रशस्ति गाकर अपनी जीविका का अर्जन करते हैं। इनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में राम और कृष्ण-जन्मों के अवसरों पर यश-गान करने, दान पाने और आशीस देनेवालों के रूप में हुआ है। सूरदास के अनुसार 'रुक्मिणी-विवाह' के अवसर पर भी 'भाट' 'बिरद बोलते' हैं।

ई. *याचक वर्ग*—इस वर्ग में 'ढाढ़ी', 'जगा' और 'भिखारी' आते हैं जो हर्ष के अवसरों पर परिवार को कुशल मनाकर धन, वस्त्र आदि की याचना करते हैं।

१. *ढाढ़ी*—अष्टछाप-काव्य में 'ढाढ़ी' और उसकी स्त्री 'ढाढ़िनि' का उल्लेख श्रीराम आदि के जन्म के शुभ अवसरों पर नहीं, केवल कृष्ण-जन्मोत्सव प्रसंग में हुआ है जो 'हुरके' या 'ढाढ़' बजाकर नाचते, बधावा गाते और नवजात शिशु की कल्याण-कामना करते हुए धन, वस्त्र आदि की याचना करते हैं। सूरदास और नंददास ने अपने को नंदराय का 'ढाढ़ो' बताया है। चतुर्भुजदास ने दान में मिला सामान 'ढाढ़ी' को 'गयंद' पर लादकर ले जाते कहा है।

२. *जगा*—कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'वृषभानु' के 'जगा' का नंदराय के यहाँ आना और 'लाल का झगा' बधाई में पाने की याचना करना सूरदास ने लिखा है। 'बकसीस' में 'कंचन-तगावाली झगुली' पाकर 'जगा', नंदराय के आँगन में नाचने लगता है।

३. *भिखारी*—अष्टछाप-काव्य में 'भिखारी' का उल्लेख एक तो सामान्य रूप से हुआ है और दूसरे, राम और कृष्ण-जन्म के अवसरों पर सूत, मागध आदि के साथ 'याचक' रूप में। स्पष्ट है कि प्रथम रूप में भीख माँगकर जीवन-यापन करनेवालों की चर्चा है और दूसरे में सामान्य याचक के रूप में जो हर्ष के अवसरों पर याचना करते हैं।

ङ. *तिरस्कृत वर्ग*—उचक्का, गाँठिकटा, चोर, ठग, बटपारी, लठबाँसी आदि नामों से पुकारा जानेवाला वर्ग किसी प्रतिष्ठित व्यवसाय के द्वारा नहीं, दूसरों का धन हड़पकर, चुराकर या छीनकर जीवन-यापन करता है। अतएव समाज में यह वर्ग सदैव हीन दृष्टि से देखा जाता है। अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास और परमानंददास ने इनकी चर्चा विशेष रूप से की है। स्वयं कवि ने अपने अवगुणों की सूची गिनाते हुए अपने को 'बटपारी ठग, चोर, उचक्का, गाँठिकटा और लठबाँसी' कहा है। इनमें से 'ठग' या 'बटपारी' का उल्लेख सूरदास ने तीन प्रसंगों में विशेष रूप से किया है। प्रथम में उन्होंने 'पाँचों' को 'ठग' बताकर उनकी 'ठगौरी' की चर्चा की है। द्वितीय में श्रीकृष्ण के रूप पर लुब्ध गोपियों ने अपने नेत्रों को 'बटपारी' बताया है, तथा कपट-नेह दिखाकर पथिक को गुरुजन से अलग कर लेना, विषैले लड्डू देना, साथ-साथ लगे रहना, 'फाँस' गले में डालकर सारी संपदा लूट लेना आदि उनकी करतूतों का वर्णन रूपक-रूप

में किया है। आगे भी एक पद में सूरदास की गोपियाँ, श्रीकृष्ण द्वारा मुसकाकर कहे गये वचनों का प्रभाव 'ठग-मोदक'-जैसा बताती हैं। तीसरा प्रसंग दान-लीला का है जिसमें कृष्ण ने गोपियों को 'ठगिनी', 'फाँसिहारिनि', 'बटपारिनि' आदि कहा है। 'विषलाडू' खिलाकर और मूर्छित हो जाने पर गले में फंदा डालकर मारने की ठगों की क्रिया इसी प्रसंग में फिर दोहरायी गयी है।

चोर को सदा से दंड दिया जाता रहा है। माखन-चोरी करने पर कृष्ण को बाँधे जाने का दंड मिलना तो प्रसिद्ध ही है। सूरदास की एक गोपी मन-माखन की चोरी करनेवाले 'चोरों के राजा' को विशेष रूप से बाँधकर दंड देने की विचित्र योजना बनाती है।

परमानंददास ने चोरी करनेवाले के लिए 'तसकर' और 'बटपारी' वर्ग के लिए 'बटकुटन' शब्दों का प्रयोग किया है और विरहिणी गोपियों को आभूषण-रहित देखकर उन्होंने 'बटकुटन' द्वारा उनके लूटे जाने की कल्पना की है। ऐसे अपराधियों को, परमानंददास की सम्मति में, लोक में अपयश मिलता है और उनका परलोक नष्ट हो जाता है।

समीक्षा—अष्टछाप-काव्य में प्राप्त वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका-साधन-संबंधी उक्त विवरण से स्पष्ट है कि उन कवियों ने अहीर, कृषक, कुम्हार आदि ग्रामीण व्यवसायियों की चर्चा जितने विस्तार से की है जौहरी, सर्राफ, बजाज आदि के नागरिक व्यवसायियों की उतने विस्तार से नहीं, यहाँ तक कि नगर में प्रचलित अनेक व्यवसायों का तो नाम मात्र उनके काव्य में मिलता है, विवरण नहीं। इस प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि अनेक व्यवसायों या व्यवसायियों का स्पष्ट उल्लेख न मिलने पर भी अष्टछाप-काल में उनका प्रचलित होना या विद्यमान रहना, परोक्ष रूप से तो, सूचित होता ही है। उदाहरण के लिए 'हीरे', 'मोती', 'मणि-माणिक्य', 'स्फटिक' आदि की चर्चा अष्टछाप-काव्य में सर्वत्र मिलती है, अतएव स्पष्ट है कि खान, समुद्र आदि से इनके निकालने, साफ करने, काटने, गढ़ने आदि के व्यवसाय भी निश्चय ही उस युग में प्रचलित रहे होंगे। इसी प्रकार नंद-यशोदा के भवनों के अतिरिक्त अयोध्या, मथुरा, द्वारका तथा अन्यान्य स्थानों के राजभवनों का निर्माण करनेवाले शिल्पियों के साथ-साथ मूर्तिकारों, चित्रकारों आदि के व्यवसाय तो मुगल काल में अत्यंत उन्नति पर थे ही जिसका प्रमाण उस युग की वास्तु, मूर्ति और चित्रकला के नमूनों से मिलता है।

इसी प्रकार अनेक व्यक्ति राजकर्मचारियों के रूप में भी जीविकाजन करते रहे होंगे जैसा कि 'दानलीला-प्रसंग' में नृपति द्वारा श्रीकृष्ण के 'दानी' नियुक्त किये जाने के, गोपियों के प्रश्न से, जान पड़ता है। सूरदास ने 'लिखहार' आदि कर्मचारियों की भी चर्चा की है। मल्ल भी राजा के वेतनभोगी सेवक ही होंगे। इन सबके संबंध में विस्तार से 'राजनीतिक जीवन-चित्रण' में लिखा जायगा। वस्तुत: गीति-काव्य में किसी प्रकार की विस्तृत व्यावसायिक चर्चा के लिए स्थान होता भी नहीं, अतएव, प्रसंगवश, तत्संबंधी जो कुछ भी विवरण उनके काव्य में मिल जाता है, वही बहुत समझना चाहिए। उसको क्रमबद्ध-रूप में प्रस्तुत करके अष्टछाप-कालीन व्यवसाय और वाणिज्य की रूपरेखा का ज्ञान तो हो ही जाता है जिसका श्रेय भी उन कवियों में सबसे अधिक सूरदास को ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि उनके काव्य में तद्विषयक उल्लेख सबसे अधिक हैं।

---

७ राजनीतिक जीवन-चित्रण

अष्टछापी कवि राज्य के प्रलोभनों से दूर थे; इसलिए उनके काव्य में राजनीतिक जीवन-संबंधी विशिष्ट तथ्यों के उल्लेख की आशा नहीं की जानी चाहिए। फिर भी यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि उन कवियों ने अपने काव्य में यत्र-तत्र राजनीति से संबंध रखनेवाली अनेक उपयोगी बातों की चर्चा की है। अध्ययन की सुविधा के लिए उसको पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. राज-वर्ग का संगठन और उद्देश्य, २. शासन-व्यवस्था, ३. सेना और युद्ध, ४. राजस्व और ५. राजनीति-संबंधी अन्य बातें।

१. राजवर्ग का संगठन और उद्देश्य—

अष्टछाप-काव्य में 'राजा' या 'शासक' के लिए 'छत्रपति', 'नरपति', 'नृप', 'नृपति', 'नृपराज', 'भुवाल', 'भूप', 'भूपति', भूपाल', 'महाराजा', 'महीपति', 'राइ', 'राउ', 'राजा' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। ये शब्द महाराज दशरथ, रावण और कंस-जैसे बड़े राजाओं के लिए तो प्रयुक्त हुए ही हैं, नंद और वृषभानु-जैसे व्यक्तियों के लिए भी आये हैं, राज-व्यवस्था की दृष्टि से जिनकी वास्तविक स्थिति साधारण ही थी। नंद को इन कवियों ने 'ब्रजराइ', 'ब्रजराज' आदि भी लिखा और कृष्ण को यदुवंशी होने के कारण 'जादौंकुलराई' अथवा उसके किसी पर्याय से संबोधित किया है। 'राउ', 'राजा' आदि का प्रयोग सूरदास ने अपने लिए भी किया है। एक पद में उन्होंने अन्य पतितों को 'राजा' और अपने को 'सुलतान' कहा है जिससे कवि का संकेत उन मुगल सुल्तानों की ओर जान पड़ता है जिन्होंने अनेक हिंदू राजाओं को परास्त करके अपना राज्य स्थापित कर लिया था।

'दिग्विजय' करनेवाले पौराणिक राजाओं के कृत्यों का स्मरण करके सूरदास ने अपने को 'दिग्विजयी' कहा है और पांडवों के उस 'राजसूय' यज्ञ की भी चर्चा की है जिसमें चारों भाइयों ने चारों दिशाओं के जिन राजाओं को जीता था, वे उपहार लेकर आये थे।

'राजा' की पत्नी के लिए 'रानी' शब्द अष्टछाप-काव्य में आया है और एक राजा के यदि कई 'रानियाँ' हों तो प्रमुख को 'पटरानी' कहा गया है। सूरदास की गोपियाँ कुब्जा पर कृष्ण की कृपा का समाचार पाकर व्यंग्य से उसको 'पटरानी' कहती हैं। श्रीकृष्ण की आठ 'पटरानियाँ' कही गयी हैं जिनके लिए 'सारावली' में 'सकल पटरानी' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

राज्य के जिस नगर में राजा रहता है, उसे अष्टछापी कवियों ने 'रजधानी' या 'राजधानी' कहा है और 'मथुरा' नगर के लिए बराबर 'रजधानी' शब्द का प्रयोग किया है; क्योंकि वही शौरसेन-जनपद का शासन-केंद्र था और वहीं राजा कंस रहता भी था। परमेश्वर श्रीकृष्ण के नित्य लीला-केंद्र वृन्दावन को भी उन्होंने 'रजधानी' कहा है। राजा का निवास-स्थान 'महल' कहा गया है। कंस ने सुफलक-सुत को 'महल' में ही बुलाया है। रानियों और राजकुल की स्त्रियों के रहने का स्थान 'अंतःपुर' कहा गया है और उनके विलासगृह को 'सारावली' में 'रत्नमहल' बताया गया है जिसे कुंभनदास ने 'रंगमहल' कहा है।

राजा जिस स्थान पर उपशासकों, मंत्रियों और अन्य कर्मचारियों के साथ बैठकर शासन-प्रबंध संबंधी विविध समस्याओं पर विचार करता है, उसके लिए 'सभा', 'राजसभा' और 'दरबार' शब्द अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से अंतिम शब्द विदेशियों के संपर्क की देन है और मुख्य रूप से परब्रह्म, श्रीराम, नंदराय आदि की 'आश्रयदायिनी सभा' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। दरबार में बैठे सभासदों को 'दरबारी' कहा गया है। विदेशी शासन के फलस्वरूप तत्संबंधी जो विभाषीय शब्द उस युग में प्रचलित हो गये थे उनका एक बहुत रोचक उदाहरण, 'सभा' या 'दरबार' के अर्थ में, सूरदास के एक पद में मिलता है। 'दानलीला'-प्रसंग में गोपियों से दूध, दही, माखन आदि का 'दान' उगाहनेवाले कृष्ण को सशक्त शासन का भय दिखाती हुई गोपियाँ जब कहती हैं कि हमारा इस प्रकार मार्ग रोक रहे हो, क्या तुम नहीं जानते कि राज्य कंस का है ? उत्तर में कृष्ण कहते हैं—'जाकर कंस से फरियाद करो कि वह हमें 'हजूर' में बुला ले, अर्थात् 'सभा' या 'दरबार' में बुलाकर उचित दंड दे। यहाँ 'सभा' या 'दरबार' के

लिए प्रयुक्त 'हज़ूर' शब्द-जैसे प्रयोग हिंदी साहित्य में अधिक नहीं मिलेंगे। सभा में राजा 'सिंहासन' या 'राजसिंहासन' पर बैठता है जिसे 'कनकसिंहासन' या 'रतनसिंहासन' भी कहा गया है।

सिंहासन पर सामान्यतया 'छत्र' भी लगा बताया गया है जिसके भीतरी भाग लिए 'आतपत्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है। परमानंददास ने एक पद में परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन करते हुए पृथ्वी को 'सिंहासन' और आकाश को उसका 'छत्र' बताया है। सिंहासनासीन राजा पर 'चमर' या 'चँवर' डुलाये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। राजसभा या राजमहल के ऊपर, या राजा की यात्रा के समय, 'ध्वजा-पताका' साथ रहना भी अष्टछापी कवियों ने सर्वत्र लिखा है। राजा का यश-गान करनेवाले 'बंदी', 'मागध' या 'सूत' कहे गये हैं। राजा के द्वार पर, सामान्य रीति से और हर्षावसरों पर विशेष रीति से, 'निसान', 'नौबत', 'दुंदुभी' आदि बजना भी कहा गया है। राजा की घोषणा के साथ, या विशेषाधिकार दिये जाने पर, 'डौंड़ी' बजायी जाने की बात अष्टछापी कवियों में सूरदास ने लिखी है।

राजसभा और राजमहल के सेवकों में प्रमुख 'छरीदार', 'दरबान', 'द्वारपाल', 'पौरिया' और 'प्रतिहारी' कहे गये हैं। राजा का निजी सेवक 'खवास' कहा गया है। श्रीकृष्ण को बुलाने का कार्य अक्रूर को सौंपता हुआ कंस 'खवास' से ही उनके लिए 'सिर-पाँव' मँगाता है। परमेश्वर के 'खवास' का कार्य, अर्थात् उसकी 'खवासी' करनेवाले, 'शंकर' कहे गये हैं। राजा की सेविकाओं को 'चेरी', 'दासी' और 'लौंडी' कहा गया है। दहेज-रूप में भी 'दासियों' के दिये जाने की बात नंददास ने लिखी है।

राजा का संदेश-वाहक सेवक 'दूत' कहलाता है। 'दूत' ही दशरथ के मरण का संदेश देकर भरत को लिवाने जाता है। कंस ने दूत के द्वारा ही कालीदह के फूल भेजने की आज्ञा नंदराय के पास भिजवायी है। कुंभनदास ने दूत को 'बसीठ' और उसके कार्य को 'बसीठी' कहा है।

राजा के राज्य में बसनेवाला जनसमुदाय 'प्रजा' कहा जाता है। भारत में राजतंत्र का प्रचलन बहुत समय तक रहने के कारण भारतीय प्रजा-वर्ग की रुचि सामान्यतया राजनीति की विशेष बातों या शासन-संबंधी जटिल समस्याओं की ओर नहीं रही; जिसका परिचय गो० तुलसीदास की प्रसिद्ध उक्ति, 'कोउ नृप होउ हमहि का हानी' से भी मिलता है। प्रजा तो केवल सुख-शांति से जीवन-यापन करना चाहती है। सूरदास ने जन-

साधारण की इस मनोवृत्ति को लक्ष्य किया था और बड़े सरल ढंग से उन्होंने इसका परिचय भी दिया है। उनकी गोपियाँ ऊधव से कहती हैं— राजा का धर्म, हमारो सम्मति में, केवल इतना ही है कि प्रजा किसी प्रकार सतायी न जाय। अन्य अष्टछापी कवियों ने भी प्रजा-वर्ग का प्रतिपालन राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया है जिसकी शिक्षा चित्रकूटवासी राम, अनुज भरत को देते हैं। सूरदास के एक अन्य पद में राम ने भरत को 'गाइ-बिप्र प्रतिपालन' के साथ-साथ 'प्रजा' के हेतु या 'कल्यान' के कार्य करने का भी उपदेश दिया है। नंददास ने 'धर्म-धरन के काज' धर्मधीर नामक राजा के प्रकटने की बात कही है जिससे स्पष्ट है कि अपनी श्रद्धानुसार प्रजा को धर्म-कर्म करते रहने देने की सुविधा का प्रबंध करना भी राजा का कर्तव्य समझा गया है।

इसी प्रकार प्रजा अपने राजा से न्याय और सुरक्षा की सर्वदा कामना करती है। शासक कैसा भी अन्यायी या अत्याचारी हो, प्रजा को विश्वास रहता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह हमारी रक्षा अवश्य करेगा; कम से कम दूसरों को हम पर अत्याचार तो नहीं ही करने देगा। प्रजा के ऐसे विश्वास का उदाहरण परमानंददास की उस ग्वालिनि के कथन में मिलता है जो कंस को अन्यायी और अत्याचारी जानते हुए भी, कृष्ण से कहती है कि यदि तुमने बरबस 'दान' माँगने की आदत न छोड़ी तो 'राव जू' के आगे जाकर कहूँगी, अर्थात् कंस के दरबार में फरियाद करूँगी। इसी प्रकार प्रजा पर किसी प्रकार का अत्याचार किये जाने पर अभियोग लगाकर उसको राजा के दरबार या न्यायालय में बुलवाने का अधिकार भी पीड़ितजन शासकीय संरक्षा-संबंधी उक्तविश्वास के फलस्वरूप ही समझता है। परंतु दूसरी ओर यदि अत्याचारी विशेष अधिकार रखता है अथवा स्वयं इतना सबल है कि शासक से किसी तरह नहीं दबता, तब वह स्वयं कहता है कि हम किसी के दबैल नहीं हैं, तुम जिससे चाहो जाकर हमारी शिकायत कर दो। सूरदास के कृष्ण भी गोपियों का दूध, दही, माखन, घी आदि छीनकर उनसे कहते हैं कि जाकर कंस से 'फरियाद' करो जिससे वह हमें 'हजूर' में बुला ले, अर्थात् दरबार में बुलाकर दंड दे। इस प्रकार के उदाहरण, परोक्ष रूप से, राज-वर्ग के संगठन के उद्देश्य पर भी प्रकाश डालते हैं।

शक्ति और साधन-हीनता के कारण प्रजा को अन्याय और अत्याचार कितना भी सहना पड़े, किसी न किसी रूप में वह उसको व्यक्त अवश्य कर देती है। उदाहरण के लिए ऊधव से कही हुई गोपियों की एक

उक्ति है जिसमें 'कुब्जा' पर 'चाम के दाम' चलाने की अनीति का अभियोग उन्होंने लगाया है। इतिहास में 'चाम के दाम' चलाने का प्रयत्न निजाम भिश्ती ने किया था। तभी से 'अन्याय और अनीति' करने के अर्थ में यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी जान पड़ती है जिसके माध्यम से प्रजा-वर्ग अपने युग के अन्यायी और अनीतिकारी शासकों के व्यवहार की ओर संकेत करता आया है।

राजा के कर्तव्यों का इस प्रकार वर्णन करना उस युग में विशेष आवश्यक भी था, कारण कि उस समय के शासकों में अधिकता उनकी थी जिनका मुख देखने में भी सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास आदि को 'दुख लगता' था; परंतु विवशता यह थी कि उनको 'राजा-राय' कहकर 'प्रणाम' करना पड़ा था।

२. *शासन-व्यवस्था*—

राजा को निरंकुश होने से रोकने और शासन की व्यवस्था सुचारु रूप से करने के लिए कुछ राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति सदा से होती आयी है जिनकी मंत्रणा से ही सामान्यतया राज-कार्य होता है। ऐसे राजकीय कर्मचारियों में 'मंत्री' प्रधान होता है। इनकी संख्या कहीं सैंतीस बतायी गयी है और कहीं दस। सूरदास ने रावण के मंत्रियों के लिए बहुवचन-सूचक 'मंत्रिनि' शब्द का प्रयोग किया है जिससे स्पष्ट है कि उसके कई मंत्री थे। अन्यत्र सूरदास ने कहीं एक मंत्री का उल्लेख किया है और कहीं दो का। मंत्री के लिए विदेशी संपर्क के कारण 'उजीर' या 'वजीर' शब्द का भी प्रयोग अष्टछाप-काव्य में दो-एक स्थलों पर मिलता है जिसमें 'पाप' को शरीर-रूपी राज्य का 'उजीर' बताया गया है। 'मंत्री' का ही समकक्ष अधिकारी होता है 'दीवान' जिसके अधीन 'कर और मालगुजारी' अर्थात् 'राजस्व' विभाग रहता था। 'वजीर' यदि 'दीवान' भी होता तो 'राजस्व' विभाग का भी अधिकारी हो जाता है; अस्तु। 'दीवान' शब्द का प्रयोग सूरदास ने ध्रुव के लिए किया है तो परमानंददास ने 'जसुदानंदन' को ही 'ठाकुर' और 'दीवान', दोनों कह डाला है। 'मंत्री' आदि की नियुक्ति का वास्तविक उद्देश्य, जैसा कि राम ने भरत को समझाया है, 'प्रजा के हेतु' पर विचार करना बताया गया है, यद्यपि सूरदास के अनुसार कभी-कभी ज्ञान-स्वरूप मंत्री ऐसे भी होते हैं जो निरंकुश शासक को उचित परामर्श देने का या तो अवसर ही नहीं पाते या सच्ची बात कहते सकुचाते हैं।

सुशासित राज्य में मंत्री के बाद राजपुरोहित का स्थान होता था, यद्यपि उसकी गणना राजकीय कर्मचारी में नहीं की जानी चाहिए। कंसादि अत्याचारीशासकों के राजपुरोहितों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है। केवल सूरदास के श्रीराम ने चित्रकूट में भरत को मंत्रियों के साथ-साथ राज पुरोहित वशिष्ठ के सत्परामर्श से ही प्रजा हेतु विचारने की शिक्षा दी है।

अन्य राजकीय कर्मचारियों में 'अमीन', 'मुस्तौफी', 'काजी', 'कोतवाल', 'अहदी', 'मुजमिल', 'मोहरिल', 'सिकदार', 'जासूस' आदि का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। 'अमीन' का मुख्य कार्य प्रजा से 'अमल' अर्थात् राजकर आदि जमाकर राज-कोष की वृद्धि करना था जिसकी ओर सूरदास ने भी संकेत किया है। 'मुस्तौफी' संभवत: आय-व्यय-परीक्षक कर्मचारी था जो 'वजीर' की सलाह से काम करता था। सूरदास ने 'चित्रगुप्त' को 'मुस्तौफी' का कार्य सौंपा है। 'काजी' का काम न्याय करने का था; परंतु जब अभियोग लगानेवाला और अभियुक्त, दोनों एक हों तो 'काजी' कुछ नहीं कर सकता; इसी कारण सूरदास ने कहा है कि दो 'मन मिलानेवाले' जब एक है तो काजी उनका क्या कर सकता है? 'काजी' कौन-कौन दंड दे सकता था, इस बात की चर्चा तो अष्टछाप-काव्य में नहीं है, परंतु कुछ 'दंडों' का उल्लेख उसमें अवश्य हुआ है; जैसे 'चोरी' करने पर 'बाँधा जाना', 'अंग' का 'खंडन' करना, 'डाँड' वसूलना आदि। 'फाँसी' और 'सूली' की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है।

'कोतवाल' नामक पदाधिकारी अष्टछाप-कालीन शासन-व्यवस्था में बहुत महत्व का था; परंतु सूरदास ने 'दगाबाज कुतवाल' की चर्चा की है जिससे यह संकेत होता है कि जब यह कर्मचारी अपने दायित्व का ध्यान नहीं रखता, तब प्रजा का सर्वस्व तक लूट लेता था। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित 'अहदी' मुहासिब, 'मोदी', मोहरिल', 'पटवारी', 'जासूस' आदि अन्य राजकीय कर्मचारी थे। सूरदास के एक पद में यशोदा ने नंद को 'ब्रज परगन सिकदार' कहा है जिससे स्पष्ट होता है कि अष्टछाप-काव्य-काल में 'जिला' कई 'परगनों' में बँटा होता था और इनका प्रधान अधिकारी 'शिकदार' कहलाता था। 'लिखने-पढ़ने' अथवा 'आय-व्यय' का लेखा आदि रखनेवाला 'लिखहार' कहा गया है और उसके कार्यालय को परमानंददास ने 'दफ्तर' कहा है।

२. सेना और युद्ध—

देश की सुरक्षा के लिए 'सेना' की आवश्यकता होती है जिसका

प्रमुख कार्य आक्रमणकारी शत्रुओं से उसकी रक्षा करना होता है। राज्य-विस्तार के उद्देश्य से दूसरे देशों को जीतने के लिए भी 'सेना' चाहिए। दूसरों पर आक्रमण किया जाय, अथवा दूसरों के आक्रमण से रक्षा की जाय, दोनों स्थितियों में सेना 'युद्ध' करती है। अष्टछाप-काव्य में यद्यपि पौराणिक प्रसंगों में 'दिग्विजय' की चर्चा है, परंतु उन उदार और शांतिप्रिय कवियों ने उक्त उद्देश्य से किये गये किसी युद्ध की चर्चा नहीं की है। उन्होंने तो मुख्यतः ऐसे युद्धों की चर्चा की है जो आक्रमणकारियों या अन्यायियों के अत्याचार और अन्यायपूर्ण प्रयत्नों को असफल करके अपनी शक्ति से उनके दाँत खट्टे करने के लिए उनके आराध्य को करने पड़े थे।

'सेना' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'कटक', 'चमू', 'दल', 'फौज', 'लश्कर', 'सैना' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पौराणिक प्रसंगों में 'अक्षौहिणी सेना' का उल्लेख हुआ है। महाभारत के युद्ध में तो केवल अठारह अक्षौहिणी सेना होने की बात प्रसिद्ध है, परंतु 'सारावली' में जरासंध का साठ 'अक्षौहिणी' सेना लेकर श्रीकृष्ण से लड़ने आना और अष्टछाप के परमाराध्य का क्षण मात्र में सबका संहार कर देना लिखा गया है। 'सारावली' में जरासंध के सहायक 'कालयवन' की सेना में तीन 'कोटि भट' बताये गये हैं। राम की सेना में 'पदुम-कोटि' योद्धा होने की बात सूरदास ने लिखी है। 'सेना' में गज, अश्व, रथ और पदाति या पैदल अथवा 'पायक' होने से उसे 'चतुरंगिणी' कहा गया है। सेना के वीरों को अष्टछापी कवियों ने 'योद्धा', 'भट', 'सुभट', 'सूरमा' आदि कहा है।

'सेना' के नायक को अष्टछापी कवियों ने 'सेनापति' और 'फौजपति' कहा है जो निस्संदेह मुगलकालीन 'फौजदार' से भिन्न अधिकारी था।

युद्ध के लिए सजते समय सभी सैनिक शरीर की रक्षा के लिए 'कवच' या 'सनाह' पहनते थे और सिर की रक्षा के लिए 'शिरस्त्राण' लगाते थे। सेना का प्रत्येक सैनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रहता है जिनको अष्टछाप-काव्य में 'आयुध' 'हथियार' और 'शस्त्र' आदि कहा गया है। जिन शस्त्रों का उसमें उल्लेख हुआ है, उनमें 'असि', 'करवार' या 'तरवारि', 'छुरी', 'नेजा', 'बरछी', 'भाला' या 'भालि' 'सांग', 'सूल' या 'त्रिशूल', 'शक्ति', 'सेल्ह' आदि प्रमुख हैं। अस्त्रों में, अष्टछापी कवियों ने 'आगर', 'गदा', 'मुग्दर', 'मूसल' आदि का उल्लेख किया है। श्रीकृष्ण का 'सुदर्शन चक्र' भी इसी वर्ग में समझना चाहिए।

'धनुष' नामक 'अस्त्र' का अष्टछाप-काव्य में सबसे अधिक उल्लेख हुआ है और उसके लिए 'कमान', 'कोदंड', 'चाप', 'धनु,' 'धनुहियाँ', 'पिनाक' आदि अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'धनुष' चलानेवाला 'धनुषधर' कहा गया है। 'धनुष' से छोड़े जानेवाले 'तीर' के लिए 'बान', 'सर', 'सायक' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

अष्टछाप-काव्य में अनेक ऐसे अस्त्रों की भी चर्चा है जो मंत्र की शक्ति से चलाये जाते थे। इस वर्ग के अस्त्रों में उन्होंने 'दिव्य बान', 'ब्रह्मास्त्र' या 'ब्रह्मबान' आदि की चर्चा की है। 'ब्रह्मफाँस' और 'नागफाँस' की भी गणना मंत्राभिषिक्त आयुधों में की जानी चाहिए; प्रथम से मेघनाद ने हनुमान को और दूसरे से राम-लक्ष्मण को बाँधा था।

उक्त अस्त्र-शस्त्रों के अतिरिक्त 'पलीता' लगाकर छोड़े जानेवाले 'गोलों' की भी चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। यद्यपि ऐसे अस्त्रों का उल्लेख 'शुक्रनीति' में भी पाने की बात कुछ विद्वानों ने लिखी है, तथापि इतिहासकारों ने अकबर के 'तोपखाने' का वर्णन किया है। जो हो, अष्टछापी कवि इनसे परिचित अवश्य थे और उन्होंने 'कमान' में 'दारू' भरकर 'पलीता' लगाये जाने की बात स्पष्ट शब्दों में लिखी है जिससे भयंकर 'गर्जन' करता हुआ 'गोला' छूटता है, और पल भर में 'गढ़' जीत लिया जाता है।

बाह्य आक्रमणकारियों से देश की सुरक्षा के लिए 'दुर्ग' या 'गढ़' बनाये जाते थे जिनकी रक्षा सेना करती थी और 'दुर्ग' का पतन होने पर राज्य 'विजित' समझ लिया जाता था। 'दुर्ग' या 'गढ़' को अधिक से अधिक सुरक्षित और दृढ़ बनाने का प्रयत्न अष्टछाप-काल में किया जाता था और अनेक दुर्ग उस समय ऐसे थे जो 'अजेय' समझे जाते थे। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने दो दुर्गों का वर्णन विशेष रूप से किया है। पहला है लंका का दुर्ग जो नगर के चारों ओर बना था अर्थात् दुर्ग के मध्य में नगर इस तरह बसा था कि वह सब तरह से सुरक्षित था। लंका का दुर्ग 'अभेद्य' समझा जाता था और उसमें 'वज्र के किवाड़' लगे थे। दुर्ग के चारों ओर समुद्र जैसी गहरी और चौड़ी खाई थी जिसके कारण रावण सदा निश्चिंत रहता था। उसकी इस निश्चिंतता को लक्ष्य करके ही विभीषण कहता है कि अपने दुर्ग की दुर्गमता और समुद्र-जैसी खाई देखकर गर्व मत करो, चार-पाँच दिन में ही 'लंका' दूसरे की हो जायगी।

सूरदास द्वारा वर्णित दूसरा दुर्ग 'द्वारका' का है जिसका निर्माण

श्रीकृष्ण ने कराया था। सागर के तीर पर बसे हुए कंचन के इस 'कोट' के चारों ओर 'गोमती-जैसी' खाई थी।

शत्रु के आक्रमण करने पर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सेना दुर्ग आदि की रक्षा के लिए युद्ध करती है। अष्टछापी कवियों ने 'युद्ध' के लिए 'जुद्ध', 'रन', 'लराई', 'समर', 'संग्राम' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। कभी-कभी तो युद्ध का निर्णय एक ही दिन में हो जाता था और कभी कई-कई दिन तक युद्ध चला करते थे। महाभारत का युद्ध अठारह दिन तक चलना तो प्रसिद्ध ही है जिसमें, सूरदास के अनुसार, भीष्म ने दस दिन तक युद्ध किया था।

सामान्य मानवीय रीति के युद्ध के अतिरिक्त अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'मायावी' युद्धों का भी वर्णन किया है। साल्व और दंतवक्र के युद्ध में इसके उदाहरण मिलते हैं जिसमें कभी तो युद्धकर्ता विराट् रूप धारण करता है और कभी अत्यंत लघु रूप; कभी प्रकट हो जाता है, कभी अलक्षित; कभी कोई योद्धा रणक्षेत्र में अंधकार करने के लिए 'तिमिर बान' छोड़ता है तो दूसरा उसको नष्ट करने के लिए 'दीप्तिबान'; कभी विपक्ष के सैनिकों को भयभीत करने के लिए युद्ध-क्षेत्र में अकस्मात् बाण-वर्षा के साथ अग्नि-वर्षा होने लगती है; एवं कभी रक्त और मांस की। इसी प्रकार सैनिकों को भ्रम में डालने के लिए मायावी युद्ध करनेवाले कभी-कभी 'थल' को 'जल' और 'जल' को थलवत् दिखाकर विपक्षी-दल को विचलित करने की योजना बनाते हैं।

सामान्यतया आक्रमणकारी, सेना के नष्ट हो जाने पर, लौट जाया करते थे; जैसे साठ अक्षौहिणी सेना नष्ट हो जाने पर जरासंध लौट जाता है। परंतु जब आक्रमणकारी जीत जाता था तब विपक्षी के राज्य पर उसका अधिकार हो जाता था। रावण की मृत्यु पर विभीषण उसके राज्य खोने की बात स्पष्ट रूप से कहता है। ऐसी स्थिति में पराजित के राज्य में जेता की 'दुहाई' फेरी जाती थी। रावण को समझाता हुआ विभीषण कहता है कि यदि तू सावधान नहीं होगा, तो राम-लक्ष्मण सेना सजा कर आ गये हैं; लंका पर शीघ्र ही उनका अधिकार हो जायगा और नगर में उनकी दुहाई फिर जायगी।

रणक्षेत्र के लिए 'खेत' शब्द का प्रयोग 'जरासंध-युद्ध'-प्रसंग में हुआ है। युद्धक्षेत्र के भयंकर विनाश की ओर भी अष्टछापी कवियों ने कहीं-कहीं संकेत किया है। ध्वजा, पताका, रथ-चक्र आदि के टूटने; योद्धाओं के

हाथ, पैर, सिर आदि के कटने; कबंधों के गिरने आदि के दृश्यों में रुचि न रहने पर भी दो-एक स्थलों पर वे ऐसी बातों उल्लेख करते हैं। युद्ध-क्षेत्र में रक्त की भयंकर कीच के बीच घायल पड़े वीरों के अर्द्धमृतक एवं मृतक शरीरों का स्यार, गिद्ध आदि के द्वारा खाया जाना भी अष्टछाप-काव्य में वर्णित है।

४. राजस्व

राजपरिवार, राजकीय कर्मचारी, सेना के पदाधिकारी आदि के वेतन तथा प्रशासकीय व्यवस्था आदि के लिए जो धन चाहिए, वह विविध 'करों' के रूप में प्रजा से लिया जाता है। कालिदास के अनुसार प्रजा के उपकार के लिए ही राजा उससे 'कर' लेता है जैसे सूर्य सहस्र गुणा दान के लिए ही पृथ्वी से जल लेता है। 'कर'-रूप में राजा को प्राप्त होनेवाला धन राज्य का 'अंश' कहलाता था। कृष्ण और बलराम को लिवाने आये हुए अक्रूर से, इसी तथ्य की ओर संकेत करती हुई, माता यशोदा कहती हैं कि राजा को दिया जानेवाला अंश 'दूना' ले लो, परंतु सुतों को देकर मैं क्या करूँगी ?

यों तो राज्य की आय कई विभागों से होती है तथापि भारत-जैसे कृषि-प्रधान देशों में 'भूमिकर' या 'लगान' ही राज्य की 'आय' का प्रमुख साधन है। अष्टछाप-काव्य में भी अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा 'कर' दिये जाने का स्पष्ट उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। चतुर्भुजदास और कुंभनदास की गोपियाँ 'दान' माँगनेवाले कृष्ण से व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि बाप तो राजा कंस को 'कर' देकर उसके अधीन है और बेटा स्वयं 'जगाती' अर्थात् कर उगाहनेवाला बना घूमता है। नंददास के अनुसार 'कर' देने का दिन निश्चित रहता था और करदाता को 'कर' जमा करने स्वयं जाना पड़ता था। कृष्ण के जन्म के कुछ ही दिन बाद 'कर' जमा करने का दिन आ जाने पर नंद जी विवश होकर उसके लिए मथुरा जाते हैं। परमानंददास के अनुसार निश्चित दिन के भीतर 'कर' न पहुँचने पर राजा या उसका अधिकारी दूत भेजकर 'कर' मँगवा लेता था।

उक्त 'कर' के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में 'दान-लीला'-प्रसंग में 'चुंगी'-जैसे 'कर' का वर्णन है जो प्रायः ऐसे मसालों आदि पर लिया जाता था जो दूर के स्थानों से लाये जाते थे। गोविंदस्वामी के कुछ पदों में 'लौंग-सुपारी' पर इस प्रकार के 'कर' लिये जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। 'कर' उगाहनेवाले को 'जगाती', 'दानी' आदि कहा गया है। ऐसे अधिकारियों

को शासक की ओर से लिखित आज्ञापत्र या प्रमाणपत्र मिलता था। इसी से गोविंदस्वामी की गोपियाँ 'दान' माँगनेवाले कृष्ण से पूछती हैं कि तुम स्वयं ही 'दानी' बन गये हो या तुम्हें किसी ने नियुक्त किया है। 'पोता', 'बट्टा', 'दस्तक', 'अवारजा', 'फरद', 'तगीरी' आदि शब्द भी 'राजस्व' से संबंधित हैं जिनका प्रयोग केवल सूरदास ने किया है।

५. *राजनीति-संबंधी अन्य बातें*—

अष्टछाप-काव्य में यत्र-तत्र ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे उसके रचयिताओं के राजनीति-संबंधी विचारों पर कुछ प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ, राजनीति के नियमानुसार 'दूत' अवध्य समझा जाता था। रावण जब हनुमान के कार्यों से क्षुब्ध होकर इनको मार डालने की आज्ञा अपने सेवकों को देता है तब मंत्रीगण उसको यह कहकर ही रोकते हैं कि भला किसी राजा ने दूसरे के 'दूत' को मारा है ?

सूरदास के एक पद में ऊधव से गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण ने 'राज पदवी' पायी है और तुम उनके सहायक, सखा, सभी कुछ हो। तुम्हें तो ऐसे अवसर का लाभ उठा कर कुछ 'कमा' लेना चाहिए था, इधर-उधर उपदेश देते फिरकर क्यों व्यर्थ अवसर खो रहे हो ? स्पष्ट है कि अष्टछाप-काल में भी अवसर से लाभ उठानेवाले लोगों की कमी नहीं थी।

कंस की कपटपूर्ण नीति के संबंध में भी सूरदास ने एक रोचक संकेत किया है। उसकी योजना अक्रूर के द्वारा बलराम और कृष्ण को बुलवाने की है; अतएव प्रातःकाल जब अक्रूर कंस के भवन में जाते हैं तब नृपति 'खवास' को सैन करके 'सिरोपाँव' मँगाता है और अपने हाथ से लेकर अक्रूर को देता है। इसी प्रकार अपनी आज्ञा का पालन कर दिये जाने पर उसने 'बकसीस' देने की बात भी कही है। कंस ने अक्रूर से कहा है कि कृष्ण उरग-पीठ पर कमल लाद कर ले आये थे, तो अब मैं उन्हें 'बक्सीस' दूँगा।

समीक्षा—अष्टछाप-काव्य में चित्रित राजनीतिक जीवन का जो परिचय ऊपर दिया गया है, उसके संबंध में दो बातें ध्यान में रखने की हैं। एक तो यह कि अष्टछापी कवि स्वभाव और परिस्थिति, दोनों कारणों से राजनीतिक संपर्क से सदैव दूर रहे। 'भक्त को कहा सीकरी काम' जैसी उनकी उक्तियों से इस कथन की पुष्टि भी होती है। अतएव तद्विषयक जीवन के संबंध में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सामान्य रूप से उनकी बहुज्ञता की ही देन है, घनिष्ठ संपर्क द्वारा अर्जित ज्ञान के प्रकाशन की प्रवृत्ति का फल

नहीं है। राजनीतिक जीवन-विषयक उनकी जानकारी जागरूक नागरिक जैसी है जिसके लिए उस क्षेत्र से सर्वदा दूर रहनेवाले अष्टछापी कवियों की प्रतिभा पर पाठक को हर्ष-मिश्रित आश्चर्य होता है।

दूसरी बात यह है कि अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त 'राजनीति'-संबंधी शब्दावली में, जैसा पीछे कहा जा चुका है, अनेक शब्द अरबी-फारसी के हैं जिनका प्रचलन भारत में अष्टछाप-काल तक, लगभग तीन सौ वर्षों तक विदेशी शासन रहने के कारण, हो चुका था। ऐसे अनेक शब्द 'आइने अकबरी'-जैसे तत्कालीन ग्रंथों में और उस युग को लेकर लिखे गये आधुनिक इतिहासों में भी मिलते हैं। अतएव इतिहास के अध्येता को अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त वैसे शब्दों में अध्ययन की पर्याप्त रोचक सामग्री मिल सकती है।

———

८ भक्ति और धर्म-संबंधी विचार

अष्टछापी कवि वल्लभ-सम्प्रदायी भक्त थे। अतएव उनके काव्य में भक्ति और धर्म-संबंधी जो विचार मिलते हैं वे प्रमुख रूप से महाप्रभु वल्लभाचार्य के तत्संबंधी सिद्धांतों से प्रभावित हैं। साथ-साथ व्रजप्रदेश के जन-समाज के तद्विषयक परंपरागत विचारों का भी उन्होंने परिचय दिया है। अतएव अष्टछाप-काव्य में वर्णित भक्ति और धर्म-संबंधी विचारों का अध्ययन तीन शीर्षकों के अंतर्गत करना उचित जान पड़ता है—१. सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप, २. सामान्य धार्मिक विचार और ३. धार्मिक कृत्य।

१. सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप—

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवान के प्रति माहात्म्य-ज्ञानपूर्वक परम सुदृढ़ स्नेह को 'भक्ति' कहा है और उसको केवल प्रभु के अनुग्रह द्वारा ही साध्य बताया है। यही 'पुष्टिमार्गीय' भक्ति है जिसमें प्रीति और करुणा का महत्व सर्वोपरि है। इसी से इसको 'रागानुगा' भक्ति भी कहा गया है और यही संक्षेप में 'पुष्टि संप्रदाय' में मान्य भक्ति का स्वरूप है। 'प्रभु-अनुग्रह' की पात्रता आने पर भक्त सदैव के लिए निश्चिंत हो जाता है; क्योंकि इसके अनंतर परमाराध्य ही भक्त के समस्त कार्यों का नियामक रहता है। प्रभु का प्रेम और अनुग्रह पाने तथा अविद्या इत्यादि नाना प्रकार के दोषों का नाश करने के लिए महाप्रभु ने दृढ़ विश्वास-पूर्वक श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन अंगोंवाली नवधा-भक्ति करने का उपदेश दिया है। ऐसा करने से प्रेम की वह पूर्णता

आती है जिससे भगवद्धर्म प्रादुर्भूत होते हैं। कारण यह है कि सूरदासादि ने भगवान को प्रेममय ही माना है जो राव-रंक, नर-नारी, सभी के प्रेम को स्वीकार करता है और केवल प्रेम के कारण ही जन्म लेना तथा अनेक लीलाएँ करता है। उनकी सम्मति में, प्रेम केवल प्रेम से ही उपजता है। सच्चे प्रेम से ही संसार बँधा है, उसी से परमार्थ, और यहाँ तक कि, गोपाल भी मिल जाते हैं। नंददास ने भी प्रेम की अनन्यता पर बल देते हुए कहा है कि वह एक के प्रति ही होता है, गंधी के सौदे की तरह जन-जन के हाथ नहीं बिकता।

भक्ति के उक्त नौ प्रकारों में से प्रथम छह 'कृत्य' हैं और अंतिम तीन हैं 'भाव'। 'कृत्यों' में प्रथम तीन का संबंध ईश्वर के नाम और लीला-रूपों से, और अंतिम तीन अर्थात पाद-सेवन, अर्चन और वंदन का संबंध उनके विग्रह-स्वरूपों से है। दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन भावों के साथ-साथ वात्सल्य और मधुर भावों से भी भगवान की उपासना का वल्लभ-संप्रदाय में महत्व है जिसको सम्मिलित रूप से 'प्रेमरूपा' या 'प्रेमलक्षणा' भक्ति कहा गया है। 'सारावली' में भक्ति के इन दसों प्रकारों का उल्लेख है और 'परमानंदसागर' में श्रवण में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेव, स्मरण में प्रहलाद, पाद-सेवन में कमला, अर्चन में पृथु, वंदन में सुफलक-सुत, दास्य में हनुमंत, सख्य में अर्जुन, आत्म-समर्पण में बलि और प्रेमासक्ति में गोपियों को आदर्श-स्वरूप बताकर 'दसधा' भक्ति का उल्लेख किया गया है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भक्ति के प्रथम नौ प्रकारों से अधिक महत्व 'प्रेम-लक्षणा' का मानकर उसकी आदर्शस्वरूपा गोपियों को 'प्रेम की ध्वजा' कहा है। सूरदास की सम्मति में, बिना हरि-कृपा के 'प्रेमाभक्ति' नहीं होती और नंददास का मत है कि भगवान अतुलित प्रेमभाव से ही वश में होते हैं। नवधा भक्ति के विविध रूप इस 'प्रेमलक्षणा भक्ति' की प्राप्ति के ही साधन हैं जिनके संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार नीचे दिये जाते हैं।

क. *श्रवण*—'श्रवण' भक्ति से तात्पर्य है परमाराध्य के गुण, नाम, चरित्र आदि का सुनना-सुनाना। सूरदास ने 'श्रवण' भक्ति की महिमा बताते हुए कहा है कि प्राणी के श्रवणों की सार्थकता ईश्वर की सरस कथा का सुधा-रस सदा-सर्वदा पान करने में है। इसी प्रकार हरि-लीला सुनने-सुनाने का फल 'हरि-भक्ति की प्राप्ति' और भवसागर से मुक्ति आदि बताया गया है। अपने परमाराध्य के गुण सुनना सूरदास को सदैव ही अत्यंत प्रिय लगता है। एक पद में सूरदास ने हरि-लीला सुनने-सुनाने की तुलना

में अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति को भी तुच्छ बताया है। परमानंददास भी 'नाउँ उच्चार' को मंगलकारी कहकर कथा-श्रवण के रस का वरदान चाहते हैं। नंददास ने 'श्रवण-रस' में 'मस्त' लोगों को अमृतपान सा आनंद मिलने की बात कही है और 'रास-लीला' के सुनने-सुनाने से प्रेमभक्ति पाने का स्पष्ट उल्लेख किया है। कृष्णदास भी लाल की लीला गाने-सुनने में परम सुख मिलने की बात कहते हैं।

ख. *कीर्तन*—'कीर्तन' से तात्पर्य है इष्टदेव के नाम, गुण, उसकी लीला आदि का उच्च स्वर से गान करना। 'श्रीमद्भागवत' में इस प्रकार की भक्ति का बड़ा माहात्म्य बताया गया है। अष्टछापी कवि भी अपने आराध्य की लीला का गान करने की ही बात कहते हैं जिससे उन्हें परम सुख मिलता है।

ग. *स्मरण*—'स्मरण' से आशय है भगवान के रूप, गुण, क्रीड़ा आदि के ध्यान और चिंतन से। इससे भक्त का मन हर समय प्रभु में ही लीन रहता है। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'स्मरण' भक्ति की आवश्यकता बताते हुए उसकी महिमा का बखान किया है। परमानंददास यशोदानंदन का साँझ-सवेरे चिंतन करने और सदैव उनकी मनमोहिनी मूर्ति तथा परम सुखदायिनी लीलाओं की सुधि आने की बात कहते हैं। कुंभनदास और गोविंदस्वामी के नयनों से प्रियतम की मूर्ति कभी नहीं टलती। छीतस्वामी भी गोपाललाल का स्मरण करने का आदेश देते हैं।

नवधा भक्ति के प्रथम तीन रूपों अर्थात श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण के लिए भगवान के 'नाम' की आवश्यकता होती है जिसे सूरदास ने संसार-सागर से पार जाने की 'नौका' बताया है और परमानंददास 'नाम' को कल्पद्रुम-सा वरदायक कहते हैं।

घ. *पाद-सेवन*—'पाद-सेवन' का तात्पर्य आराध्य की चरण-सेवा से है। अतः स्वामी के लिए श्रद्धाभाव से समर्पित किये गये सेवक के व्यवहार 'पाद-सेवन' के अंतर्गत आते हैं। इसी से सूरदास ने नंदनंदन के चरणों का आश्रय लेने का उपदेश दिया है और परमानंददास माधव के महल में उनकी टहल करते रहने में ही जीवन की सफलता समझते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में मदनगोपाल की सेवा मुक्ति से भी मीठी है। नंददास, छीतस्वामी आदि अष्टछापी कवियों ने भी गुरु की चरण-सेवा की कामना व्यक्त की है।

ङ. *अर्चन*—'अर्चन' से आशय श्रद्धापूर्वक आराध्य की परिचर्या, सेवा, पूजा आदि से माना जाता है। देव-विग्रह को स्नानादि कराने के पश्चात्, चंदन, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य समर्पित करके, परिक्रमा करना आदि 'अर्चन' भक्ति के अंग हैं। इनका संपादन करने पर लौकिक संपत्तियों के साथ-साथ स्वर्ग तथा मोक्ष की भी प्राप्ति संभव है। अष्टछापी कवियों में सूरदास का भगवान के विराट रूप की आरती, परमानंददास का मंगला आरती और छीतस्वामी का यशोदा द्वारा की गयी 'लाल' की आरती का वर्णन 'अर्चन' भक्ति से ही संबंध रखता है। गोवर्द्धन-पूजा-जैसे प्रसंगों में प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने 'अर्चन' या पूजन के 'षोडस उपचारों' का विस्तार से वर्णन किया है।

च. *वंदन*—'वंदन' से तात्पर्य आराध्य की सविनय स्तुति करके उनको प्रणाम करने से है जो 'षोडसोपचारों' की ही एक क्रिया है। सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी आदि प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने अपने इष्टदेव की वंदना की है। नंददास की वंदना का उल्लेख उनके कई ग्रंथों में हुआ है और कुंभनदास तो कृष्ण के साथ-साथ उनके पीतांबर, वृन्दावन-विहरण आदि की भी स्तुति करते नहीं अघाते।

छ. *दास्य*—दीनतापूर्वक स्व-दोषों को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करके परमप्रभु से शरण और संरक्षण में ले लेने की सविनय याचना करना आदि 'दास्य-भक्ति' है। सूरदास को जब कृष्ण का 'दास' कहा जाता है तब उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है। प्रभु को सर्वव्यापी सभी मानते हैं; परंतु उनको संबोधित करके, अपने दोषों का उद्घाटन करते हुए, अपने को 'पाप का जहाज', 'पतितनि सिरताज' आदि कहने का साहस सूर को ही है। इसी प्रकार उन्होंने अपने को 'पतितनि कौ टीकौ', 'पतित सिरोमनि', 'महापापी', 'पतितनि-पतितेस', 'पतितनि को राजा' 'पतितनि कौ राउ', 'महापतित' आदि भी कहा है। परमानंददास ने भी प्रभु का 'पतित-पावन' विरद सुनकर उनकी शरण जाना बताया है और उनके द्वार पर 'दाद' न मिलने पर दुख व्यक्त किया है। अन्य अष्टछापी कवियों के दास्यभक्ति-संबंधी पद अभी प्रकाश में नहीं आये हैं।

ज. *सख्य*—आराध्य के प्रति अंतरंग सखा-जैसा परम प्रेममय, परंतु निस्वार्थ भाव रखना 'सख्य-भक्ति' है। श्रीकृष्ण के प्रति यही सखा या मित्रभाव, नंद, गोपादिकों में था जिसके लिए 'श्रीमद्भागवत्' में उनको 'धन्य' कहा गया है। स्वयं अष्टछापी कवि भी 'कृष्ण-सखा' माने जाते रहे

हैं। सूरदास को 'कृष्ण' सखा, परमानंददास को 'तोक', कुंभनदास को 'अर्जुन', कृष्णदास को 'ऋषभ', चतुर्भुजदास को 'विशाल', नंददास को 'भोज', छीतस्वामी को 'सुबल' और गोविंदस्वामी को 'श्रीदामा' कहा गया है। 'वार्ताओं' में इन अष्टसखाओं का, अपने आराध्य के साथ विविध क्रीड़ाओं में भाग लेने का उल्लेख भी विस्तार से मिलता है।

अष्टछाप-काव्य मे कृष्ण की सख्य-भक्ति का रूप चार प्रसंगों में विशेष रूप से वर्णित है। प्रथम प्रसंग है कृष्ण का सखाओं के साथ तरह-तरह के खेल और विनोद का उल्लेख करना जिसका प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने विस्तार से वर्णन किया है। बालसखाओं में जिस प्रकार परस्पर होड़ का भाव रहता है, उसका चित्रण इन कवियों ने विशेष रूप से किया है। सखाओं के साथ खेलते हुए सूरदास के कृष्ण 'श्रीदामा' को अपना प्रतिद्वंद्वी समझते हैं और बलराम के मना करने पर भी दौड़ में उसको हराना चाहते हैं। श्रीदामा भी उनसे दबनेवाला नहीं है और चुनौती देकर उनसे दौड़ने को तैयार है। तब दोनों की दौड़ होती है और श्रीदामा उन्हें जाकर छू लेता है। इस पर कृष्ण, सखा से झगड़ा करने लगते हैं। इसी प्रकार आँखमिचौनी खेलते हुए श्रीकृष्ण माता द्वारा भाई बलराम के छिपने का पता बता दिये जाने पर भी उन्हें 'चोर' नहीं बनाते और श्रीदामा को 'छूने' दौड़ते हैं, क्योंकि उसीसे उनकी प्रतिद्वंद्विता है। श्रीदामा यद्यपि यह जानता है कि 'नंद के पूत' होने के कारण वे 'गुसैयाँ' हैं, परंतु खेल में कौन किसका 'गुसैयाँ'—उसमें तो सभी बराबर हैं। कृष्ण के झगड़ा करने पर वह साफ-साफ कह भी देता है कि जाति-पाँति में तुम हमसे बड़े नहीं हो, न हम तुम्हारी 'छाँह' में ही बसते हैं; कुछ गैयाँ अवश्य तुम्हारे यहाँ ज्यादा हैं, शायद इसी से 'अधिकार जता' रहे हो, सो यहाँ हम तुमसे दबनेवाले नहीं हैं। 'रुहठि' करनेवाले के साथ कौन खेलना चाहेगा ? इतना कहकर सब सखा जहाँ-तहाँ बैठ गये और अंत में हारकर कृष्ण को दाँव देना पड़ा।

इसी प्रकार गेंद खेलते हुए कृष्ण से जब श्रीदामा की गेंद कालीदह में जा गिरती है तब भी यह लपककर श्याम की 'फेंट' पकड़ता और कहता है कि मेरी गेंद लाकर दो; मुझको कोई दूसरा सखा न समझना जो तुमसे दब जाऊँगा। सब सखाओं के बीच में इस तरह 'फेंट' पकड़ी जाने पर कृष्ण को बहुत बुरा लगता है और वे श्रीदामा से कहते हैं कि 'तनक' सी बात के लिए 'रार' क्यों बढ़ा रहे हो ? तुम्हारी गेंद गयी तो बदले में मेरी ले लो। मेरी बाँह क्यों पकड़ते हो ? जरा छोटे-बड़े का तो ध्यान करो ! कहाँ

तुम कहाँ मैं ! पर श्रीदामा 'फेंट' नहीं छोड़ता। वह कहता है कि तुम 'बड़े नंद के पूत हो', तुम्हारी बराबरी मैं क्या करूँगा ? परंतु तुम बड़े 'धूत' हो गये हो; सो छुटकारा तुम्हें गेंद देने पर ही मिलेगा। कृष्ण को सब सखाओं के सामने इस प्रकार 'धूत' कहा जाना और भी बुरा लगता है। तब रिस से काँपते हुए वे कहते हैं कि तू मुँह सम्हाल कर बात नहीं करता, मेरी बराबरी करना चाहता है ! अभी तुझे इस धृष्टता का फल मिलेगा। इतना सुनते ही श्रीदामा जरा सकपकाया कि कृष्ण ने फेंट छुड़ा ली और दौड़कर कदम पर चढ़ गये।

बाल-लीला-प्रसंग का ही दूसरा चित्र वह है जिसमें कृष्ण अपने सखाओं के साथ बन में दोपहर को 'छाक' खाने बैठते हैं जिसका वर्णन अष्टछाप-काव्य में बड़े विस्तार से हुआ है। ऐसे अवसर पर कृष्ण को अपने सामने रखे हुए 'षटरस के पकवान' नहीं भाते और सखाओं के प्रति अपनी प्रीति दिखाने के लिए वे उनके हाथ से कौर छीन-छीनकर उनका जूठा खाने में बड़ा सुख मानते हैं। कृष्ण के सखा भी परस्पर दूध, फल और 'चबेने' के लिए झगड़ते हैं। परमानंददास के सखा इसी प्रसंग में कृष्ण से कहते हैं कि तुम्हारा 'झूँठा' दही मुझे बहुत अच्छा लगता है। कृष्ण सब सखाओं को दोनों में दही बाँट देते हैं और कहते हैं कि जिन्हें न मिला हो, मेरी 'हथेली चाट लें'। अपने प्यारे सखा के व्यवहार से परम संतुष्ट हो सखा कहते हैं कि ऐसा स्वाद हमें कभी नहीं मिला। कुंभनदास ने अघाकर भोजन करने के पश्चात् सब सखाओं में साथ-साथ 'बीरा' बाँटे जाने की भी बात कही है।

सख्य-भक्ति-संबंधी दूसरा प्रसिद्ध प्रसंग विप्रवर सुदामा का है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास ने विस्तार से किया है। सुदामा की पत्नी अपने पति के कृष्ण-जैसे सखा और 'मीत' होने की बात जानकर उन्हें द्वारका जाने की प्रेरणा देती है। और कृष्ण अपने 'बालमीत' और 'बालसखा' को पहचानकर आतुरता से मिलते हैं। घर लौटने पर पत्नी उनसे पूछती है कि तुम्हारे 'बाल-सँघाती', तुम्हारे 'कुचील' वसनधारी 'छीन गात' को देखकर तुमसे कैसे मिले ? उत्तर में सुदामा कृष्ण की 'मित्रई' के आदर्श व्यवहार की प्रशंसा करते नहीं थकता और तभी कवि सूर भी भावविभोर हो अपने आराध्य की सखा के प्रति प्रीति देखकर गा उठता है कि ऐसी प्रीति पर मैं 'बलि' जाता हूँ। नंददास ने भी सुदामा और उनकी पत्नी की तरह, कृष्ण का भजन करने पर सुखी होने की बात लिखी है।

सख्य-भक्ति का तीसरा उदाहरण अर्जुन की भक्ति में मिलता है। स्वयं श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि तेरी भक्ति से संतुष्ट होकर, तेरा हित करने के लिए ही, मैं तेरा रथ हाँकता हूँ। सूरदास के दो-एक विनय पदों में भी, सख्य-भक्ति की झलक मिलती है जिनमें 'सात पीढ़ियों का पतित' अपने आराध्य को चुनौती देकर ललकारता है और उनको 'बिरद बिनु' करने का दम भरता है। ऐसे पदों में सख्य-भक्ति का चौथा रूप देखा जा सकता है।

ऋ. *आत्मनिवेदन*—अनन्य भाव से परमाराध्य की प्रार्थना करना और उसकी शरण में जाना 'आत्मनिवेदन' है जिसके लिए 'प्रपत्ति' शब्द भी प्रयुक्त होता है। 'प्रपत्ति' के कहीं छह अंग, यथा अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गोप्तृत्ववरण अर्थात् प्रभु की अनंत गुप्त और समर्थ शक्तियों से अपने को अंगीकार कर लेने की प्रार्थना करना, रक्षा में विश्वास, आत्मसमर्पण और कार्पण्य; तथा कहीं सात, यथा दीनता, गर्व-त्याग, भय-दर्शन अर्थात् विभिन्न कारणों से भयभीत होकर प्रभु की शरण जाना, मन की भर्त्सना, मनोराज्य में विचरण का सुख, आश्वासन और विचारणा अर्थात स्व-पापों का स्मरण और पश्चाताप बताये गये हैं। अष्टछापी कवियों के काव्य से उक्त सभी भावों के उदाहरण निकाले जा सकते हैं; विशेषकर सूरदास के काव्य में उनके अनेक उदाहरण मिलते हैं। परमानंददास ने उक्त भावों में से कुछ का ही वर्णन किया है और अष्टछाप के अन्य कवियों ने उक्त भावों में से एक-दो का ही वर्णन करके 'आत्म-निवेदन'-भक्ति का निर्वाह कर लिया है।

ज. *वात्सल्य-भक्ति*—प्रभु को वत्स-भाव से देखना 'वात्सल्य-भक्ति' है जिसके प्रति महाप्रभु वल्लभाचार्य का विशेष आकर्षण था। शिशु को यों तो सभी वयस्क संबंधी वत्स-भाव से देखते हैं, परंतु उसका जैसा शुद्धतम और आवेशपूर्ण अनुभव माता का हृदय करता है, वैसा अन्यों का नहीं। अष्टछापी कवि भी इस तथ्य से भली-भाँति अवगत जान पड़ते हैं। इसी से उनके काव्य में यशोदा के मातृहृदय में उमड़नेवाले वात्सल्य-भाव का जितना विशद चित्रण मिलता है, उतना अन्य संबंधियों, यहाँ तक कि पितृहृदय के भाव का भी नहीं मिलता। 'वात्सल्य भक्ति' के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने तो दोनों का चित्रण बड़े विशद रूप में किया है, पर अन्य कवियों ने प्रथम की ओर ही ध्यान दिया है और वह भी सूरदास की तरह अत्यंत भावावेश में नहीं; अस्तु।

अ. *वात्सल्य-भक्ति का संयोग-पक्ष*—सूरदास के काव्य में वात्सल्य-भक्ति के अनेक मनोहर उदाहरण मिलते हैं। शिशु के जन्म पर ही माता की उमंग का अंग में न समाना, उसका 'सिसु-बदन' देखकर अपने 'पुन्यों' का स्मरण करना, उसकी छवि पर बड़ी प्रसन्नता से 'बलि' जाना, उसके घुटनों चलने, दूध के दाँत देखने, कमल-मुख के बोल सुनने आदि की कामना करना, उसके कल्याण के लिए कुल-देवता को मनाना, पुत्र के सब रोग-धोग अपने ऊपर लेने को सदा प्रस्तुत रहना आदि ऐसे प्रसंग हैं जिनसे मातृहृदय के वात्सल्य-भाव का स्पष्ट परिचय मिलता है।

इसी प्रकार परमानंददास की यशोदा भी पुत्र पर 'बलि जाती', उसका मुख-कमल देखकर अपना 'पुन्य बिचारती' एवं पुत्र के मुख से 'मैया' पुकारे जाने, व्रज की गलियों में उसके घूमने, गाय दुहने के लिए बछड़ा खोलने और ग्वाल-बालों के साथ खेलने की कामना करती हैं। परमानंददास के एक दूसरे पद में यशोदा ने सखियों से अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा है कि कब मैं अपने लालन को भूमि पर पैर रखते देखूँगी, 'मैया' पुकारते सुनूँगी, कब वे गोरज-लिपटे तन से दूध-दही के लिए मुझसे दौड़कर मिलेंगे। कब वे स्वयं गाय दुहेंगे और कब नंदराय उन्हें गैयाँ चराने का काम सौंपेंगे। इस प्रकार अभिलाषा करनेवाली माता यशोदा पुत्र की 'बलाय' स्वयं लेने को तत्पर रहती है।

चतुर्भुजदास की यशोदा भी सखियों से कहती हैं कि पुत्र की जो इच्छा हो, ले लेने दो, बदले में मुझसे चौगुना दही-माखन ले लो। कुलदेव की बड़ी आराधना से पालने में झूलता बालक देखने का सौभाग्य मुझे मिला है; उन्हीं की कृपा से घुटनों भी चलेगा। जो मेरे लाल को चलना सिखा देगा, उसको मैं सर्वस्व देने को तैयार हूँ। और मेरी बड़ी अभिलाषा मोहन को धेनु चराता देखने की है। अन्य अष्टछापी कवियों ने बाल-लीला का सामान्य रूप से वर्णन किया है; मातृहृदय-चित्रण का उपर्युक्त-जैसा प्रयास नहीं किया है।

आ. *वात्सल्य-भक्ति का वियोग-पक्ष*—ऊपर जो कुछ कहा गया है वह वात्सल्य के संयोग-पक्ष से संबंध रखता है जब पुत्र माता के सामने होता है। वात्सल्य का दूसरा पक्ष है वियोग का जिसमें दुख की चरमावस्था होने पर आंतरिक जगत में प्रति पल प्रियजन का ही ध्यान बना रहता है। यही कारण है कि यशोदा, नंद, गोपी आदि की वियोगावस्था के दुख की कामना वल्लभ-संप्रदायी भक्तजन किया करते हैं। अष्टछापी

कवियों में सूरदास ने वियोग-वात्सल्य का जितना मार्मिक चित्रण किया है उतना अन्य कवियों ने नहीं। उनकी यशोदा अक्रूर के साथ कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् विलाप करती हुई कहती हैं कि लोग लाख समझाते हैं, परंतु मोहन के मुख के योग्य माखन देखते ही मुझे उनका स्मरण हो आता है। मेरी इतनी ही कामना है कि दिन-रात उन्हें छाती से लगाये खिलाती रहूँ।

ट. *मधुर भक्ति*—परमाराध्य को 'प्रियतम' मानकर उपासना करना 'मधुर-भाव' की भक्ति है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों ने बड़े विस्तार से किया है। वल्लभ-संप्रदाय में जिस प्रकार वे आठों कवि 'सखा'-रूप में प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार 'सखी' के रूप में भी; यथा सूरदास को 'चंपकलता'; परमानंददास को 'चंद्रभागा', कुंभनदास को 'विशाखा', कृष्णदास को 'ललिता', चतुर्भुजदास को 'विमला', नंददास को 'चन्द्रावली', छीतस्वामी को 'पद्मा' और गोविंदस्वामी को 'भामा' माना गया है। फलस्वरूप वे सभी कवि मधुर-भाव के प्रमुख क्षेत्र की निकुंज की समस्त मधुर लीला का सहज ही अनुभव कर सके; अस्तु। मधुर-भक्ति के भी दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। अष्टछापी कवियों ने दोनों का वर्णन विस्तार से किया है।

अ. *मधुर-भक्ति का संयोग-पक्ष*—व्रज की गोपियाँ कृष्ण के अनुपम रूप-गुण पर अत्यंत मुग्ध होकर उनके प्रति आकृष्ट होती हैं और जहाँ-तहाँ उनका दर्शन करके तो उनकी आसक्ति बहुत बढ़ जाती है। कृष्ण के प्रेम में विभोर राधा को घर-बार नहीं सुहाता और वह कभी हँसती है, कभी बिलखने लगती है। यही दशा कृष्ण का दर्शन करनेवाली प्रत्येक गोपी की है। नयनों में कृष्ण की मूर्ति समा जाने पर किसी को तन-बदन की सुधि नहीं रह जाती। हरि-चितवन मर्म पर 'भाली' सी लगने पर 'स्याम-मोहिनी' की 'घाली' हर बाला मन हर लिये जाने का अनुभव करती है और तब उसका सारा कार्य 'ठग-मूरी' खानेवाली-जैसी नारी का होता है। हरि के 'हाथ बिकी' ग्वालिनी 'धकधकाते' उर से उन्हीं की ओर टकटकी लगाये रहती है, उसके मुख से बात नहीं निकलती। कृष्ण की सुन्दर बानी सुनते और रूप देखते ही श्रवणेंद्रिय और नेत्रेंद्रिय में इतनी सजगता आ जाती है जैसे सारा शरीर श्रवण या नेत्रमय ही हो गया हो। ऐसी स्थिति में वह चित्र-लिखी-सी रह जाती है और उसको पल भर भी चैन नहीं पड़ती।

परमानंददास की गोपी भी 'साँवरो बदन' देख कर उन्हीं के संग 'लग' जाती है और उसको 'तन की सँभार' नहीं रह जाती। यही दशा

नंददास की गोपी की भी है जो 'कृष्ण' नाम सुनते ही 'बावरी' हो जाती है, उसे 'भवन' की सुधि नहीं रह जाती, उसके नेत्र बार-बार भर आते हैं, चित्त को चैन नहीं पड़ती और तन की दशा 'कुछ और' हो जाती है। प्रभु के प्रति उसकी ऐसी गाढ़ी प्रीति हो जाती है कि न तो हार टूटने और चीर फटने की ओर उसका ध्यान जाता है एवं न पनघट और कलश की ही उसे सुधि रह जाती है। कृष्णदास की गोपी श्याम द्वारा 'टोना-सा' डाले जाने की और चतुर्भुजदास की गोपी मधुर गान द्वारा चित्त हरे जाने की बात कहती है। व्रज-बालाओं की यही दशा कुंभनदास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी ने भी बतायी है।

प्रेम की चरमावस्था में प्रेमी को पारिवारिक मर्यादा, सामाजिक विधि-नियम और लोक-लाज का ध्यान नहीं रह जाता। सभी अष्टछापी कवियों की व्रज-बालाएँ कुल-कानि, माता-पिता का डर, लोक-लाज आदि की सर्वथा उपेक्षाकर श्याम की प्रीति में पड़कर 'श्याममय' ही हो जाती और उनसे नाता जोड़कर दूसरे सारे नाते तोड़ देती हैं। इन सब व्यवधानों को पार करते ही गोपियों का अपने प्रियतम से मिलन होता है और वे संयोग के उस परम सुख का अनुभव करती हैं कि उनको मोक्ष-प्राप्ति की भी कामना नहीं रह जाती। अष्टछापी कवियों ने रास-लीला और कुंज-लीला, दोनों अवसरों पर प्रियतम और प्रियाओं के परस्पर मिलने, हँसने-बोलने तथा अनेक प्रकार की विलास-क्रीड़ाएँ करने का वर्णन बड़े विस्तार से किया है।

आ. मधुर-भक्ति का वियोग-पक्ष—संयोग की स्थिति में व्यक्ति को अपने प्रियजन की ओर से जितनी निश्चिंतता होती है, विरह की अवस्था में वह उसके लिए उतना ही अधिक विकल रहता है। अतएव विरह की स्थिति ऐसी कसौटी मानी जाती है जिससे सच्ची प्रीति की सहज ही परख हो सकती है। इसी कारण सूरदास कभी तो कहते हैं कि विरह-दुख का अनुभव न होने तक प्रेम उपजता ही नहीं और कभी विरह को ही प्रीति का उद्दीपक, उसको बढ़ाने या रंग गहरा करने वाला मानते हैं। परमानंददास भी विरह के बिना प्रीति की 'खोज' नहीं मानते। नंददास की सम्मति में, विरह, समाधि की वह स्थिति है जिसमें ध्यानावस्था में प्रियतम मिल जाता है। 'रूपमंजरी' में वे विरह-सुख को मिलन-सुख से भी अधिक बताते हुए कहते हैं कि संयोग की स्थिति में प्रियतम से मिलन केवल एक स्थान पर होता है, परंतु विरह की स्थिति में सर्वत्र उसी के दर्शन होते हैं।

यों तो सभी अष्टछापी कवियों ने 'मधुर-भक्ति' के वियोग-पक्ष की महत्ता सिद्ध करते हुए अनेक पद लिखे हैं, तथापि सूरदास और उनके पश्चात् परमानंददास तथा कुंभनदास के तद्विषयक पदों में विरह की बड़ी मर्मस्पर्शी व्यंजना है। वियोग की दसों दशाओं, यथा अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण; के साथ-साथ प्रवास-विरह की दसों स्थितियों, यथा मलिनता, संताप, पांडुता, कृशता, अरुचि, अधृति, विवशता, तन्मयता, उन्माद और मूर्च्छा का मार्मिक वर्णन और चित्रण अष्टछापी कवियों ने अपने काव्यों में किया है। इस वर्णन की विशेषता यह है कि व्रजबालाएँ या तो प्रियतम से मिलन की उत्कट अभिलाषा करती हैं या, सूरदास के शब्दों में, 'विरहिणी' ही रहकर प्रियतम के रूप पर 'परवाने'-जैसा जीवन बिताने की तीव्रतम कामना रखती हैं। विरह की इस चरमावस्था में प्रियतम के ध्यान में लीन विरहिणी व्रजबालाएँ उन्हीं में तन्मय होकर उस परमानंद का अनुभव करती हैं जो समस्त भक्तों का परम काम्य है।

भक्ति के विविध रूप—भक्ति-संबंधी उक्त विचारों के अतिरिक्त तद्विषयक अन्य अनेक बातें अष्टछाप-काव्य में मिलती है और भक्ति के बिना वे भगवान को पाना दुर्लभ बताते हैं। संस्कारवश भक्तों का स्वभाव भिन्न रहता है जिससे उनकी भक्ति का स्वरूप और उसका लक्ष्यादर्श भी भिन्न होता है। 'श्रीमद्भागवत्' में, इसी कारण, भक्त की स्वाभाविक वृत्तियों के अनुसार, भक्ति के चार विभेद—तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुण या निष्काम भक्ति—कहे गये है। इसी का आधार लेकर सूरदास ने तमोगुणी भक्त को शत्रु-नाश, रजोगुणी को धन-कुटुम्ब-अनुरक्ति और सात्विकी को मुक्ति की कामना रखनेवाला कहा है। चौथी अर्थात् निर्गुण । [illegible] सुधाकर भक्ति' कहा है और ऐसी भक्ति रखनेवाला उक्त तीनों बातों में से किसी की कामना न रखकर, भगवद्दर्शन में ही परम सुख मानकर, मन, वचन और कर्म से केवल ईश्वर की सेवा करता है।

आदर्श भक्त—भगवान से प्रेम करने पर, अष्टछापी कवियों के अनुसार, वही अपने भक्त की सदैव चिंता करता है। अतएव ईश्वर के ऐसे अनुग्रह के प्रति श्रद्धापूर्ण विश्वास रखनेवाला ही आदर्श भक्त है। सूरदास के अनुसार भक्ति-पंथ पर चलनेवाले को न तो पुत्र-कलत्र का ध्यान रहता है, न वह अपने असन-वसन की ही चिंता करता है; क्योंकि जग का

पालनकर्ता विश्वम्भर उसकी उसी प्रकार हित-कामना करता है जिस प्रकार सहृदय व्यक्ति द्वार पर बँधे अपने पालतू पशु की। एक दूसरे पद में हरि को भक्त के भोजन, वस्त्र आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए इसके साथ इस प्रकार लगे रहनेवाला कहा गया है जैसे बछड़े के साथ गाय लगी रहती है।

सेवा—'भक्ति'-प्रसंग का अंतिम उपशीर्षक है परमाराध्य की 'सेवा'। महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार सेवा तन, वित्त और मन से करनी चाहिए। इनमें तृतीय प्रकार की सेवा को सर्वोत्तम मानकर कृष्ण की 'मानसी' सेवा करने को कहा गया है। अष्टछापी कवियों ने भी 'सेवा'-भाव पर बल दिया है। कविवर सूरदास ने रसना की हरि-गुण गाने में, नयन की उनके दर्शन में, चित्त की उन्हीं में अनुरक्त होने में, श्रवण की कथा सुनने में, हाथ की सेवा-पूजा में लगे रहने में, चरण की वृन्दावन-जैसे परम धाम जाने में; अर्थात् शरीर के समस्त अवयवों की, किसी न किसी रूप में, परमाराध्य की सेवा में ही सार्थकता मानी है। परमानंददास ने सेवा को मुक्ति से भी मीठा मानकर अपने प्रभु से चरण-सेवा का अवसर देने की याचना की है।

२. सामान्य धार्मिक विचार—

भक्ति-विषयक उक्त विशिष्ट विचारों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में ऐसी अनेक बातों की चर्चा की गयी है जिनका संबंध सामान्य धर्म से माना जा सकता है। ऐसे सामान्य विचारों में से अधिकांश का उल्लेख केवल अष्टछाप-काव्य में नहीं, उस युग के समस्त धार्मिक साहित्य में हुआ है। इनमें से परब्रह्म के विभिन्न अवतारों के प्रति अष्टछापी कवियों के विचार 'पौराणिक विश्वास' के अंतर्गत पीछे दिये जा चुके हैं, शेष विचारों में से प्रमुख को, अध्ययन की सुविधा के लिए, चार उपशीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—क. ज्ञान और योग, ख. वैराग्य या अनासक्ति, ग. गुरुमहिमा और घ. सत्संग-संबंधी विचार।

क. *ज्ञान और योग*—ब्रह्म के निर्गुण और सगुण, दो रूप भारतीय परंपरा में मान्य रहे हैं। वल्लभ-संप्रदायी अष्टछापी कवियों ने भी सगुण के साथ-साथ ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का अस्तित्व स्वीकार किया है। निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ज्ञान और योग-मार्ग माना जाता है और सगुण के लिए भक्ति-मार्ग। परंतु प्रथम मार्ग क्लेशप्रद और द्वितीय सुगम बताया गया है। अष्टछापी कवियों ने भी ज्ञान और योग की साधना को भक्ति-

मार्ग की तुलना में कठिन बताया है; उसका खंडन नहीं किया है। सूरदास 'अबिगत गति को' 'मन-बानी' के लिए 'अगम-अगोचर' बताकर ही सगुण-लीला का गान करने में प्रवृत्त होते हैं। उनकी गोपियाँ ऊधव से यही कहती हैं कि 'रूप-रेख-बरन-बपु-रहित' निर्गुण ब्रह्म से नेह किस प्रकार निभ सकता है ? स्वयं उनके कृष्ण भी स्पष्ट शब्दों में कर्म-धर्म-योग-यज्ञ आदि की ओर ध्यान न देकर, भक्त के भाव के अधीन रहने की बात कहते हैं। परमानंददास भी ज्ञान-योग-साधना में शरीर को कष्ट देने से, भजन के सरल मार्ग को अपनाना ही उपयुक्त समझते हैं। इसी प्रकार नंददास, भक्ति के; और गोविंदस्वामी, प्रीति के द्वारा ही 'प्रीतम' को पाने की बात कहते हैं।

परंतु अष्टछाप-काव्य में कहीं-कहीं यौगिक क्रियाओं की भी चर्चा मिलती है। उदाहरण के लिए सूरदास के एक पद में 'अष्टांग योग' की चर्चा करके उसके आठों अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—भी गिनाये गये हैं। हाँ, पद के अंतिमांश में उन्होंने 'उपाधि' का मिटना भजन करने पर ही संभव बताया है। इसी प्रकार सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि हमारा प्रेम-योग तुम्हारे योग से किस प्रकार कम है जब हम माता-पिता का प्रेम और निगम-पथ छोड़कर सुख-दुख, मान-अपमान आदि सहन कर रही हैं। हमारा मन दृढ़तापूर्वक श्रीकृष्ण में लगा है और जगतवंद्य मानकर हम उनकी वंदना करती रही हैं। संकोच हमारा आसन है, गुरुजन की कानि रूपी अग्नि में हम तपी हैं, उपहास-धूम का हमने पान किया है, शरीर की सुधि भुलाना हमारी समाधि है, अपलक दृष्टि से कृष्ण की रूप-माधुरी का अंतर्दर्शन करना रात्रि का जागरण है, हमारे नेत्रों का कृष्ण के नेत्रों से लगना ही त्रिकुटी तथा त्राटक-दर्शन की साधना है, मुरली-ध्वनि सुनना अनहदनाद सुनना है, उनके वचन सुनने की रुचि जैसे रस बरसना है और उनकी संगति की कामना आनंद-लीनता के समान है। मनजात अर्थात् कामदेव से हमें प्रेम-मंत्र मिला है तथा हमारा ध्यान सदैव हरि में ही लगा रहता है।

इसी प्रकार सूरदास के एक अन्य पद में योग की कष्ट-साधना की भी चर्चा की गयी है। गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि जिस योग का तुम उपदेश दे रहे हो उसकी साधना तो हम कर ही रही हैं। हमारे केश, 'सेली' हैं; कर्णफूल, 'मुद्रा' हैं; विरह के कारण शरीर की मलिनता, भस्म है; चीर, कंथा है; हृदय, शृंगी बाजा है; मुरली का स्वर, नाद है और नेत्र, 'कृष्ण-

दरस-भिक्षा' माँगने के खप्पर हैं। परंतु जो ज्ञान भक्ति के लिए भूमि तैयार करता है, जीव को भ्रम से छुड़ाता और उसके मोहांधकार को दूर करता है, उसकी अष्टछापी कवियों ने सर्वत्र प्रशंसा की है।

ख. वैराग्य या अनासक्ति—अष्टछाप-काव्य में अनेक अवतरण ऐसे मिलते हैं जिनमें उन कवियों ने पुत्र-कलत्र, स्वजन-परिजन आदि को परम स्वार्थी, उनसे मिलनेवाले सुख को क्षणभंगुर और गृहस्थ-जीवन को कष्टदायी बताया है। परंतु सामान्यतया घर-बार से मुक्ति पा जाना सबके लिए सुलभ भी नहीं होता। इसीलिए महाप्रभु ने लौकिक विषयों से मुक्ति पाना कठिन बताकर उनमें रमनेवाले मन को परमाराध्य में लगाने का उपदेश दिया है। परमानंददास ने एक पद में आहार-विहार और देह-सुख छोड़कर घर में 'बटाऊ' की भाँति बसने की बात कही है। वैराग्य अथवा अनासक्ति के संबंध में अन्य अष्टछापी कवियों का भी यही आदर्श समझना चाहिए।

ग. गुरु-महिमा—भगवान की भक्ति-साधना या सेवा-संबंधी-निर्देश भक्त को जिससे प्राप्त होते हैं और जो भक्ति तथा सेवा के क्षेत्र में उसका पथ-प्रदर्शक होता है, उसे 'गुरु' कहते हैं। उसकी आज्ञा का पालन, महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार, एक प्रकार से ईश्वर-सेवा ही है। कबीर ने जिस प्रकार 'सतगुरु' की महिमा का बखान किया है और नाभादास ने भगवंत और गुरु को एक बताया है, उसी प्रकार अष्टछापी कवि भी गुरु को ईश्वर-रूप ही मानते रहे हैं। सूरदास ने परमाराध्य के लीला-गान को 'आचार्य-यश-वर्णन' के समकक्ष बताया है और दोनों को एकरूप मानते हुए गुरु की प्रसन्नता से हरि की प्रसन्नता और गुरु के दुख से, हरि की खिन्नता होने की बात कही है। यही भाव उनके साथ-साथ अन्य अष्टछापी कवियों का भी रहा है। गुरु की कृपा होने पर ही हरि-गान की प्रेरणा मिलना भी उन्होंने स्वीकार किया है और गुरु की सेवा न कर पाने पर वे जीवन को व्यर्थ समझते हैं। संत-समागम न होने पर वे जीवन को भार-स्वरूप और व्यर्थ ही बीत जानेवाला मानते हैं। कारण यह है कि वे गुरु को ज्ञान-दीपक हाथ में लेकर अविद्या-माया का नाश करके जीव का उद्धार करने में समर्थ समझते हैं और, उनकी सम्मति में, 'सत्गुरु' का उपदेश हृदय में धारण करनेवाला, सहज ही सभी भ्रमों से मुक्ति पा जाता है।

घ. सत्संग-महिमा—जीवन के दैनिक व्यवहार में जिस प्रकार सच्चरित्र व्यक्तियों के संपर्क से मन में सद्विचारों का उदय होता है, उसी

प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में सत्संग से भक्ति-साधना की प्रेरणा आदि अनायास ही प्राप्त हो जाती है। परंतु 'सत्संग' मिलता उसी को है जिस पर ईश्वर की कृपा होती है। सूरदास ने भी साधु-संगति को बड़े भाग्य से पाने की बात लिखी है। एक अन्य पद में उन्होंने साधु-दर्शन को कोटि तीर्थ-स्नान के फल-जैसा बताया है। कारण यह है कि उनकी संगति में रहने से जन्म-मरण के क्रम से सहज ही मुक्ति मिल जाती है। इसी से नंददास उसको 'पारस' के समान उत्तम मानते हैं जो लोहे को भी सोना बना देता है और परमानंददास उसकी कामना करते हैं। सूरदास को जिस प्रकार एक साधु-संगति का ही आधार है, उसी प्रकार छीतस्वामी को भी हरि-भक्तों के बल का विश्वास है। सूरदास ऐसे साधुओं की सेवा में ही जीवन की सार्थकता समझते हैं।

३. *धार्मिक कृत्य*—अष्टछापी कवियों ने अपनी रचनाओं में उन अनेक कृत्यों का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है जिनको हिंदू समाज सदा से 'धर्म' का अंग मानता आया है। स्थूल रूप से, ऐसे कृत्यों को नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—पूजा, व्रत, तीर्थयात्रा, तीर्थस्नान, दान, तप, यज्ञ, श्राद्ध और कथा-श्रवण।

क. *पूजा*—यद्यपि भारतवर्ष में सदैव से बहुदेवोपासना प्रचलित रही है तथापि उनमें से ईश्वर के पाँच स्वरूपों, यथा विष्णु, सूर्य, शिव, देवी और गणपति, की उपासना का महत्व बहुत प्राचीन काल से रहा है। अष्टछाप-काव्य में इन पंच देवों के अतिरिक्त इष्टदेवता, कुलदेवता, इंद्र और गोवर्द्धन की पूजा का भी उल्लेख हुआ है। इन सबकी पूजा का विवरण अष्टछाप-काव्य के आधार पर नीचे दिया जाता है—

अ. *इष्टदेवता की पूजा*—प्रत्येक आस्तिक हिंदू का कोई न कोई इष्टदेवता होता है जिसको अर्पण करके ही सांसारिक भोग भोगने का सामान्य विधान है; यहाँ तक कि नित्यप्रति का भोजन भी उसको भोग लगाकर ही ग्रहण किया जाता है। 'सूरसागर' में महराने से आया हुआ पाँडे खीर तैयार होने पर पहले इष्टदेव का ध्यान करके भोग लगाता है। अशोकवाटिका में फल खाने के पूर्व हनुमान भी पहले मानसिक रूप से प्रभु को अर्पण कर देते हैं।

नंद जी का इष्टदेव, सूरदास ने, शालग्राम को बताया है और उनकी पूजा का उल्लेख केवल 'सूरसागर' में मिलता है। सूरदास के नंद जी यमुना में स्नान करके झारी भर जमुनाजल और बहुत से कंज-सुमन

लाते हैं। घर आने पर हाथ-पैर धोकर वे मंदिर में पधारते, स्थल लीपते, पात्र माँजते-धोते तथा शालग्राम-पूजन के अन्य कृत्य विधिवत् करते हैं। तभी बालक कृष्ण वहाँ आकर, नन्द जी का घंटा बजाकर शालग्राम को स्नान कराना, चंदन चढ़ाना, 'पट का अंतर' देकर भोग लगाना, आरती करना आदि देखता है। भोग लगाने पर भी थाल की सामग्री ज्यों की त्यों देखकर बालक कृष्ण कहता है कि बाबा, तुमने भोग लगाया, पर तुम्हारे ठाकुर ने तो कुछ खाया ही नहीं। भोले बालक की इस जिज्ञासा में भी पिता ने देव-अवज्ञा समझी और उससे 'देवता' को हाथ जोड़ने को कहा। सूरदास ने 'शालग्राम' को ही नंद जी का इष्टदेवता कहा है, क्योंकि पिता को ध्यान समाधि में लीन देखकर पुत्र ने जब शालग्राम की बटिया को मुख में रख लिया, तब वे 'मेरे इष्टदेव कहां गये', कहकर ही उनकी खोज करते हैं और बालक के मुख में 'देवता' को पाकर वे बहुत खीझते हैं। पश्चात्, देव-स्नानादि के अनंतर, वे पुनः इष्ट-देव का पूजन करते हैं।

आ. कुलदेवता इन्द्र की पूजा—प्रत्येक हिंदू के लिए 'इष्टदेवता' के साथ-साथ 'कुलदेवता', 'ग्राम-देवता' आदि की पूजा का शास्त्रीय विधान माना जाता है। इस प्रकार भारतीय समाज में वर्ग-विशेष के प्रत्येक कुल का एक 'कुलदेवता' होता है जिसकी पूजा प्रत्येक मंगलकार्य के आदि में तथा वर्ष के अन्य प्रमुख अवसरों पर की जाती है और उसी को समस्त लौकिक श्री-समृद्धि तथा मंगल का दाता माना जाता है। अष्टछाप-काव्य में जिन व्रज-वासियों की चर्चा है उनका 'कुलदेवता' इंद्र बताया गया है जिसकी कृपा से ही यशोदा व्रज में कुशलपूर्वक रहने, समस्त सुख, दूध-दही, अन्न-धाम के साथ-साथ धन-सम्पत्ति और 'नवोंनिधि' पाने की बात कहती है। 'कुलदेवता' की पूजा भूल जाने पर, भावी अनिष्ट की शंका से, नंदरानी का हृदय कांप जाता है और तुरंत ही वे क्षमा-याचनापूर्वक विनय करती हैं कि तुम्हारे समान दूसरा देव नहीं है; तुम्हीं कृष्ण पर दया करो। पुत्र के पूछने पर कि तुम किसकी पूजा करती हो, माता उत्तर देती है कि इंद्र हमारे कुलदेव हैं, उनसे ही सांसारिक 'बड़ाई' हमें मिली है और तुम्हारे कल्याण के लिए हम उनकी पूजा करती हैं। नंददास के कृष्ण भी पिता नंद से पूछते हैं कि यह पूजा 'शास्त्र' से तुमने पायी है या परंपरा से अथवा यह 'लोक-रूढ़' है। उत्तर में नंद जी इन्द्र-पूजा के 'परंपरा' से चले आने की बात कहते हैं।

व्रज में कुलदेवता इंद्र की पूजा का यह चलन 'गोवर्धन-पूजा' के पूर्व तक प्रचलित बताया गया है। उसकी पूजा का सारा आयोजन बड़ी धूम-

ग्राम से किया जाता है। स्त्रियाँ मंगल-गान करती, भाँति-भाँति के पकवान आदि बनाती और श्याम के छूने के डर से सम्हाल कर रखती जाती हैं। नटखट कृष्ण की ओर से इतनी सतर्कता बरतने पर भी वे निश्चिंत नहीं हो पातीं और उसे सारी सामग्री से दूर रखने के लिए डराती हुई कहती हैं कि यहाँ मत आना, यह देवता लड़कों को डराता है। इतना सुनकर पुत्र को आँगन में ही ठिठक कर रह जाते देख माता मन ही मन हँसती है। एक देवता के लिए बहुत-सा 'भोग' बनता देख सहज जिज्ञासा-भाव से जब कृष्ण पूछता है कि क्या तुम्हारा देवता प्रत्यक्ष होकर इतना सब भोजन खा लेगा, तब माता यशोदा पुत्र की अविनय पर खीझती और कुलदेवता के हाथ जोड़कर पुत्र का अपराध क्षमा कराती हैं और पुन: स्वीकार करती हैं कि मेरा सारा गोधन, धन धाम, पुत्रादिक कुलदेव की कृपा से ही है।

इ. *गोवर्द्धन पूजा*—कुलदेवता इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन की पूजा कृष्ण द्वारा चलाये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। माता-पिता जब सुरपति की पूजा का सोत्साह आयोजन करते हैं तब कृष्ण स्वप्न में एक 'अवतारी पुरुष' के दर्शन होने और गोवर्द्धन-पूजा की आज्ञा दिये जाने की बात कहते हैं। साथ ही वे यह प्रलोभन भी देते हैं कि गोवर्द्धन-पूजा से गोसुत बढ़ेंगे, खूब दूध-दही होगा और जब तुम्हें मुँहमाँगी बातें मिल जायँ तभी तुम मुझे मानना। पश्चात्, कृष्ण की बात मानकर बड़े उत्साह से गोवर्द्धन-पूजा का आयोजन किया जाता है जिसका विस्तृत वर्णन 'दीपावली' त्योहार के प्रसंग में पीछे किया जा चुका है।

ई. *विष्णु की पूजा*—अष्टछाप-काव्य में विष्णु की विधिवत् पूजा का उल्लेख नहीं है; अष्टछापी कवियों के परमाराध्य होने के कारण कुछ स्फुट पदों में उनको 'देवाधिदेव' कहकर उनकी सेवा-उपासना करने की बात अवश्य कही गयी है जो श्रीकृष्ण से भी संबंधित है।

उ. *सूर्य की पूजा*—अष्टछापी कवियों ने यशोदा और व्रज-बालाओं के द्वारा सूर्य की उपासना किये जाने की चर्चा की है। सूरदास की यशोदा राधा और श्याम की सुन्दर 'जोटी' देखकर, दोनों के कुशल से रहने और परस्पर संबंध-सूत्र में बँधने की कामना से 'सविता' से बिनती करती हैं जिसका उल्लेख राधा ने अपनी माता से भी किया है।

श्रीकृष्ण को पति या 'भरतार'-रूप में पाने की कामना रखनेवाली गोपियाँ भी सूर्य की पूजा करके अपना मनोरथ पूर्ण होने का वरदान चाहती हैं और जब उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है तब भी अत्यंत कृतज्ञ-भाव

में वे 'सविता' को 'पय-अंजलि' समर्पित करती हैं। अशोकवाटिका में बैठी सीता हनुमान के मुख से लक्ष्मण के पालागन की बात सुनकर 'तरनि सम्मुख' हो असीस देती हैं। 'सारावली' में कवि ने श्रीकृष्ण द्वारा सूर्य को अर्घ्य दिलाया है। अन्य अष्टछापी कवि इस संबंध में मौन हैं।

ऊ. *शिव-पार्वती की पूजा*—'सूर्य' की भाँति 'शिव-पार्वती' की पूजा भी पति और पुत्र पाने की कामना से किये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। सूरदास की यशोदा स्पष्ट शब्दों में कृष्ण को गोद में खिलाने का सौभाग्य शिव-गौरि की कृपा का फल बताती हैं। उनकी गोपियाँ मनवांछित वर और सौभाग्य की कामना से गौरीपति शिव की पूजा का नेम-धर्म-सहित विधान करती हैं और उनसे नंदकुमार को पति-रूप में प्राप्त करने का वरदान चाहती हैं। गोपियों को पूर्ण विश्वास है कि महादेव की कृपा से उनकी मनोकामना अवश्य पूर्ण हो जायगी; अतः वे निरंतर उनकी पूजा 'कमल-पुहुप, मालूर-पत्र-फल' और अन्य सुगंधित सुमनों से करती हैं। अन्त में जब उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है और श्रीकृष्ण को वे पति-रूप में प्राप्त कर लेती हैं, तब महादेव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई वे सविनय निवेदन करती हैं कि तुम धन्य हो; तुम्हारी कृपा से ही हमारी मनोकामना पूर्ण हुई है। 'सारावली' में 'त्रिपुरारि' की पूजा स्वयं श्रीकृष्ण के करने की बात कही गयी है।

मनवांछित वर-प्राप्ति के लिए जिस प्रकार गो० तुलसीदास की जानकी 'भवानी' की पूजा और प्रार्थना करती हैं, वैसे ही सूरदास की रुक्मिणी 'गौरी' की विधिवत् पूजा करती और प्रसाद पाकर ही 'अंबिका-मंदिर' से बाहर आती हैं। नंददास की रुक्मिणी भी, विवाह के पूर्व, कुलरीति का पालन करने के लिए 'अंबिका' की पूजा करने जाती और विधिवत् अर्चना के पश्चात् प्रार्थना करती हैं कि देवि! तुम सब प्रकार से समर्थ हो और अंतर्यामिनी होने के कारण मेरे हृदय की बात भी जानती हो। अतएव श्रीकृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने की मेरी मनोकामना पूर्ण कर दो। और देवि अंबिका उन पर प्रसन्न होकर श्रीमुख से गोविंदचंद्र को ही पति-रूप में पाने का आशीर्वाद देती हैं।

ए. *देवी की पूजा*—अष्टछापी कवियों में नंददास ने 'कात्यायनी' अर्थात् दुर्गा देवी की पूजा का वर्णन किया है। कृष्ण को पति-रूप में पाने की कामना रखनेवाली व्रजबालाएँ हिम ऋतु के प्रथम मास में ही अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए 'कात्यायनी' की पूजा का संकल्प करती हैं। पहले

वे मौन धारण कर यमुना में स्नान करती, फिर तट पर बालू की मूर्ति बनाकर उसे दिव्य वस्त्राभूषण पहनाती और चंदन, तंदुल, फूल आदि समर्पित करके उनके 'पाइनि' पड़ती हैं। तदनंतर, विनय करती हैं कि हे गौरि, ईश्वरी, महामाया, दया करके नंद-सुवन को ही हमारा पति बनाओ। व्रजबालाओं की पूजा से संतुष्ट होकर महामाया उनको मनोरथ पूर्ण होने का आशीर्वाद देती हैं; और गोपियाँ देवी से वर पाकर अत्यंत प्रफुल्लित होकर जल-विहार में मग्न हो जाती हैं; क्योंकि उन्हें कात्यायनी के आशीर्वाद में पूरी आस्था है। 'सारावली' में कृष्ण द्वारा भी दुर्गा देवी की पूजा किये जाने का उल्लेख मिलता है।

गोविंदस्वामी के एक पद में कदंब-वनदेवी-पूजन का उल्लेख हुआ है जो सबकी भाव-भक्ति स्वीकार करती हैं, किसी की 'बलि' नहीं चाहतीं और सबकी मनोकामना पूर्ण कर देती हैं।

ए. गणपति और शारदा की पूजा—गणपति और शारदा की विधिवत् पूजा का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है। सूरदास के केवल एक पद में श्रीकृष्ण की छठी के अवसर पर 'सोहिलो' के आदि में 'गौरि' के साथ-साथ 'गनेस्वर' और 'देवि सारदा' की विनती का उल्लेख भर हुआ है। 'सारावली' में श्रीकृष्ण प्रथम पुत्र के विवाह के अवसर पर गणेश की पूजा करते हैं।

ख. व्रत 'व्रत' का उद्देश्य चाहे स्वास्थ्य की रक्षा हो, चाहे स्वर्ग की प्राप्ति, भारतीय समाज में इनका 'पालन' या 'निर्वाह' अब धार्मिक कृत्य के रूप में ही किया जाता है। यों तो 'व्रतों' की भी संख्या आज बहुत बढ़ गयी है, परंतु अष्टछाप-काव्य में केवल दो मुख्य व्रतों की चर्चा है—एक है 'चांद्रायण' और दूसरा है 'एकादशी' का व्रत। प्रथम अर्थात् 'चांद्रायण' व्रत के संबंध में किसी अष्टछापी कवि ने विस्तार से नहीं लिखा है। केवल सूरदास ने एक पद में सौ बार 'चंद्रायन' करने पर भी बिना भगवंत-भजन के यमदूतों से मुक्ति न मिलने की बात कही है।

'एकादशी' के व्रत का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में दो प्रसंगों में किया गया है। प्रथम प्रसंग है अंबरीष का जो एकादशी को निराहार व्रत करके द्वादशी को आहार लेता है। द्वितीय प्रसंग में नंद जी द्वारा किये गये 'एकादशी' के व्रत का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। 'एकादशी' को वे विधिवत् निराहार और निर्जल व्रत रखते हैं, सारे दिन केवल नारायण में ध्यान लगाते और रात्रि में जागरण करने का निश्चय

करते हैं। 'दिवि' मंदिर में पाटंबर छाकर पुहुप-मालाओं में 'मंडली' बनाई जाती है, चंदन से देव-महल लिपाया जाता है, चौका देकर 'बैठकी' बनाई जाती है जिस पर शालग्राम को बैठाकर धूप-दीप-नैवेद्य चढ़ाया जाता है पश्चात्, आरती करके नंद जी माथ नवाते हैं। इस प्रकार रात्रि के तीन पहर व्यतीत करके द्वादशी को 'पारन' करने के विचार से, नंद जी धोती भारी आदि लेकर स्नान के लिए जमुना-तट जाते हैं। नंददास ने नंद जी के 'एकादशी' व्रत की चर्चा आधी पंक्ति में ही समाप्त कर दी है।

ग. *तीर्थ*—प्रमुख धार्मिक कृत्यों में 'तीर्थयात्रा' भी है जिसमें सत्संग-लाभ के साथ-साथ विभिन्न महापुरुषों की लीलाभूमि के दर्शन से उनके असाधारण कृत्यों की ओर भी धर्मप्राण व्यक्ति का ध्यान जाता है अष्टछाप-काव्य में जिन तीर्थों के नाम आये हैं, अकारक्रम से वे ये हैं— अयोध्या, कुरुक्षेत्र या कुरुमंडल, केदार, गया, गोकुल, द्वारका, नीमसार प्रयाग, बानारस या 'बारानसी', मथुरा, वृन्दावन, व्रज और 'हिवार'। इनमें 'अयोध्या' की महिमा का बखान करते हुए स्वयं श्रीराम ने श्रीमुख से कहा है कि इसकी तुलना में मैं सुरपुर में भी नहीं रहना चाहता और यदि विधाता के विधान में अंतर न पड़े तो मैं अयोध्या छोड़कर वैकुंठ भी न जाना चाहूँगा।

'कुरुक्षेत्र' में श्रीकृष्ण ने, सूर्यग्रहण के अवसर पर, स्नान का बड़ा महत्व बताया है। परमानंददास ने भी कुरुमंडल में 'सूर्यग्रहण' के अवसर पर पाहुनों के मिलने की बात लिखी है। गया, बनारस और केदार तीर्थों के संबंध में सूरदास का मत है कि वहाँ किये गये अश्वमेध आदि यज्ञों का विशेष फल मिलता है। 'बनारस' या 'बारानसि' तीर्थ को उनके एक पद में 'मुक्ति-क्षेत्र' कहा गया है। 'नीमसार' या 'नमिषारण्य' अनेक ऋषियों का वास-स्थान होने के कारण प्रसिद्ध तीर्थ रहा है। 'बेनी' या त्रिवेणी प्रयाग का प्रसिद्ध तीर्थ है जहाँ स्नान बहुत फलदायक माना जाता है और 'हिवार' हिमालय का कोई तीर्थ जान पड़ता है जहाँ तन 'गारने' का विशेष माहात्म्य बताया गया है।

शेष रहे गोकुल, द्वारका, मथुरा, वृन्दावन और व्रज नामक तीर्थ जिनका संबंध अष्टछापी कवियों के आराध्य की लीलाओं से है। जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, मथुरा और द्वारका से संबंधित कृष्ण के ऐश्वर्य रूप के प्रति अष्टछापी कवियों का वह आस्था-भाव नहीं था जो गोकुल वृन्दावन के रस-रूप के प्रति था। अतएव उन कवियों ने 'गोकुल', 'वृन्दावन

और 'व्रज' की ही महिमा का उपर्युक्त सभी तीर्थों से बढ़कर गान किया है। सूरदास ने 'वृन्दावन' को मनोरथ पूर्ण करने में 'कल्पवृक्ष' और 'कामधेनु' से बढ़कर बताया है। इसी से भक्त सूर सांसारिक 'डर' से 'वृन्दावन' नहीं छोड़ना चाहता। 'सारावली' में 'वृन्दावन' की महिमा का कारण कृष्ण का नित्य विहार-स्थल होना बताया गया है। सूरदास की चरम कामना 'वृन्दावन' की रेणु होकर सदैव वहीं वास करने की रही है। अष्टछाप के परमाराध्य श्रीकृष्ण को 'वृन्दावन' के प्रथम दर्शन से ही परम सुख होना कहा गया है और वे स्वयं भी इस बात को सखाओं से स्वीकारते हुए कहते हैं कि इसके सामने मैं बैकुंठ के सुख भी भूल जाता हूँ। 'वृन्दावन' में बजायी गयी श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर बैकुंठवासी नारायण अपनी शक्ति कमला से 'वृन्दावन' को 'धन्य' बताते हुए कहते हैं कि वहाँ का-सा सुख त्रैलोक्य में नहीं है।

परमानंददास ने 'वृन्दावन' को घनश्याम का नित्य विहार-स्थल बताया है। नंददास की सम्मति में, जिस 'वृन्दावन'-सी रेणु बैकुंठ में भी नहीं है उसका वर्णन 'अनंत मुखों में अनंत रसना' होने पर भी नहीं किया जा सकता। 'रासपंचाध्यायी' में नंददास ने 'वृन्दावन' को 'सकल सिद्धिदायक' कहा है जिसकी छवि का वर्णन हो ही नहीं सकता। 'सिद्धांत-पंचाध्यायी' में उन्होंने 'वृन्दावन' के 'छिन छिन घन छवि पाने' के साथ-साथ उसको नंद-सुवन का नित्य-सदन बताया है जिसका दर्शन केवल अधिकारी जनों को ही हो सकता है।

'वृन्दावन' के संबंध में ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सब 'व्रज' की महिमा का ही वर्णन समझना चाहिए; अष्टछापी कवियों ने दोनों के माहात्म्य का बखान साथ-साथ किया भी है। 'बाल-वत्स-हरण'-प्रसंग में सूरदास के ब्रह्मा कभी तो 'वृन्दावन-रेनु' होने का वरदान माँगते हैं और कभी व्रज-'बीथिनि' में बसने का। इससे भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। वास्तव में वृन्दावन उस 'व्रज' मंडल के अंतर्गत ही है जिसकी परिक्रमा द्वारा पाप नष्ट करने की बात स्वयं श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा से कही है। सूरदास को 'व्रज'-जैसा सुख संसार में नहीं दिखायी देता तो परमानंददास भी इसीलिए बैकुंठ नहीं जाना चाहते कि नंद, यशोदा, गोपी, ग्वाल, गाय, यमुना, कदंब-कुंज आदि जो कुछ व्रज में है, वह वहाँ कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार 'गोकुल' के लोगों को बड़भागी बताकर परमानंददास ने उसे भी व्रज के समकक्ष स्थान प्रदान किया है।

घ. *तीर्थस्नान*—यों तो स्नान का महत्व स्वास्थ्य के लिए सर्वविदित है, परंतु विशेष अवसरों पर विशेष नदी या तीर्थ में स्नान को भारतीय समाज धार्मिक कृत्य मानता है। यद्यपि रामायण-काल में ही गंगा, यमुना, तमसा, गोदावरी, सरयू, माल्यवती आदि सभी नदियों को भारतीय संस्कृति में दिव्य पद प्रदान किया गया था, तथापि गंगा का महत्व, जन-विश्वास के अनुसार, सर्वोपरि है: यहाँ तक कि उसे भगवान का ही स्वरूप बताया गया है। सूरदास ने गंगा में स्नान करनेवाले का हरिपुर जाना बताकर उक्त जन-विश्वास ही की पुष्टि की है। उन्होंने गंगा के जल को अमृत के समान बताया है जिसकी कामना नाग, नर, पशु, सभी करते हैं। गंगा-जल के स्पर्श से यम-सेना को जीतने की क्षमता जीव में आ जाती है और उसका नाम लेने मात्र से सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं। एक अन्य पद में सूरदास ने गंगा को 'मुक्ति की दाता', 'त्रिभुवन-हार' आदि बताया है। परमानंददास ने भी गंगा की महिमा का इसी प्रकार बखान किया है।

परंतु 'अष्टछाप' के आराध्य श्रीकृष्ण का संबंध जिस वृन्दावन से है वह यमुना के किनारे बसा है। इसलिए अष्टछापी कवियों ने गंगा से भी अधिक विस्तार में 'यमुना' की महिमा का गान किया है। सूरदास ने 'यमुना' में स्नान करनेवाले के पाप नष्ट होने और उसके सामने यमराज के भी हाथ जोड़े खड़े रहने की बात कही है। कृष्णदास यमुना को 'परम पुनीत' और 'जग-पावनी' कहकर उसको पाना 'सकल निधि' पाने के समान मानते हैं और 'यमुना' का नाम लेने से सभी पापों के दूर होने की बात कहते हैं। परमानंददास भी जमुना की महिमा गाते नहीं अघाते।

गंगा और जमुना के अतिरिक्त 'सारावली' में कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मिथिला के साथ-साथ प्रयाग में त्रिवेणी-स्नान का भी महत्व बताया गया है तथा इन तीर्थों के अतिरिक्त 'सतरुद्र', चंद्रभागा और गंगा में भी स्नान करने की बात कही गयी है। कपिल मुनि के प्रसंग में उनका 'गंगासागर' में भी नहाना 'सारावली' में बताया गया है। 'सूरसागर' में सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र तीर्थ में स्नान करने की महिमा का बखान स्वयं श्रीकृष्ण ने श्रीमुख से किया है।

ङ. *दान*—शुभ कार्यों अथवा पर्वोत्सवों में प्रसन्नता से याचकों को दिया जानेवाला 'दान' वस्तुत: धार्मिक कृत्य नहीं है जिसका वर्णन अष्टछाप-काव्य में हर्ष के सभी अवसरों पर, बड़े विस्तार से, किया गया है। इसी

प्रकार किसी विपत्ति आदि से मुक्ति पाने पर दिया जानेवाला दान भी सामान्य कोटि का ही है; उदाहरणार्थ वरुणपाश से मुक्ति पाने पर यशोदा या नंद से दान देने को कहना कृतज्ञता-सूचक ही माना जायगा। अतएव धार्मिक कृत्य तो केवल वह 'दान' है जो पुण्यार्जन के उद्देश्य से दिया जाता है। ऐसे 'दान' का महत्व तीर्थ, व्रत आदि के समकक्ष बताया गया है जिसके न करने पर सुख की आशा करना व्यर्थ ही है। अष्टछापी कवियों ने धार्मिक कृत्य के अंतर्गत आनेवाले 'दान' की चर्चा अधिक नहीं की है।

च. *तप*—सामान्यतया साधकों में 'तप' के दो रूप प्रचलित रहे हैं। प्रथम का संबंध, पंचाग्नि में तपने-जैसी घोर कष्टदायी बातों से है और द्वितीय का अहिंसादि महाव्रतों का पालन करते हुए, भोग-सामग्रियों का परित्याग करके, संयम-नियम से जीवन बिताने से। अष्टछापी कवियों ने 'जरत-ज्वाला' कहकर प्रथम प्रकार के तप की ओर संकेत किया है और द्वितीय के बिना जीवन को व्यर्थ बताया है। उनकी गोपियाँ कृष्ण को पति-रूप में प्राप्तकरने के लिए इसी प्रकार का तप करती हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि ऐसे तप, व्रत आदि की साधना से 'पाषाण' तक द्रवित हो जाते हैं। अतएव जिस प्रकार शिव की प्राप्ति के लिए पार्वती ने तप किया था, वैसा ही घोर तप, शीत-घाम आदि के शारीरिक कष्टों की चिंता छोड़कर, वे छहों ऋतुओं में करती हैं। इस प्रकार के तप के प्रति अष्टछापी कवियों की आस्था का प्रमाण यह है कि उन्होंने गोपियों की तप-साधना से उनकी मनोकामना का पूर्ण होना बड़े उल्लास से लिखा है। स्वयं उनके आराध्य गोपियों के तप से संतुष्ट होकर उनकी मनोकामना पूर्ण करने की योजना बनाते हैं। केवल श्रीकृष्ण ही नहीं, देवी भी व्रजबालाओं के वर्ष भर के तप से संतुष्ट होकर 'बर' देती है।

छ. *यज्ञ*—अष्टछाप-काव्य में चार प्रकार के 'यज्ञों' का उल्लेख हुआ हुआ है। प्रथम अश्वमेध और राजसूय-जैसे यज्ञ राजा-महाराजाओं के कृत्य हैं। द्वितीय वे यज्ञ हैं जिनमें पशुओं की बलि दी जाती है। तीसरे प्रकार का यज्ञ उन ब्राह्मणों का धार्मिक कृत्य समझना चाहिए जिनके पास श्रीकृष्ण ने गोप बालकों को भोजन लेने भेजा था और जिन्होंने 'यज्ञ की रसोई' पहले गोप बालकों को देना अस्वीकार कर दिया था। चौथे प्रकार के यज्ञ संस्कारादि अवसरों पर किये जाते हैं जिनकी चर्चा उसी प्रसंग में पीछे की जा चुकी है। सूरदास के एक पद में यज्ञादि कृत्य न करना धर्महीनता कही गयी है। 'सारावली' में स्वयं श्रीकृष्ण यज्ञ, होम आदि धार्मिक कृत्य करते बताये गये हैं।

ज. *श्राद्ध*—दो प्रकार के श्राद्धों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है। प्रथम प्रकार के 'नांदीमुख' आदि वे श्राद्ध हैं जो पुत्र-जन्मादि अवसरों पर किये जाते हैं; जैसा कि सूरदास ने नंद जी द्वारा किया जाना बताया है। दूसरे प्रकार का 'श्राद्ध' धार्मिक कृत्य है जिसका न किया जाना समाज की अधार्मिक स्थिति का परिचायक है। ऐसे श्राद्ध को 'सारावली' में 'धार्मिक कृत्य' कहा गया है जिसका संपादन करते और ब्राह्मणों को दक्षिणा देते स्वयं श्रीकृष्ण नारद को दिखायी पड़ते हैं।

झ. *कथा-श्रवण*—अंतिम धार्मिक कृत्य है 'कथा-श्रवण'। 'सूरदास' ने 'भागवत' की कथा न सुनने पर जीवन को व्यर्थ ही बताया है। अपनी लिखी कुछ कथाओं के अंत में उन्होंने उनके सुनने से होनेवाला पुण्य भी बताया है। उदाहरणार्थ यमलार्जुन-उद्धार की लीला सुनने से, उनकी सम्मति में, समस्त ताप दूर हो जाते हैं; 'यज्ञपत्नी'-प्रसंग से हरि-भक्ति की प्राप्ति होती है; 'ज्योनार'-प्रसंग से भक्ति के साथ अभय पद मिलता है। इसी प्रकार नंददास ने कथा-श्रवण द्वारा कृष्ण का भी वश में हो जाना कहा है। अपने 'दशम स्कंध' के प्रायः सभी प्रमुख अध्यायों के श्रवण से होनेवाले लाभ उन्होंने बताये हैं। सूरदास ने एक पद में कहा है कि जहाँ हरि की कथा होती है वहाँ गंगा, जमुना, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, सभी नदियाँ आ जाती हैं और सभी तीर्थों का वहाँ 'बासा' हो जाता है। तात्पर्य यह कि सभी पुण्यसलिला नदियों में स्नान और सभी तीर्थों की यात्रा से जो धर्म-लाभ होता है, वह केवल हरि-कथा सुनने से सहज ही प्राप्त हो जाता है।

समीक्षा—उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अष्टछाप-काव्य में, तत्कालीन जन-समाज में प्रचलित धर्म के सैद्धांतिक और व्यावहारिक, दोनों पक्षों के सम्बन्ध में विचार मिलते हैं। परंतु पुष्टिमार्गीय भक्त होने के कारण वे कवि ईश्वर के अनुग्रह-लाभ को जितना महत्व देते हैं, उतना तीर्थयात्रा, तीर्थ-स्नान, यज्ञ, श्राद्ध आदि को नहीं देते। भक्ति की सैद्धांतिक बातों में भी वे ही उनको विशेष रुचिकर रही हैं जिनका सम्बन्ध भाव से अधिक है। सच तो यह है कि सरल और भावुक अष्टछापी कवि भाव की ही संपन्नता को भक्ति का सबसे बड़ा साधन मानते हैं जिस पर उनका आराध्य रीझ सकता है और इस दृष्टि से निस्संदेह उनका सन्देश अत्यंत उदार है।

———

९ दार्शनिक विचार

आत्मा, परमात्मा और प्रकृति के स्वरूप तथा संबंध का विवेचन, स्थूल रूप से, 'दर्शन' का प्रमुख प्रतिपाद्य है। सामान्यतया ऐसे विवेचन में सफलता मिलती है चिंतनशील व्यक्ति को और गद्य का माध्यम अपनाने पर उसका कार्य और भी सुगम हो जाता है। इसके विपरीत, अष्टछापी कवि भावुक भक्त थे और उनकी भावाभिव्यक्ति का माध्यम था गीतिकाव्य जिसमें किसी भी जटिल, दुर्बोध या नीरस प्रसंग के लिए अवकाश नहीं रहता। ऐसी स्थिति में यदि अष्टछाप-काव्य में 'दर्शन' के अंतर्गत आनेवाले प्रमुख विषयों, यथा—ब्रह्म, जीव, जगत और संसार, माया, मोक्ष, गोपी तथा रास—के संबंध में क्रमबद्ध विवेचन मिल जाता है तो उसके लिए हमें उनकी प्रतिभा की सराहना करते हुए उनका कृतज्ञ ही होना चाहिए।

१. ब्रह्म—

अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना है जो आदि, अनादि, अनुपम, अखंडित और रस-रूप हैं; अच्युत, अव्यक्त, अविनाशी और अनंत हैं। यह रस-रूप परब्रह्म अपनी इच्छा से ही सृष्टि के विविध तत्वों को और उनसे चौदहों लोकों को उत्पन्न करता है। इस प्रकार परब्रह्म ही इस सृष्टि का निमित्त और उपादान-कारण है एवं अपने विराट रूप में चौदहों लोकों में व्याप्त है। 'सूरसागर' में 'अलख' रूप के वर्णन की असमर्थता का प्रसंग उठाकर स्वयं हरि के मन में सबको अपना स्वरूप लखाने का विचार आना कहा गया है। पश्चात्, उन्होंने तीनों लोकों का विस्तार करके जिस ज्योति का प्रकाश फैलाया, वही आज घर-घर में दिखायी देती है। अष्टछापी कवि परब्रह्म के निर्गुण और सगुण, दोनों रूपों

को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'निर्गुण' ब्रह्म मनसा, वाचा और कर्म से अगोचर, गुण बिना गुणी और रूप-रहित होकर भी स्वरूपवाला है। परब्रह्म के विराट रूप और उसकी आरती का वर्णन भी उन्होंने किया है।

अष्टछापी कवियों के अनुसार वेद, उपनिषद आदि में जिस ब्रह्म को 'निर्गुण' और मन-बानी से अगम-अगोचर कहा गया है अथवा जिसके संबंध में 'नेति' कहकर अपनी बुद्धि या समझ की परिमिति स्वीकार की गयी है, वही भक्तों के वश होकर, उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए या रक्षा करने के उद्देश्य से सगुण-रूप में अवतार लेता है। सूरदास की सम्मति में जब सगुण ब्रह्म के अद्भुत चरित्र ही समझ में नहीं आते, तब उसके 'निर्गुण' रूप को कैसे देखा-समझा जा सकता है? श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व स्वीकार करते हुए उनसे ही नारद ने, 'सूरसागर' में, कहा है कि तुम अज हो, अनंत हो और, तुम्हारे समान तुम्हीं होने के कारण, अनुपम भी हो। जरासंध के बंदीगृह से छूटे हुए राजा, कृष्ण को 'माता', 'पिता', 'सहोदर', 'बंधु', यहाँ तक कि, 'जगद्गुरु' भी कहते हैं। सूरदास के कृष्ण 'दानलीला-प्रसंग' में 'भक्त हेत' विचारकर और 'दीन-गुहारि सुनकर' अवतार धरने की बात कहते और 'ब्रह्म से कीट' तक अपनी व्यापकता बताते हैं। 'सूरसागर' के एक पद में अपना परब्रह्मत्व घोषित करते हुए वे स्वयं कहते हैं कि मैं सर्वव्यापक हूँ, वेद मेरा ही यश गाते हैं, मैं ही कर्ता हूँ और मैं ही भोक्ता। ब्रह्मा, विष्णु और शिव मुझ परब्रह्म की ही शक्तियाँ हैं। दक्ष-प्रजापति के प्रसंग में यज्ञ पुरुष-रूपधारी परब्रह्म और 'दान-लीला'-प्रसंग में कुंभनदास के कृष्ण भी यही स्वीकार करते हैं।

परब्रह्म के दो अवतार प्रमुख हैं—एक, राम का और दूसरा, कृष्ण का। डा० गुप्त के अनुसार, 'राम का अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम का है और कृष्ण का अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम और पुष्टि-पुरुषोत्तम रसेश, दोनों का है। ब्रह्म का विष्णु-रूप वेद-मर्यादा की रक्षा तथा सात्विक धर्म के संस्थापन के लिए समय-समय पर अवतार लेता है। धर्म-संस्थापन के लिए भगवान का जो अवतार होता है वह चतुर्व्यूहात्मक है। संसार को केवल आनन्द देने के लिए जो अवतार होता है वह उनका रस-रूप है। कृष्णावतार में श्रीकृष्ण ने अपने दोनों रूपों से चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक, अवतार लिया था। विष्णु-अवतार देवकीनंदन-रूप से उन्होंने लोक-रक्षा और धर्म की संस्थापना की। वासुदेव-रूप मोक्षदाता है, संकर्षण-रूप दुष्टों का संहारकारी है, प्रद्युम्न-रूप सृष्टि का रक्षक, काम और गृहस्थ-रूप है तथा

अनिरुद्ध-रूप धर्म-रक्षक और धर्मोपदेशक है। अपने रसात्मकरूप में कृष्ण ने अनेक रसात्मक तथा लोक-रंजनकारी लीलाएँ कीं। इस प्रकार श्रीकृष्ण के अवतार-रूपों में दो रूप वल्लभ-सम्प्रदाय में मान्य हैं—एक, लोक-वेद प्रथित पुरुषोत्तम और दूसरा, लोक-वेदातीत पुरुषोत्तम। मथुरा, द्वारका तथा कुरुक्षेत्र में लीला करनेवाले तथा व्रज में दुष्टों का संहार करनेवाले कृष्ण का रूप लोक-वेद-प्रथित धर्म-संस्थापक वेद-रक्षक-रूप है तथा बाल-रूप से यशोदा और नन्द को मोहनेवाले, वृन्दावन में ग्वाल-बालों के साथ गाएँ चरानेवाले तथा वृन्दा विपिन में गोपियों के साथ रास करनेवाले कृष्ण का रूप रसात्मक है। देवकीनन्दन वासुदेव धर्म-रक्षक रूप हैं और यशोदा और नन्द-नन्दन रस-रूप हैं'।

अष्टछापी कवि कृष्ण के रस या आनंद-रूप के उपासक थे। सूरदास की गोपियाँ ऊधव से स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि हम सब गोपाल की उपासिका हैं; वे हमें तज गये हैं, फिर भी उनके चरणों में ही हमारी प्रीति है। समझ में नहीं आता कि हमारे किस अपराध से वे योग का संदेश देकर हमको 'प्रेम-भक्ति' की ओर से उदासीन करना चाहते हैं; परंतु हममें से कोई भी उनकी विरहिणी प्रेमिका ऐसी नहीं है जो उनको छोड़ कर कभी मुक्ति की कामना करेगी। परमानंददास ने केवल कृष्ण को ही नहीं, नंद, यशोदा, गोपी, ग्वाल, गाय के साथ-साथ 'गोकुल' को भी आनंद-स्वरूप कहा है जिनका ध्यान उनकी भक्ति या उपासना करनेवाले सुर, मुनि, संत आदि भी सदैव आनंदित रहते हैं। इसी प्रकार, एक दूसरे पद में, उन्होंने नंदनंदन को 'रसिक-शिरोमणि' कहकर उनके नेत्र, चितवनि, बात, गान, मिलन, वेणु, सभी में 'रस' बताया है। नंददास ने अपने आराध्य को 'रसमय', 'रसकारण' और 'रसिक' बताकर कहा है कि संसार के समस्त रस के आधार तुम्हीं हो। जगत का सारा रूप, प्रेम और रस तुम्हारा ही है। कृष्णदास ने रस-रूप श्रीकृष्ण की प्रिया राधिका को परम 'रसिकिनी' कहकर दोनों के अंगों को 'रसमय' बताया है।

कुंभनदास जहाँ कृष्ण को 'रसिक' कहते हैं, वहाँ गोविंदस्वामी उनके साथ राधा की जोड़ी को भी 'सरस' बताते हैं। चतुर्भुजदास ने रसिक-प्रवर गोपाल की प्रकृति बताते हुए स्पष्ट कहा है कि वे 'रस' से ही रीझते हैं; राधा ने भी उन्हें 'रस' से ही वश में किया है।

मथुरा और द्वारका के ऐश्वर्य-रूप कृष्ण के प्रति अष्टछापी कवियों की गोपियों में प्रीति की वह भावना नहीं है जो रस-रूप के प्रति है। यही

कारण है कि 'सूरदास' की विरहिणी गोपियाँ पथिक के साथ द्वारका नहीं जाना चाहतीं, क्योंकि वे जानती हैं कि वहाँ उन्हें न तो निकुंज-लीलाकारी रसिकप्रवर के दर्शन होंगे और न मुरलीधारी किशोर कृष्ण के ही। अन्य अष्टछापी कवियों ने भी ब्रज के लीलाधारी आनंद-रूप श्रीकृष्ण को ही अपना परमाराध्य या इष्टदेव घोषित किया है। मुरली, मोरपखौंवा, घुँघुँचिनि-हार आदि धारण करके धेनु के पीछे-पीछे चलनेवाले, रेणु-मंडित शरीरवाले और रात-दिन सखाओं के साथ खेलते रहनेवाले श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उनको कहीं सुख नहीं मिलता।

अष्टछापी कवियों के ब्रह्म-संबंधी कुछ विचार 'पौराणिक विश्वास' के अंतर्गत पीछे भी दिये जा चुके हैं।

२. *जीव*--

अष्टछापी कवियों ने 'जीव' की उत्पत्ति ईश्वर के अंश से और उसी की इच्छा से मानी है। सूरदास के परब्रह्म स्वयं ही कहते हैं कि सर्वप्रथम अकेला मैं ही अमल, अकल, अज, भेद-विवर्जित रूप में था। पश्चात्, मैं ही अनेक भाँति के जीवों की उत्पत्ति करके नाना रूपों में सुशोभित हुआ। नंददास ने समस्त व्यक्त-अव्यक्त विश्व और समस्त जीवों को परम पुरुष का रूप और विस्तार कहा है और प्रकृति, पुरुष, धर, अंबर, जीवन, जीव, सभी में उसे ही व्याप्त बताया है। उनके अनुसार, परब्रह्म से सबकी उत्पत्ति, उसी प्रकार होती है जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियों की। इसका स्पष्ट संकेत यह है कि जीव में भी, अग्नि की चिनगारी के समान, अपने परम मूल के सभी गुण विद्यमान रहते हैं। नंददास का यह कथन, महाप्रभु के विचार से प्रभावित होते हुए भी, बहुत सार्थक है। इस प्रकार सभी जीवों में परब्रह्म की ही समान शक्ति होना अष्टछापी कवि मानते हैं। यह शक्ति सब जीवों में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार ऊख में रस अथवा सूर्य की प्रभा का अगणित घटों में होना सर्वविदित है।

परब्रह्म का चेतन अंश होने पर भी जीव 'सत्स्वरूप' को भूल जाता है, ठीक वैसे ही जैसे मृग अपनी ही नाभि की कस्तूरी को नहीं जान पाता। अष्टछापी कवियों ने इसका कारण जीव का ही भ्रम या अज्ञान बताया है जिसके फलस्वरूप वह देहधर्म को प्रधान समझने लगता है। यही तथ्य राजा रहूगण को समझाते हुए सूरदास के जड़भरत कहते हैं कि सुख-दुख, संपत्ति-विपत्ति का भाव देह के साथ ही है, ब्रह्म के अंश जीव के साथ नहीं। जय और नाश भी देह के ही धर्म हैं; 'चेतन' तो नित्य और अनश्वर है।

अज्ञानी व्यक्ति यह रहस्य न समझ कर विविध कर्म करके अनेक दुख भोगता और विविध तन पाकर उन्हीं के सुख-दुख में भूला रहता है। इन्द्रिय-सुख की कामना से विषय-वासनाओं में फँसे ऐसे व्यक्ति की तुलना सूरदास ने मरु-जल के पीछे विकल होकर भागते प्यासे मृग से और सुस्वाद फल की आशा लगाये, सेमर के फूल के निकट बैठे, शुक से की है। ऐन्द्रिक और सांसारिक सुख-लोभ से ही जीव को, कपि की तरह, बंधन में पड़कर द्वार-द्वार नाचना पड़ता है। ज्ञानी इस रहस्य को समझता है और तन के भेद को महत्व न देकर उसमें स्थित अजन्मा और अविनाशी ब्रह्मांश आत्मा को ही जानना चाहता है। अष्टछापी कवियों के अनुसार, जीव का यह भ्रम भगवंत को 'चीन्हने' पर ही दूर होता है।

जीव के अज्ञान का दूसरा कारण है उसका 'अहम्' जो उसे समस्त कार्यों का कर्त्ता-धर्ता मानने को प्रेरित करता है। यद्यपि उसके जीवन में संकट के अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब केवल उसकी ही नहीं, उसके समस्त शुभचिंतकों और हितैषियों की सम्मिलित शक्ति और बुद्धि भी उसका उद्धार नहीं कर पाती, तथापि उसका 'अहम' अधिक समय तक अपनी तुच्छता का ध्यान नहीं रखता और पुन: अनेक रूपों में अपनी क्षमता, योग्यता, चतुरता, रूप-गुण-अधिकार-संपन्नता आदि का विज्ञापन करने के अपने स्वभाव को ग्रहण कर लेता है।

परब्रह्म का अंश होते हुए भी 'जीव' एक बात में उससे भिन्न है। वह यह कि जहाँ जीव काल, कर्म और माया के अधीन होने के साथ विधि-निषेध और पाप-पुण्य मानने को बाध्य हो जाता है वहाँ परब्रह्म इन सबसे परे रहता है। ऐसे जीवों को सचेत करते हुए कभी तो अष्टछापी कवि परब्रह्म की 'सर्वशक्तिमानता' की घोषणा करते और कभी स्वयं उनका परब्रह्म सृष्टि और उसके समस्त व्यापारों का कर्ता-धर्ता अपने को बताकर जीव को 'अहम्' भाव का परित्याग करने का अवसर प्रदान करता है। जीव की यह अज्ञानता, अष्टछापी कवियों के अनुसार, दो उपायों से छूट सकती है। पहला उपाय है 'सतगुरु' की शरण जाना और उसका कृपा-भाजन बनने की पात्रता अपने में लाना; क्योंकि उसकी कृपा से अज्ञानता दूर होने पर जीव सहज ही अपने 'चेतन' स्वरूप को जान सकता है। दूसरा उपाय है सच्चे और अनन्य भाव से परब्रह्म या परमाराध्य की शरण जाना जिनकी कृपा से भ्रम या अज्ञान से मुक्ति पाकर वह अपने 'सत्स्वरूप' को सुगमता से जानकर अभय-पद पा सकता है।

३. *जगत और संसार—*

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने 'जगत' की उत्पत्ति भगवान के द्वारा और 'संसार' की जीव के द्वारा होना बताया है। अष्टछापी कवि, जैसा पीछे 'ब्रह्म'-संबंधी विचारों के परिचय में कहा जा चुका है, 'जगत' को परब्रह्म द्वारा उसी से उत्पन्न होकर पुनः उसी में वैसे ही समा जाना मानते हैं जैसे पानी से बना हुआ बुलबुला, फिर उसी में विलीन हो जाता है। उनकी सम्मति में, 'जगत' के भिन्न नाम-रूपवाले अंगों में ब्रह्म उसी प्रकार व्याप्त है जैसे कंकण, किंकणी, कुंडल आदि भिन्न आभूषणों में स्वर्ण तत्व समान है। इससे जान पड़ता है कि जीव की तरह 'जगत' को भी वे ब्रह्मांश-स्वरूप, अतएव 'सत्य', मानते हैं; यद्यपि उनके अनेक पदों में 'जग' का प्रयोग सामान्य अर्थ में भी हुआ है।

अष्टछापी कवियों ने 'संसार' को अनेक स्थलों पर, 'सेमर-सा' निस्सार, मिथ्या, स्वप्न-स्वरूप, अंधकारमय, विष-सागर आदि तो कहा है, परंतु उसकी उत्पत्ति जीव द्वारा होने का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख उनके काव्य में नहीं मिलता और परमानंददास के एक पद में तो अपने 'अंश की मुक्ति' तजकर 'संसार' माँगने की बात भी लिखी गयी है जिससे स्पष्ट है कि उस काव्य में 'संसार' शब्द से उनका तात्पर्य जीव के अज्ञान-जन्य 'संसार' से नहीं है; अस्तु। इससे जान यही पड़ता है कि अष्टछापी कवियों ने 'जगत' और 'संसार' के दार्शनिक विवेचन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

४. *माया—*

अष्टछापी कवियों ने माया के दो रूपों का वर्णन किया है—एक है विद्या माया और दूसरी, अविद्या-माया। माया के द्वितीय रूप का कार्य जीव को संसार और सांसारिकता से जकड़े रहने का रहता है तथा प्रथम अर्थात् विद्या-माया, परब्रह्म की इच्छानुसार, सृष्टि की रचना अथवा उसका नाश करने के साथ-साथ ईश-प्रेरणा से जीव को अविद्या-माया के बंधन से मुक्त भी करती है। अष्टछाप-काव्य में माया के इन दोनों रूपों का वर्णन है—प्रथम का संक्षेप में और द्वितीय का विस्तार से।

विद्या-माया का जितना स्पष्ट वर्णन नंददास ने किया है, उतना किसी अन्य अष्टछापी कवि ने नहीं। उनकी सम्मति में, पंच महाभूत, दस इन्द्रियाँ, अहंकार, महत्व, त्रिगुण आदि विद्या-माया के ही विकास हैं; अर्थात विद्या-माया परब्रह्म की इच्छानुसार इस सृष्टि की रचना, इसका

प्रतिपालन तथा संहार करती है और मृगी-सदृश सदैव उनके ही अधीन रहती है। अन्यत्र नंददास ने योग-माया के समान 'मुरली' को अघटित घटनाओं के घटित करने में चतुर बताते हुए अगम, निगम, नाद-ब्रह्म की जननी विद्या-माया के ही कार्य की ओर संकेत किया है।

अष्टछापी कवियों में अविद्या-माया का सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। प्राणी को ईश्वर की ओर से विमुख करके सांसारिकता में फँसाये रखना अविद्या-माया का मुख्य कार्य है जिसके लिए वह काम, क्रोध, मद, लोभ, अज्ञान आदि अनेक मानसिक दुर्बलताओं के सहयोग से प्राणी को सत्पथ से दूर भटकाये रहती है। इस अविद्या-माया के हाथ में पड़े प्राणी की स्थिति वैसी ही पराधीनता की रहती है जैसी नटी के बंधन में पड़े कपि की जिसे लकुट के भय से 'कोटिक नाच' नाचने पड़ते हैं। अविद्या-माया-जनित लोभ के कारण प्राणी नाना स्वाँग बनाने की निर्लज्जता दिखाता है। अनेक मिथ्या अभिलाषाओं में फँसाकर, यह माया उसकी शांति हर लेती है और स्वप्न में धन-ऐश्वर्य का प्रलोभन देकर उसको 'बौरा' देती है। यह महामोहिनी है जो प्राणी को मुग्ध करके उसको पाप में लगाती है जैसे दूती कुल-बधू को प्रलोभन देकर उसको पर-पुरुष की ओर आकृष्ट करती है।

एक अन्य पद में सूरदास ने 'माया' की वेश-भूषा का वर्णन करके उसकी 'अकथ कथा' कही है। उनके अनुसार 'राती चूनरी', 'सेत उपरना', 'नीला लहँगा' और 'चोली-अँगरोटा' पहने हुए 'माया', चतुरानन, अमरगन, असुर-समाज, शिव, आदि को मुग्ध और मद-मत्त करती फिरती है और इसके डर से शुक-सनकादिक भागते फिरते हैं। जिस 'माया' ने देव, दनुज, ऋषि-मुनि, ब्रह्मा, महादेव आदि की यह दशा कर रखी है, उससे सामान्य पुरुष-वर्ग कैसे उबर सकता है? उनके साथ तो यह और भी कौतुक करती है—किसी को सुख-नींद से जगाती, किसी को दर्शन से ठगती और किसी के साथ हास-विलास करती है। माया ने जल-थल-नभ के सारे जीवों को भुलावे में डाल रखा है। संसार में जिसकी ओर भी यह जरा सा मुस्कराकर देख लेती है, उसी का मन हर लेती है। इस प्रकार माया ने जल-थल-नभ के जीवों को भुलावे में डालकर सारे जग को अपने वश में कर रखा है; अर्थात् कौन ऐसा है जो इसके भ्रम में नहीं फँसा? मन जब अविद्या-माया के वश में हो, तब भजन भी नहीं हो पाता; फिर जो माया के हाथ बिक ही गया हो, उसकी दशा तो बंधन में पड़े पशु-सी ही हो जाती है

और उससे न 'हरि-हित' हो पाता है, न 'तू-हित' हो तथा माया के झूठे प्रपंचों के कारण प्राणी का रत्न-सा जन्म व्यर्थ हो जाता है।

सूरदास ने इस माया को 'विषम-भुजंगिनि' भी कहा है जिसका विष 'गुरु-गारुड़ी' के उतारने से उतर सकता है या उन साधुओं की संगति से कुछ लाभ हो सकता है जिन्होंने 'कृष्ण रूपी संजीवनी' को पा लिया है।

५. *मुक्ति*—

संसार में प्राणी को जो कष्ट मिलता है, उसका कारण ऊपर अविद्या-माया को बताया गया है। उस अविद्या-माया के प्रभाव से जीव को मुक्ति मिल जाय तो वह सुखी हो सकता है। इसी कारण सूरदास अपनी अविद्या-रूपी गाय माधव को सौंपते हुए कहते हैं कि यदि आप इसे अपने 'गोधन' में मिला लेंगे तो मैं सुख से सोऊँगा और जन्म-मरण की ओर से निश्चिंत हो जाऊँगा। सांसारिक कष्टों से इस प्रकार मुक्ति पाना मोक्ष का एक रूप है। मुक्ति का दूसरा रूप है ईश्वर के दर्शन, भजन, तनजा, वित्तजा और मानसी सेवा तथा गुण-लीला-गान में उस परम सुख का अनुभव करना जो 'परम स्वाद' है, निरंतर है और अमित तोपदायी है। अष्टछापी कवियों ने इस सुख को वैकुंठ के सुख से भी श्रेष्ठ बताया है और जिसको इस सुख का अनुभव हो जाता है वह चारों पदार्थों को तो ग्रहण करता ही नहीं, तीनों लोकों को भी तृणवत् समझता है।

मुक्ति की उक्त दोनों स्थितियों में प्रथम को 'जीवन्मुक्त' और दूसरी को 'स्वरूपानंद' मुक्ति कहते हैं जिनमें प्राणी का शरीर तब तक नष्ट नहीं होता जब तक वह कर्मों का फल भोग नहीं लेता अथवा परब्रह्म अपनी कृपा से उनका 'शमन' नहीं कर देता। शरीर छूटने पर परमात्मा के कृपा-पात्र के लिए मुक्ति के चार रूप रहते हैं—'सालोक्य' अथवा भगवान के लोक की प्राप्ति, 'सामीप्य' अथवा भगवान के समीप रहने का भाव, 'सारूप्य' अथवा भगवान का रूप प्राप्त करना और 'सायुज्य' अथवा भगवान में मिल जाना। इनमें से प्रथम प्रकार की मुक्ति के सुख की ओर संकेत करते हुए सूरदास ने कहा है कि परमाराध्य के लोक-रूपी सरोवर पर पहुँचने पर फिर अन्यत्र नहीं उड़ना पड़ता। 'सामीप्य' मुक्ति के सुख का वर्णन करते हुए सूरदास ने एक पद में मन-रूपिणी चकई को संबोधित करके कहा है कि प्रभु के चरण-सरोवर वाले उस सुख-लोक को चल जहाँ न भ्रम-रूपी रात्रि होती है और न प्रियतम से कभी वियोग ही होता है। परमाराध्य के अवतार से दुर्लभ मुक्ति के सुलभ हो जाने और उनके चरणों

के सान्निध्य अथवा सामीप्य से मोक्ष या मुक्ति के अधिकारी हो जाने की बात नंददास भी कहते हैं।

तीसरी अर्थात 'सारूप्य' मुक्ति के सुख का आभास सूरदास के उन पदों में मिलता है जहाँ ऊधव श्रीकृष्ण से कहते हैं कि व्रज में आज भी सखा आदि अपने को तुम्हारा ही रूप मानकर तुम्हारी ग्वालवत की गयी लीलाएँ करने में ही मग्न रहते हैं। ऊधव को व्रजवासियों की इस रस-रीति के सामने सब कुछ फीका लगता है।

'सायुज्य' मुक्ति का उदाहरण परब्रह्म श्रीकृष्ण के नित्य-रास में गोपी-भाव से प्रवेश होने में मिलता है जिसका वर्णन सूरदास ने कई पदों में किया है। नंददास की रूपमंजरी भी शरीर त्यागकर कृष्ण में उसी प्रकार जा मिलती है जैसे सूर्य की गरमी, किरणों से होकर, पुन: उसी में समा जाती है। रासलीला के इस सुख को अष्टछापी कवियों ने अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति के सुख से भी बहुत ऊँचा बताया है।

मुक्ति के दो लयात्मक रूप और माने जाते हैं—प्रथम में भक्त, परमाराध्य के अवयवों का, वस्त्राभूषणादि अथवा परमधाम गोकुल, वृन्दावन या व्रज का, अंग-विशेष बनने की कामना करता है। सूरदास वृन्दावन की धूल, लता, गाय अथवा वहाँ का सलिल, द्रुम, गेह, ग्वाल, भृत्य आदि कुछ भी बन जाने की कामना करते हैं। परमानंददास भी वृन्दावन के मोर, गुंजा, बन-बेली, कृष्ण की वंशी, मकराकृत कुंडल आदि न होने पर पछताते हैं।

लयात्मक मुक्ति का दूसरा रूप है, विरहासक्ति की अवस्था में भक्त का परमाराध्य में तल्लीनता का अनुभव करना। अष्टछापी कवियों ने इस तल्लीनता का एकांगी वर्णन न करके भगवान का भी भक्त में व्याप्त हो जाना कहा है। भक्त और भगवान की यह तल्लीनता ठीक वैसी ही है जैसे जल से उत्पन्न लहरों में जल का व्याप्त रहना और लहरों का पुन: उसी में विलीन हो जाना।

मुक्ति के उक्त सभी रूपों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में होने पर भी आलोच्य कवि सगुण ब्रह्म की सेवा को ही सबसे बढ़कर मानते हैं, क्योंकि, जैसा सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं, उस स्थिति में सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य आदि सभी मुक्तियों के सुखों का प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है। परमानंददास को भी मदनगोपाल की सेवा मुक्ति से मीठी जान

पड़ती है। परमाराध्य के चरण-कमल में तन अर्पण करने के प्रसंग को सर्वोपरि मानते हुए वे पुन: कहते हैं कि मेरे मन को मुरली का नाद रुचा है। मेरा मन उनके चरण-कमलों के पास रहता है और मैं श्याम के रंग में रँग गया हूँ; अतएव मुझे योग के विविध अंग, मुक्ति, धर्म-मार्ग आदि कुछ भी नहीं चाहिए।

६. *रास*—

'रास' से तात्पर्य 'रस'-रूप कृष्ण और उन्हीं में लीन गोपियों के उस नृत्य से है जिसमें विशेष मानसिक रस का अनुभव हो। रास के मुख्य दो रूप हैं—पहला, 'अवतरित या नैमित्तिक रास' वह है जो रस-रूप श्रीकृष्ण ने द्वापर में गोपियों के साथ किया था। दूसरा है 'नित्य रास' जो वृन्दावन में परब्रह्म श्रीकृष्ण रस-स्वरूपा गोपियों के साथ 'नित्य' करते हैं। वल्लभाचार्य जी के सिद्धांतानुसार, "लीला के लिए जब भगवान इस भू-तल पर लीला-परिवार के साथ अवतीर्ण होते हैं, तब 'व्यापी बैकुंठ' गोकुल के रूप में तथा द्वादश शक्तियाँ श्रीस्वामिनी, चंद्रावली, राधा, यमुना आदि आधिदैविक रूप में प्रकट होती हैं। भगवान के साथ रस-कल्लोल का सद्य: आस्वादन करने के निमित्त ही वैदिक ऋचाएँ गोपिकाओं के रूप में अवतीर्ण हुई हैं। वृन्दावन-विहार नित्य विहार है। आचार्य की मान्यता है कि श्रीकृष्ण व्रज को छोड़कर एक डग भी बाहर नहीं जाते और आचार्य के प्रमुख शिष्य सूरदास जी ने भी 'गोपिनि मंडल मध्य बिराजत निसि दिन करत बिहार' के द्वारा श्रीकृष्ण के व्रज-विहार को नित्य लीला का ही अंग माना है"; अस्तु। अष्टछापी कवियों ने यद्यपि वर्णन तो 'अवतरित या नैमित्तिक रास' का किया है; परंतु वैसा करते समय उनकी दृष्टि बराबर 'नित्य रास' पर रही है। सूरदास ने इस 'रास-रस' को सुर-नर-मुनि, यहाँ तक कि शिव को भी, समाधि में मिलनेवाले सभी 'रसों' से बढ़कर बताया है। उनकी सम्मति में, सामान्य लौकिक बुद्धि से न इस 'रास-रस-रीति' का वर्णन हो सकता है और न अनुभव ही। अगम-निगम से मिला हुआ ज्ञान भी बिना ईश्वर की विशेष कृपा के इसकी प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकता। इसका यथार्थ अनुभव तो वे ही भक्तजन कर सकते हैं जिनमें भ्रम से सर्वथा रहित परम भक्ति-भाव है। इस रस की प्राप्ति के लिए बैकुंठ-लोक-वासी विष्णु भी ललचाते हैं और इसकी अधिकारिणी भाव-भक्ति-स्वरूपा गोपियों के परम भाग्य की सराहना करते हैं। शारदा के साथ समस्त देव, किन्नर, मुनि, शिव, नारद आदि 'रास-लीला-धाम' वृन्दावन और अद्भुत रास रचानेवाले श्रीकृष्ण को 'धन्य' कहते और फूल बरसाते

हैं। सुर-ललनाएँ भी 'व्रज-बधू' होने का सौभाग्य न पाने के कारण बार-बार पछताती हैं; अस्तु। नंददास ने श्रीकृष्ण तथा गोपियों को 'नित्य' बताकर उनके रास-रस को भी 'नित्य' तथा अद्भुत कहा है जिसका वर्णन शेष सहस्र मुखों से करने पर भी पार नहीं पाता। 'सिद्धांत-पंचाध्यायी' में उन्होंने 'रास-रस' को सकल शास्त्र-सिद्धांतो का सार-स्वरूप 'महारस' कहा है।

सूरदास और नंददास ने इस लीला के वर्णन को बहुत विस्तार दिया है, अन्य कवियों ने उसकी संक्षिप्त चर्चा से ही संतोष किया है। कुम्भनदास, चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने अद्भुत रास-लीला देखकर सुर, नर, मुनि के साथ-साथ पशु-पक्षी-पवन आदि के भी मुग्ध होने की बात कही है यहाँ तक कि, उनके अनुसार, चंद्रमा भी अपनी चाल भूल जाता है।

७. *गोपी—*

वल्लभ-संप्रदाय में 'राधा' और 'गोपियों' के मान्य स्वरूप का परिचय देते हुए डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है—'एक से अनेक होनेवाले भगवान की इच्छा-शक्ति द्वारा उनके अक्षर-ब्रह्म रूप से सत्-रूप जगत और चित्‌रूप जीव, देवता आदि की उत्पत्ति हुई और स्वयं आनंद-स्वरूप-पूर्ण पुरुषोत्तम-रूप से गो, गोप-गोपी आदि गोलोक की आनंद-रूप शक्तियों की उत्पत्ति हुई। पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का रस-रूप बिना उनकी रसात्मक शक्तियों के अपूर्ण है। कृष्ण धर्मी हैं और गोपिकाएँ उनका धर्म हैं। दोनों अभिन्न हैं। सिद्ध-शक्ति राधा और कृष्ण का संबंध चन्द्र और चाँदनी का है। गोपियाँ उस चाँदनी का प्रसार करनेवाली किरणें हैं। राधा भगवान की आदि रस-शक्ति है और गोपिकाएँ इस रस-शक्ति के भिन्न-भिन्नरूप हैं। इसीलिए भगवान की रस-शक्तियों के बीच रस की सिद्ध-शक्ति राधा स्वामिनी-स्वरूपा है। भगवान रस-शक्तियों के बीच पूर्ण रस-शक्ति-स्वरूपा राधा के वश में रहते हैं।

अष्टछापी कवियों ने भी 'गोपियों' का वर्णन परब्रह्म की 'आनंदमयी शक्ति' के रूप में ही किया है। सूरदास भी 'राधा' को, 'पुरुष' कृष्ण की 'प्रकृति' कहकर दोनों की एकता या अभिन्नता बताते हैं, 'शेष, महेश, गणेश, शुकादिक, नारदादि की स्वामिनी' कहकर व्रजधनी श्रीकृष्ण को 'सुबस' करने की बात कहते हैं और 'जगत-जननि', 'जगरानी', 'अगतिनि की गति', 'भक्तनि की पति' आदि कहकर उनकी वंदना करते हैं। आगे

उन्होंने 'राधा' से कृष्ण-भक्ति देने की प्रार्थना भी की है। परमानंददास कई पदों में 'राधा' के श्रीचरणों की वंदना करते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि अष्टछापी कवि 'राधा' को परब्रह्म की परमानंद-स्वरूपा शक्ति के ही रूप में मानते हैं। कृष्ण का उनसे गंधर्व-विवाह भी अष्टछापी कवियों ने कराया है।

श्रीकृष्ण के प्रति अन्य गोपियों के भी अनन्य भाव का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। गोपियों में कुछ विवाहिता हैं जो कुल-कानि, लोक-लाज और पति-पुत्र आदि का संबंध त्याग कर, 'जार'-भाव से श्रीकृष्ण को भजती हैं। शेष गोपिकाएँ कुवाँरेपन से ही श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट होती, उनको पति-रूप में पाने के लिए जप-तप करती, नेम-धर्म से रहती और शिव तथा सूर्य से यह मनोकामना पूर्ण कर देने की प्रार्थना करती हैं। इस कथन की पुष्टि 'पूजा' शीर्षक के अंतर्गत पीछे दिये गये उदाहरणों से होती है।

गोपियों के उक्त दोनों वर्गों की मधुर भाव-प्रधान भक्ति की प्रशंसा सभी अष्टछापी कवियों ने की है। परमानंददास ने उन्हें 'प्रेम की ध्वजा' कहा है जिनकी प्रशंसा शुक, व्यास और ऊधव, सभी करते हैं। एक दूसरे पद में, नंददास के स्वर में स्वर मिलाकर वे उन्हें 'निर्मत्सर संतों की चूड़ामणि' कहते हैं। नंददास ने 'रास-पंचाध्यायी' में पंचभूतों से निर्मित प्राणी से भिन्न, शुद्ध प्रेममय और जग की 'उजियारी' कहकर उनकी प्रशंसा की है।

समाप्ता—अष्टछाप-काव्य के रचयिता प्रमुख रूप से परम 'रसिक' और 'रसलीनी' के गायक भावुक भक्त थे और गौण रूप से कवि। सामान्यतया इन दोनों वर्गों की रुचि दर्शन और दार्शनिक विषयों की ओर नहीं होती। इसी कारण अष्टछाप-काव्य में दार्शनिक प्रसंगों की चर्चा अथवा उनका विवेचन अधिक नहीं है। तत्संबंधी जो थोड़े-बहुत उल्लेख उसमें मिलते हैं, वे एक तो इस कारण कि उन कवियों में से कुछ ने 'श्रीमद्भागवत' के विशेष स्थलों को लेकर पद अथवा स्वतंत्र ग्रंथ रचे और कुछ इस कारण की महाप्रभु वल्लभाचार्य के विचारों की छाया उनकी रचनाओं पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ी। प्रथम प्रभाव के उदाहरण सूरदास और नंददास के क्रमशः पौराणिक प्रसंगों और 'दशम स्कंध' के कुछ स्थलों पर मिलते हैं और द्वितीय के प्रायः सभी कवियों के स्फुट पदों में। ऐसी स्थिति में सभी अष्टछापी भक्त कवियों की रचनाओं के आधार

पर दार्शनिक विषयों के कुछ ही पक्षों का सामान्य परिचय मिलता है, क्रमबद्ध और सांगोपांग विवेचन नहीं, यद्यपि, जैसा कि ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है, कहीं-कहीं उनके कथन बहुत महत्व के हैं जिनसे वल्लभ-संप्रदायी विचारों पर भी प्रकाश पड़ता है। सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से अष्टछापी कवियों के ऐसे ही कथन महत्वपूर्ण हैं और मुख्यत: इन्हीं की चर्चा ऊपर की गयी है।

१० साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचार

अष्टछापी कवियों के साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचारों का अध्ययन करने के लिए उनको इन्हीं तीन उपशीर्षकों में विभाजित कर लेना उचित जान पड़ता है।

१. साहित्य-संबंधी विचार—

वल्लभ-संप्रदाय में चार प्रमाण माने गये हैं—१. वेद, २. गीता, ३. श्रीमद्‌भागवत और ४. वेदांत-सूत्र। अष्टछापी कवियों ने इनमें से प्रथम तीन प्रमाणों का उल्लेख श्रद्धा के साथ किया है। इनके अतिरिक्त संहिता, श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, आदि वेदांगों के साथ-साथ पुराण, महाभारत, शास्त्र, तंत्र, वाल्मीकि रामायण, अमरकोश आदि का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

क. वेद और वेदांग—वेद चार हैं—१. ऋग्, २. यजुः, ३. साम और ४. अथर्व। इस संख्या की ओर सूरदास ने संकेत किया है। वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा मानी गयी है और 'सारावली' में यह भी कहा गया है कि शंखासुर ने जब चारों वेदों का हरण किया तब हरि ने 'हयग्रीव' रूप धरकर, उसका हनन करके, वेदों का उद्धार किया। वेदों का विषय 'ब्रह्म' बताया गया है जिसके संबंध में बहुत-कुछ लिखने के पश्चात् 'नेति' लिखे जाने की बात नंददास की गोपियाँ कहती हैं। सूरदास ने वेदों में प्रभु का 'पतित-पावन' विरद् होना कहा है और अनेक कथनों की पुष्टि में 'वेद' को साक्षी-रूप बताया है। 'सारावली' में 'व्रजमोहन' का चरित्र ऋग्, साम

और यजुर्वेदों में वर्णित होना कहा गया है। शुभ कार्यों के अवसर पर ब्राह्मणों द्वारा 'सामवेद' आदि का पाठ किये जाने की बात प्राय: सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। गो० विट्ठलनाथ के जन्म के अवसर पर गोविंदस्वामी ने उन्हें वेद-धर्म प्रकटाकर धार्मिक पाखंड आदि दूर करने वाला कहा है।

'वेदों' के पर्याय-रूप में, अष्टछाप-काव्य में, 'निगम' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जिनके लिए, सूरदास के अक्रूर की सम्मति में, पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण 'गम्य' नहीं हैं। 'निगम-छंद' का पाठ कृष्ण-जन्म पर किये जाने की बात गोविंदस्वामी ने कही है।

वेद के चार भाग किये जाते हैं—संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और सूत्र। इनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में कम हुआ है। इन कवियों ने 'स्रुति' या 'श्रुति' का प्रयोग कभी तो 'वेद' के पर्याय-रूप में किया है और कभी 'वेद' के साथ भी किया है। 'स्मृति' का उल्लेख भी कहीं 'श्रुति' के साथ हुआ है और कहीं 'वेद' के साथ। इसी प्रकार गोपियों को कहीं 'वेद' की 'रिचा' कहा गया है और कहीं 'स्रुति - रिचा'। 'उपनिषद्' का उल्लेख भी अष्टछापी कवियों ने कहीं तो स्वतंत्र रूप से किया है और कहीं 'वेद' के साथ। परंतु महाप्रभु वल्लभाचार्य अथवा अष्टछापी कवियों ने 'वेद' की महिमा जिस रूप में भी गायी हो, उनका भक्ति-सिद्धांत 'वेद-मार्ग' या 'मर्यादा' का उल्लंघन करनेवाला ही है। प्राय: सभी अष्टछापी कवियों ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है।

ख. *गीता*—'श्री मदभगवद्गीता' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में, 'साक्षी'-रूप में, कहीं अकेले हुआ है और कहीं 'वेद' के साथ।

ग. *श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराण*—अष्टछाप-काव्य में सबसे अधिक उल्लेख 'श्रीमद्भागवत्' का हुआ है जिसके कर्त्ता के रूप में व्यास का उल्लेख सूरदास ने किया है। संपूर्ण ग्रंथ में बारह स्कंध होने की बात भी उन्होंने लिखी है। उसकी रचना के आधार की चर्चा भी सूरदास ने की है। 'श्रीमद्भागवत' के वक्ता-श्रोता के रूप में परब्रह्म, ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव, परीक्षित, सूत-शौनक, विदुर आदि का उल्लेख भी 'सूरसागर' में मिलता है। नंददास ने 'श्रीमद्भागवत' को 'निगम-सार' कहा है और सूरदास ने उसे वेद तथा गीता के समकक्ष माना है। सभी अष्टछापी कवियों ने 'भागवत' के माहात्म्य का बखान बड़ी श्रद्धा से किया है।

परमानंददास की सम्मति में यदि 'भागवत' पुराण और गोपियों का प्रेम न होता तो सब 'औघड़-पंथी' हो जाते और छीतस्वामी का मत है कि जब तक 'श्रीमद्भागवत' के कथा-रस में जन-समाज की रुचि है तब तक 'कलियुग' हो हो नहीं सकता। इसीलिए सूरदास कहते हैं कि यदि नर-जन्म पाकर 'भागवत' नहीं सुनी तो जीवन में किया ही क्या, अर्थात् सारा जीवन व्यर्थ ही हो गया।

अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'श्रीमद्भागवत' का आधार लेकर काव्य-रचना करने की बात कई पदों में लिखी है। परंतु इतना होने पर भी 'सूरसागर' किसी भी दृष्टि से 'श्रीमद्भागवत' का अनुवाद नहीं है; इस महत्वपूर्ण ग्रंथ से केवल कुछ कथा-सूत्र ही सूरदास ने लिये हैं। हाँ, नंददास ने अवश्य 'भागवत' का अनुवाद किया था जिसका सकारण उल्लेख उन्होंने 'दशम-स्कंध' के आरंभ में कर दिया है। अन्य कवियों में गोविंदस्वामी के कुछ पदों पर 'भागवत' का प्रभाव इतना अधिक है कि वह इसके तद्विषयक वाक्यों का अनुवाद ही जान पड़ता है।

'श्रीमद्भागवत' के अतिरिक्त सत्रह पुराण और माने गये हैं जिनका उल्लेख अष्टछापी कवियों ने कभी तो केवल 'पुरान'-रूप में अपने काव्य में किया है और कभी 'अठारह पुरान' कहकर 'वेदव्यास' को उनका रचयिता बताया है। 'वेदों' के साथ भी 'पुराननि' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। अठारह पुराणों में से 'श्रीमद्भागवत' के अतिरिक्त केवल 'पद्म पुराण' का उल्लेख परमानंददास के एक पद में मिलता है।

घ. *अन्य ग्रन्थ*—इस वर्ग के ग्रंथों में प्रथम है 'महाभारत' जिसका उल्लेख सूरदास ने किया है। दूसरा उल्लेख है 'शास्त्रों' का जिनकी संख्या 'छह' होने की बात 'सूरसागर' में कही गयी है। हरि-पद में चित्त लगाना ही सूरदास ने सभी 'शास्त्रों' का सार बताया है। 'तंत्र' और 'सतकोटि रामायन' का उल्लेख 'सारावली' में मिलता है। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित अंतिम ग्रंथ है 'अमरकोश' जिसके आधार पर नंददास ने 'मान-मंजरी' नामक 'शब्दकोश' का निर्माण किया था।

समीक्षा—उपरोक्त सभी ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं और जिस रूप में उनका उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है उससे यह नहीं जान पड़ता कि उन्होंने सभी का विधिवत् अध्ययन किया होगा। इस दृष्टि से नंददास का कार्य अवश्य उल्लेखनीय है जिन्होंने 'श्रीमद्भागवत' और

'अमरकोश' का बहुत अधिक आधार लेकर 'दशम स्कंध' और 'नाममाला' की रचना की। सूरदास ने 'भागवतानुसार' काव्य-रचना का उल्लेख करते हुए भी केवल कुछ कथा-सूत्र ही उसमे लिये। हाँ, वेद, पुराण, गीता आदि से संबंधित, उन कवियों के उल्लेखों से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि वे जिस वातावरण में रहकर काव्य-रचना करते थे, उसमें इनकी चर्चा बराबर हुआ करती थी और यही उक्त ग्रंथों के प्रति इन कवियों की श्रद्धा का कारण है।

२. *कला-संबंधी विचार*—

'कला' से तात्पर्य यहाँ 'ललित कला' से है जिसके मुख्य पाँच भेद हैं—वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य-कला। इन्हीं के संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार यहाँ दिये जा रहे हैं।

क. *वास्तुकला*—अष्टछाप-काव्य मे मुख्यत: राम और कृष्ण के उन भवनों की चर्चा है जो 'वास्तुकला' के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। कंस की राजधानी मथुरा में कंचन के आवास होने का उल्लेख परमानंददास ने किया है। वृन्दावन, मथुरा, द्वारका, सभी स्थलों के भवनों के साथ 'छज्जे' और झरोखे' या 'गवाक्ष' और खिड़कियाँ होने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। भवनों के 'कँगूरों' का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है और उनमें 'मणिखंभ' तथा 'मणिचौक' होने की बात भी कही गयी है। ऐसे भवनों की वास्तुकला का कदाचित सर्वोत्तम उदाहरण सूरदास के निम्नलिखित वर्णन में मिलता है—

दिन द्वारावति देखत आवत।
बिद्रुम स्फटिक पची कंचन खचि, मनिमय मंदिर बने बनावत।
जितै तितै नर-नारि मीन खग, सबहिनि के प्रतिबिंब दिखावत।
जल थल रंग बिचित्र बहुत बिधि, अवलोकत आनंद बढ़ावत।

वास्तुकला के आदर्श-रूप मे उपस्थित ऐसे भवनों को देखकर सुर-मुनि का मोहित होना भी सूरदास ने कहा है।

ख. *मूर्तिकला*—अष्टछापी कवियों के समय में मथुरा की मूर्तिकला कितनी उत्कृष्ट थी, इसका परिचय तत्कालीन मंदिरों में निर्मित देवी-देवताओं के साथ-साथ अन्यान्य सुन्दर मूर्तियों से लगता है। श्रीकृष्ण, राधा आदि की विविध क्रीड़ाओं तथा भाव-भंगिमाओं का भावपूर्ण और सजीव-जैसा अंकन उस युग की मूर्तिकला की ऐसी विशेषता है जो आज भी दर्शक

के चित्त को मुग्ध कर लेती है। अष्टछाप-काव्य में तत्संबंधी वर्णन बहुत कम हैं, केवल 'पाहन की पूतरी'-जैसे उल्लेख कहीं-कहीं मिल जाते हैं।

ग. *चित्रकला*—अष्टछापी कवियों ने चित्रकला के संबंध में चलताऊ ढंग से ही कुछ संकेत किये हैं। सूरदास की एक गोपी मन बहलाने के लिए जब वीणा बजाती है जिसे सुनकर चंद्र-रथ के मृग मुग्ध होकर स्थिर रह जाते हैं, तब सिंह का 'चित्र' बनाने का प्रस्ताव सामने आता है जिसे देखकर मृग शीघ्रता से भाग चलें और दुखदायिनी रात्रि का अंत हो जाय। श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं को नाना वर्णों के बेल-बूटों आदि से अंकित करना भी चित्रकला का ही एक सामान्य रूप कहा जा सकता है जिसकी ओर सूरदास ने एक पद में संकेत किया है। इसी प्रकार 'चित्र की पूतरी' का उल्लेख चतुर्भुजदास ने किया है। सूरदास ने 'भीति' के बिना 'चित्र' न खींचे जा सकने की बात कही है।

घ. *संगीत-कला*—अष्टछापी कवियों ने 'संगीत' का स्थान चौंसठ कलाओं में माना है। इस कला का संबंध प्रमुख रूप से गायन, वादन और नर्तन, तीन कलाओं से रहता है; अतएव इन तीनों के संबंध में स्वतंत्र रूप से विचार करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

अ. *गायन*—'नाद' संगीत का मूल है जिसमें चर, अचर, सभी को मोहने की शक्ति होती है और मृग तो 'नाद-प्रेम' पर अपने प्राणों की बलि तक दे देता है। श्रीकृष्ण की मुरली के मोहक 'स्वर' को सुनकर गोपियों का घर-द्वार की सुधि भूल जाना नाद-शक्ति के प्रभाव का प्रत्यक्ष उदाहरण है। संगीतकला के नाद-पक्ष को दृष्टि में रखते हुए अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य में 'ग्राम', 'मूर्च्छना,' 'तान', 'राग' आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। 'मूर्च्छना' आदि के मूल 'सप्तस्वरों' या 'सरगम' को साधकर ताल-लय की गति अपनाने का क्रम सूरदास ने बताया है। गति-भेद से सप्त स्वरों के मिलने से स्वर-संधान की बात कृष्णदास कहते हैं। कुंभनदास और चतुर्भुजदास तथा गोविंदस्वामी ने भी 'सप्त स्वरों' का उल्लेख किया है।

संगीत के मूल राग छह माने जाते हैं—भैरव, कौशिक, हिंदोल, दीपक, मेघ और श्री। कहीं-कहीं 'कौशिक' के स्थान पर 'मालकोष' का नाम मिलता है। रागिनियों की संख्या छत्तीस बतायी गयी है जिनका सूरदास ने भी उल्लेख किया है। चतुर्भुजदास के 'षटऋतु वार्ता' नामक ग्रंथ में ३६ रागिनियों के ये नाम बताये गये हैं—मलार, ललित, पंचम, आसावरी,

भैरव, मालव, टोड़ी, कल्याण, गुर्जरी, मालवा, गौड़ी, बिलावल, धनाश्री, रँगीली, खंमाच, देशाख, कान्हरो, गौड़ मल्हार, केदारौ, पटमंजरी, रामकली, गंधार, बराड़ी, कुंकुभ, कामोद, नट, गुनकली, माधवी, देस, विभास, हास, काफी, सोरठ, ईमन, जैजैवंती और सारंग। 'सारावली' में ३६ राग-रागिनियों के ये नाम गिनाये गये हैं—ललित, पंचम, खट, मालकोप, हिंडोल, मेघ, मालव, सारंग, नट, सावंत, भूपाली, ईमन, कान्हरौ, अड़ाना, नायकी, केदारौ, सोरठ, गौड़मलार, भैरव, विभास, बिलावल, देवगिरि, देशाख, गौरी, श्री, जैतश्री, पूर्वी, टोड़ी, आसावरी, रामकली, गुनकली, सुघराई, जैजवंती, सूहा, सिन्धूरा और प्रभाती। इन दोनों सूचियों में दिये गये रागिनियों के नामों में जैसा अंतर है, वैसा संगीत-शास्त्रियों में सदा से रहा है।

उक्त दो विशिष्ट स्थलों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य के अनेक पदों में विभिन्न राग-रागिनियों का उल्लेख हुआ है, जिनमें से प्रमुख के नाम अकारक्रम से ये हैं—अहीरी, असावरि या आसावरी, ईमन, कान्हरो, काफी, केदारो, गुंडमलार, गूजरि, गौड़ी, गौरी, टोड़ी, नटनारायण, मलार, मल्हार, मारू, मालव या मालवा, विभास, विलावल, श्री, सोरठ या सोरठी आदि।

'गायन' के साथ 'ताल' का भी ध्यान रखा जाता है। अष्टछाप-काव्य में झप, चर्चरी, त्रिवट और ध्रुव तालों का उल्लेख हुआ है।

अष्टछापी कवियों की एक विशेषता यह है कि उन्होंने अपना प्राय: समस्त काव्य विभिन्न राग-रागिनियों में गाया है। एक सूरदास के काव्य में ही अनेक राग ऐसे मिलते हैं जिनके लक्षण भी न मिलने की बात आलोचक कहते आये हैं। अतएव स्पष्ट है कि अष्टछापी कवियों का संगीत-विषयक शास्त्रीय ज्ञान बहुत ऊँचे स्तर का था और उनका काव्य भारतीय संगीत-शास्त्र को एक महत्वपूर्ण देन है जिसका उसी दृष्टि से मूल्यांकन निश्चय ही बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

आ. वादन—अष्टछाप-काव्य में राग-रागिनियों के समान ही अनेक वाद्य यंत्रों के, जिनको परमानंददास ने 'बाजे' भी कहा है, नाम मिलते हैं। चतुर्भुजदास ने पाँच बाजे एक साथ बजाये जाने की बात कही गयी है। अपने 'षटऋतुवार्ता' नामक ग्रंथ में उन्होंने इन ३६ वाद्यों के नाम लिखे हैं—बीनाचीन, मुरली, अमृतकुण्डली, जलतरंग, मदनभेरी, धौंसा, दुंदुभी, निसान, नगाड़ा, शंख, घंटा, मुहचंग, सिंगी, खंजरी, ताल, पटताल,

मँजीरा, मुहचरि, थारी, झालर, ढोल, ढप, डिमडिम, झाँझ, मृदंग, गिड़गिड़ी, पिनाक, रवाब, जंत्र, सहनाई, श्रीमंडल, सारंगी, दूधारी, करताल, तुरही और किन्नरी।

अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित विविध वाद्य यंत्रों को उनकी बनावट और बजाने के उपकरण या रीति की दृष्टि से, प्रमुख रूप से, चार भागों में विभाजित किया जा सकता है तन् या तार के बाजे, चमड़ामढ़े बाजे, ताल और सेखर वाद्य।

१. *तत् वाद्य*—इस वर्ग के वाद्य पीतल, लोहे के तार अथवा रेशमी या सूती डोरों से बँधे होते हैं जिन्हें लकड़ी, हाथीदाँत या मिजराब से बजाते हैं। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित इस प्रकार के बाजों में अमृतकुंडली, किन्नरी, जंत्र, तुंबुर, बीन या बीना, रवाब, सुर या स्वर अथवा श्रीमंडल आदि आते हैं।

२. *चमड़ामढ़े बाजे*—इस वर्ग के ढोल-जैसे चमड़ामढ़े बाजों में अष्टछाप-काव्य में आउज या आउझ, उपंग, चंग, डफ, डमरू, डिमडिमी, डौंड़ी, ढाढ़, दुंदुभी, धौंसा, निशान या निसान, पखावज, पटह, पनव, भेरि या भेरी, मृदंग, मुरज या मुरंज, रुंज आदि का उल्लेख हुआ है।

३. *ताल-वाद्य*—पीतल, ताँबे या लकड़ी के बने वे बाजे इस वर्ग में आते हैं जो परस्पर चोट करके या अन्य किसी वस्तु से मधुर स्वर उत्पन्न करते हुए बजाये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित करताल, गिरगिरी, घंट या घंटा, झाँझ, झालरी, तार या ताल आदि बाजे इसी वर्ग के हैं। धातु या चीनी की सोलह कटोरियों या प्यालियों में जल भरकर बजाये जानेवाले 'जलतरंग' वाद्य का भी अष्टछापी कवियों ने उल्लेख किया है।

४. *सेखर वाद्य*—मुँह से फूँककर बजाये जानेवाले वाद्यों को 'सेखर वाद्य' कहते हैं। इस वर्ग के वाद्यों में अष्टछापी कवियों ने सबसे अधिक उल्लेख 'मुरली' या 'बाँसुरी' का किया है जिसे 'बंसी', 'बेनु' आदि और भी अनेक नाम उन्होंने दिये हैं। इसके अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित गोमुख, तूर, महुअरि या महुवरि, मुहचंग, विषाण, शंख, शहनाई, सिंगी आदि वाद्य भी 'सेखर' वाद्य-वर्ग के ही हैं।

३. *नृत्यकला*—प्राचीन भारतीय कलाओं में 'नृत्य' कला भी प्रमुख स्थान की अधिकारिणी है। इसमें संगीत के ताल और लय के अनुसार ही पैर की गति होती है, इसी कारण संगीत से इसका घनिष्ठ संबंध है।

नर्तक की वेषभूषा भी विशेष होती है। 'चोलना' पहनना, 'फेंटा' बाँधना, नूपुर धारण करना आदि उसकी सज्जा के अंग हैं जिनसे सज्जित होकर नाद और ताल के अनुसार उसके नाचने का उल्लेख सूरदास ने एक विनय-पद में किया है। 'नृत्य' के बोलों के साथ संगीत के अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग सूरदास, नंददास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी के कुछ पदों में मिलता है। नृत्य के समय मृदंग आदि वाद्य बजने की बात भी इन कवियों ने लिखी है जिनकी ध्वनि के अनुसार ही 'नृत्य' चलता है।

रासलीला के नृत्य का विस्तृत वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। कृष्णदास ने 'तांडव' और 'लास्य' नृत्यों की भी उसी प्रसंग में चर्चा की है।

समीक्षा—गायन, वादन, और नृत्यकला-संबंधी अष्टछापी कवियों के जो अवतरण ऊपर दिये गये हैं उनको लेकर यद्यपि तद्विषयक पारिभाषिक शब्दों और सामान्य बातों की ही चर्चा की गयी है, तथापि उतने से ही प्रत्यक्ष है कि संगीत के इन तीनों अंगों का उनको असाधारण ज्ञान था। इसके फलस्वरूप ही उनके गेय पदों का संगीत-प्रेमियों में बहुत शीघ्रता से प्रचार हो सका जिससे व्रजभाषा के क्षेत्र-विस्तार में भी बहुत सहायता मिली।

३. *विज्ञान*—साधारणतया गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि के अतिरिक्त भौतिक, रसायन, वनस्पति, प्राणि, भूगर्भ आदि शास्त्रों की गणना 'विज्ञान' के अंतर्गत की जाती है। अष्टछापी कवियों ने इनमें से सर्वाधिक वर्णन 'ज्योतिष विज्ञान' का किया है। नंददास ने तो 'ज्योतिषशास्त्र' को 'अतीन्द्रिय ज्ञान' कहा है। 'ज्योतिषी' का मुख्य कार्य जन्मपत्र आदि बनाकर लग्नफल बताना, विभिन्न संस्कारों और मंगल-कार्यों के अवसर पर उनके लिए शुभ 'मुहूर्त' शोधना आदि कहा जाता है। सूरदास ने कृष्ण के जन्म के अवसर पर नंद जी के यहाँ 'आदि ज्योतिषी' के आने और 'लग्न सोधकर' तथा 'जोतिष गिनकर' फल सुनाने की बात कही है। संवत, तिथि, वार, पक्ष, घड़ी आदि की गणना करके ज्योतिषी जी शिशु का भविष्य फल बताते हुए कहते हैं कि 'वृष' लग्न में जन्म होने और 'निसिपति' के उच्च होने से इनको सदैव 'तन' का सुख मिलेगा। 'सिंह राशि के दिनकर' होने से सकल 'मही' ये जीत लेंगे। 'बुध' में 'कन्या' के 'जोग' के फलस्वरूप उनके अनेक 'पुत्र' होंगे। 'तुला राशि' से युक्त 'शुक्र' के कारण इनके शत्रु नहीं 'रहने' पायँगे, सातवें घर में 'राहु' के फलस्वरूप ये उच्च तथा नीच कुल की अनेक युवतियाँ 'करेंगे'। 'भाग्य- भवन' में 'मकर'

और 'महीसुत' होने से ये बहुत ऐश्वर्य बढ़ायँगे, 'लाभ' स्थान में 'मीन' तथा 'बृहस्पति' के रहने से इनके यहाँ नवनिधि सदैव वास करेंगी। 'कर्म' स्थान का 'ईश' 'सनीचर' होने से इनका वर्ण श्याम होगा।

चतुर्भुजदास ने भी कृष्ण के जन्म के अवसर पर नक्षत्र, लग्न आदि ज्योतिष-संबंधी बातों का उल्लेख किया है। परमानंददास ने कृष्ण के 'कर्ण-वेध' संस्कार का शुभ मुहूर्त निकलवाने के लिए दो-चार निपुण ज्योतिषी बुलाये जाने की बात लिखी है जो 'गुरुबल', 'तिथिबल', 'नच्छत्र, 'वार', 'घड़ी' आदि की गणना करके मुहूर्त बताते हैं। एक अन्य पद में परमानंद-दास ने कृष्ण का 'हाथ देखकर' ज्योतिषी द्वारा भविष्य फल बताया जाना कहा है।

अष्टछापी कवियों ने ज्योतिष-संबंधी कुछ पारिभाषिक शब्दों की भी चर्चा की है। उदाहरणार्थ सूरदास की गोपियाँ 'दाहिने सूक' होने के बुरे योग के फलस्वरूप दुख पाने की बात कहती हैं, तो परमानंददास ने 'ज्येष्ठा नक्षत्र' को उत्तम और शुभ बताया है।

वस्तुतः भारतीयों ने ज्योतिष शास्त्रीय ज्ञान में बहुत अधिक उन्नति की थी जिससे उनके निर्देशित फलों की सत्यता सभी को प्रभावित करती रही है। 'ज्योतिषी' के प्रति भारतीयों की श्रद्धा का यही प्रमुख कारण है। ज्योतिष शास्त्र का अष्टछापी कवियों ने इतनी लगन से जो वर्णन किया है वह भी इस बात का द्योतक है कि इस शास्त्र के प्रति भारतीय हिंदू समाज को सदैव से आस्था रही है। आज भी प्रत्येक शुभ कार्य और संस्कार के अवसर पर 'ज्योतिषी' सादर आमंत्रित किया जाता है।

समीक्षा—इतिहास में मुगलकाल विभिन्न कलाओं की उन्नति के लिए प्रसिद्ध है। उस युग के कुछ पूर्व से मुसलमान शासकों ने भवन-निर्माण का कार्य आरंभ कर दिया था और उनकी राजधानियाँ कलापूर्ण भवनों के लिए प्रसिद्ध हो गयी थीं। हिंदू शासक भी, इस कार्य में उनसे पीछे नहीं थे, यद्यपि उनकी अपेक्षाकृत साधनहीनता कभी-कभी उनकी तद्विषयक रुचि की पूर्ति की बाधा बन जाती थी। शासकों से इतर धनी-मानी वर्ग भी मंदिरों तथा अन्य धर्म-स्थानों के निर्माण में सदा से रुचि लेता रहा है और अष्टछाप-काल में अनेक कलापूर्ण हिंदू मंदिरों का निर्माण हुआ। उस युग की वास्तुकला के वे सभी नमूने आज भी देशी-विदेशी कला-पारखियों और सौंदर्य-प्रेमियों के आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं। अष्टछापी कवियों का तत्संबंधी वर्णन पढ़कर जान पड़ता है कि

अपने युग की कला-विषयक प्रगति से वे कवि भलीभाँति परिचित थे। यद्यपि अष्टछापी कवियों के वर्णन से किसी प्रकार की प्रेरणा उस युग के कलाकारों को मिली हो, ऐसा तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परंतु इतना निश्चित है कि कला-संबंधी जिस चरम आदर्श की कल्पना मानव-मस्तिष्क कर सकता है, उस तक पहुँचने का प्रयास अष्टछापी कवियों ने अवश्य किया और उसमें जो सफलता उन्हें प्राप्त हुई वह निस्संदेह असाधारण है।

११ उपसंहार

'संस्कृति' की सरलतम परिभाषा है—'माँजी-सँवारी जीवन-वृत्ति तथा जीवन-चर्या'। अष्टछाप-काव्य में चित्रित 'जीवन-वृत्ति और जीवन-चर्या' के विविध अंगों का ही पिछले पृष्ठों में परिचय दिया गया है। उसके आधार पर सांस्कृतिक चित्रण के संबंध में तीन बातों पर और विचार करना है—१. अष्टछापी कवियों का भारतीय संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण, २. विदेशी संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण और ३. सांस्कृतिक चित्रण की दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का महत्व।

१. अष्टछापी कवियों का भारतीय संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण—

भारतीय संस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता है दृष्टिकोण की उदारता। अष्टछापी कवियों ने भी इस दृष्टिकोण का सदैव समर्थन किया है। उनके आराध्य जब अधम व्याध, गीध, गणिका, अजामिल आदि को तारते हैं, सबरी के जूठ बेर खाते हैं, विभीषण-जैसे निशाचर से भरत की तरह मिलते हैं, कपट करके मारने आनेवाली बकी या पूतना को बैकुंठ लोक भेजते हैं और अपनी भक्त-वत्सलता के कारण किसी की जाति, गोत्र, कुल, पद, स्थिति आदि का ध्यान न करके सबको अपनाने को सदैव सहर्ष प्रस्तुत रहते हैं, तब अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण संकुचित कैसे हो सकता था? जब उनके आराध्य स्वयं श्रीमुख से घोषणा करते हैं कि भक्त मेरे हैं और मैं भक्तों का हूँ तथा भक्तों को सभी प्रकार के संकटों से बचाने के लिए नंगे पैर 'धाने' को सदैव प्रस्तुत रहता हूँ, तब अष्टछापी कवियों का भी समस्त मोह-भाव त्यागकर सबको समान रूप से प्रभु की भक्ति का

अधिकारी समझने की उदारता दिखाना ही अपने परमाराध्य के प्रति निष्ठा का परिचायक हो सकता था।

दृष्टिकोण की यह उदारता यों तो प्रत्येक युग में भारतीय संस्कृति का अंग रही है, परंतु अष्टछापी कवियों-जैसे विदेशी शासनकाल में इसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। धार्मिक कट्टरता और शक्ति के बल पर एक वर्ग दूसरे को अपने पथ पर लाने का प्रयत्न जिस युग में कर रहा हो, उस युग में प्रतिक्रिया-जन्य वैसा ही संकुचित दृष्टिकोण न अपना कर जहाँ अष्टछापी कवियों ने अपनी सहिष्णुता का परिचय दिया, वहीं उन्होंने भारतीय धर्म के उस संकुचित दृष्टिकोण का भी विरोध किया जो जन्म, कुल, गोत्र आदि की दृष्टि से उच्चता और नीचता की भावना का प्रचार और परिपालन करके राष्ट्रीय अहित का विष-बीज बोने की प्रेरणा दे रहा था। तात्पर्य यह कि अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण सांस्कृतिक दृष्टि से इतना उदार था कि धार्मिक भावों के प्रतिपादन और अभिव्यंजना के लिए लिखा गया उनका काव्य अपने युग में ही देशी - विदेशी जातियों और ऊँच-नीच वर्गों द्वारा पर्याप्त सम्मान पा सका।

२. *विदेशी संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण—*

अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव-काल तक इस देश में इस्लामी संस्कृति का प्रचलन हुए लगभग तीन सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि सभी नगरों में इसलाम धर्मानुयायी बहुत समय से बस गये थे और उनकी संस्कृति की बहुत सी बातें जन-समाज में प्रचलित हो गयी थीं। परंतु गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन आदि स्थानों में, जो 'अष्टछाप' के परमाराध्य की क्रीड़ाभूमि थी, इसलामी संस्कृति का प्रभाव अधिक व्यापक रूप से नहीं पड़ सका था जिसके फलस्वरूप अष्टछापी कवि भी उस प्रभाव से किसी सीमा तक बचे रहे। इसके मुख्यतः पाँच कारण हैं। पहली बात तो यह थी कि उन ग्रामीण क्षेत्रों का, युद्ध की दृष्टि से, विशेष महत्व न था; जिससे विदेशियों ने उनकी ओर नगरों-जैसा ध्यान न दिया। अतएव जनता के प्राचीन सांस्कृतिक विचार ही उन क्षेत्रों में अधिक प्रचलित रहे। दूसरे, अष्टछापी कवियों ने अपने को राजकीय प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखने का प्रयत्न किया। अकबर से सूरदास और कुंभनदास की एक-आध बार भेंट की चर्चा प्राचीन वार्ताओं में मिलती है, तथापि इन कवियों ने सदैव 'संतन को कहा सीकरी सों काम'-जैसा आदर्श ही अपनाये रखा, कभी

किसी ऐसी बात की कामना नहीं की जिसके लिए उन्हें घनिष्ठ रूप से राजकीय संपर्क में आना पड़ता।

तीसरे, अष्टछापी कवि अधिक पर्यटनप्रिय भी नहीं थे जो सुदूर प्रदेशों की यात्रा करते समय विदेशी संस्कृति से निकट से परिचित होने का अवसर पा सकते। चौथी बात यह कि श्रीनाथ जी के समक्ष ही उन कवियों के जीवन का अधिक भाग व्यतीत हुआ जहाँ हर समय भक्ति-चर्चा ही होती थी। पाँचवें, उन्होंने श्रीकृष्ण का जो पौराणिक आख्यान लेकर अपना काव्य रचा उसके मूल ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' का पारायण उनके निकट ऐसे नियमित रूप से होता था कि इतर विषयों के सोचने का कभी उनको अवकाश ही नहीं मिल सका। परिणाम यह हुआ कि अष्टछाप-काव्य का अंतः और बाह्य स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक विचारों से ही निर्मित है, विदेशी संस्कृति की छाप उस पर नहीं के बराबर है।

इसलामी संस्कृति का यदि उनके काव्य में कोई रूप दिखायी देता है तो वह मुख्यतः उसमें प्रयुक्त भोज्य पदार्थों, वस्त्राभूषणों, बाजों आदि के लिए प्रयुक्त कुछ शब्दों के उल्लेख में मिलता है। वाणिज्य और व्यवसाय-संबंधी अरबी-फारसी के कुछ शब्दों से ज्ञात होता है कि अष्टछाप-काव्य-काल तक सामान्य वर्ग में उनका चलन हो गया था। इसी प्रकार अष्टछापी कवियों के काव्य में प्रयुक्त शासन-संबंधी विदेशी शब्दावली की अधिकता भी सूचित करती है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में भी उसका प्रवेश हो चुका था। फारसी के 'सरकार' शब्द को लेकर सूरदास की गोपियों का यह कहना कि 'अंधधुन्ध सरकार' कैसे और कब तक 'निबहैगी' जहाँ उनकी राजनीतिक चेतना की ओर संकेत करता है, वहाँ इस बात का भी प्रमाण है कि 'सरकार'-जैसे शासन-संबंधी अनेक शब्दों को अपनाकर वे विदेशी संस्कृति के प्रति अपने विरोध-भाव का त्याग कर चुके थे। इसी प्रकार विदेशी 'मदका' जैसे शब्दों के प्रयोग के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के सामान्य व्यवहार में भी विदेशी शब्दों का प्रचार हो चुका था। कंस के 'दरबार' के लिए 'हजूर' शब्द का प्रयोग भी स्पष्टतः विदेशी संस्कृति के प्रभाव का प्रमाण है।

विदेशी शब्दों के प्रति अष्टछापी कवियों के दृष्टिकोण की उदारता का उदाहरण उन स्थलों पर विशेष रूप से मिलता है जहाँ वे अरबी के 'साहिब' शब्द का प्रयोग अपने परमाराध्य के लिए और फारसी के 'दरबार' शब्द का प्रयोग श्रीपति, राम, नंदराय आदि की आश्रय-दायिनी राजसभाओं

के लिए करते हैं। विदेशी संस्कृति के प्रति अष्टछापी कवियों के दृष्टिकोण की यह उदारता अपने आराध्य के लिए गो० तुलसीदास के 'साहिब' शब्द के प्रयोग में और अपने मान्य धर्मग्रन्थ के लिए सिक्खों के 'ग्रंथ साहब' प्रयोग में भी दिखायी देती है।

३. सांस्कृतिक चित्रण की दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का महत्त्व—

साहित्य को समाज का 'दर्पण' कहने का तात्पर्य, स्थूल रूप में, यह है कि कवि-विशेष ने किसी भी युग की कथा को लेकर काव्य रचा हो, प्रसंगवश उसमें अनेक ऐसी बातों का भी उल्लेख हो जाता है जिनका संकलन करने पर कवि-काल का थोड़ा-बहुत परिचय सरलता से मिल सकता है। इसी प्रकार अष्टछापी कवियों का अध्ययन करने पर तत्कालीन युग का परिचय प्राप्त कर लेना भी संभव समझकर प्रस्तुत प्रबंध लिखा गया है। ब्रजभाषा-कृष्ण-काव्य के आठ प्रमुख कवियों के काव्य के इस प्रकार के अध्ययन के लिए सुलभ होने से यह कार्य इस दृष्टि से और भी सुगम हो जाता है कि एक ही स्थान पर पर्याप्त समय तक साथ-साथ रहनेवाले और लगभग एक ही जैसा सांप्रदायिक दृष्टिकोण रखनेवाले आठ व्यक्तियों के अभिव्यक्त मतों का संकलन करने के पश्चात् निकाले गये निष्कर्ष किसी सीमा तक प्रामाणिक माने जा सकते हैं। इस प्रकार का अध्ययन इस कारण रोचक भी हो जाता है कि अष्टछाप के आठों कवियों की अवस्था में पर्याप्त अंतर था जिसका प्रभाव उनके काव्य पर पड़ना सर्वथा स्वाभाविक था।

इतना होने पर भी कुछ बातें ऐसी हैं जो प्रस्तुत अध्ययन-जैसे कार्य को कठिन बना देती हैं। सबसे पहली बात यह है कि अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण सामान्य कवियों के समान लौकिक नहीं था। फलस्वरूप उनके काव्य में समकालीन समाज का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं मिलता। अपने आराध्य की ही लौकिक लीला का दर्शन दिन-रात के प्रत्येक पहर में करने के अभ्यस्त उन कवियों में लोक के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा का ऐसा भाव आ गया था जिसने उन्हें प्रत्यक्ष जगत में ही नहीं, मानसिक जगत में भी प्रभु की जीवन-लीला के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्तित्व के संबंध में चिंतन और मनन करने से रोक रखा था। यही नहीं, स्वयं अपने ही इष्टदेव के जीवन की उन लीलाओं में अष्टछापी कवियों की अधिक रुचि नहीं थी जिनका प्रत्यक्ष संबंध लोक-जीवन से था और जिनके कारण भारतीय विचारधारा और चिंतन के इतिहास में वे लोकनायक और

योगिराज के परम सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किये गये हैं। इसी प्रकार उन कवियों के अध्ययन, चिंतन और मनन, कथा-चर्चा और वार्ता के ग्रंथ और विषय तक सीमित रहे जिसके फलस्वरूप लौकिक या सामाजिक चित्रण की दृष्टि से उनका दृष्टिकोण निश्चय ही सीमित हो गया। जीवन के सामान्य क्षेत्र में मर्यादा-निर्वाह की वैदिक रीति-नीति के उल्लंघन का जो वर्णन उनके काव्य में मिलता है, दार्शनिक दृष्टिकोण से यद्यपि उसका धरातल बहुत ऊँचा है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि सामाजिक और लौकिक दृष्टि से वह ग्राह्य नहीं समझा गया है।

तीसरी बात यह है कि प्रायः समस्त अष्टछाप-काव्य गीति-काव्य के रूप में लिखा गया, जिसके लिए वर्णनात्मक प्रसंग उपयुक्त नहीं होते। स्वयं श्रीकृष्ण के जीवन के ही विविध कथा-प्रसंगों को न अपनाकर घटनाओं के केवल आधार-सूत्रों को लेकर अष्टछापी कवियों ने पद रचे जो भाव-प्रधान और मार्मिक हैं। अतएव उनके काव्य में इतिवृत्तात्मकता-निर्वाह के लिए स्थान ही नहीं था और स्वयं उन कवियों की मनोवृत्ति भी उससे बचने की ही रही। सूरदास ने अवश्य कुछ पौराणिक प्रसंगों के साथ-साथ श्रीकृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाओं को विवरणात्मक विस्तार देने का प्रयत्न किया, परंतु वहाँ भी कवि की दृष्टि कथा की सीमित परिधि में ही घूमती रही, उस क्षेत्र के बाहर न जा सकी।

उक्त सब कारणों का परिणाम यह हुआ कि अष्टछापी कवि लोक और समाज के जीवन का प्रत्यक्ष चित्रण करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सके। फिर भी अष्टछाप-काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ब्रजप्रदेश के तत्कालीन जन-जीवन की गति-विधि का परिचय करानेवाली पर्याप्त उपयोगी सामग्री उन कवियों की रचनाओं में बिखरी पड़ी है। अष्टछाप के जिन कवियों, यथा गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने केवल कीर्तन-प्रसंगों, वर्षोत्सवों आदि पर ही विस्तार से लिखा, उनके काव्य के अध्ययन से केवल तत्संबंधी जानकारी ही हो सकती है; परंतु सूरदास, परमानंददास आदि ने उक्त विषयों के साथ-साथ अपने आराध्य की लीला के अनेक मनोरम प्रसंगों को लेकर उनके भावों का विस्तार करके अनेक पद रचे जिनसे ब्रज-जन-जीवन के अनेक पक्षों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार सिद्धांत और दृष्टिकोण-संबंधी अनेक व्यवधानों के होते हुए भी अष्टछाप-काव्य, सामूहिक रूप में, अपने युग के समाज का इतना परिचय अवश्य देने में समर्थ है कि उसके आधार पर तत्कालीन जन-जीवन की अच्छी जानकारी हो सकती है।

प्रत्येक युग के सामाजिक जीवन में अनेक ऐसी बातें प्रचलित रहती हैं जिनका संबंध तत्कालीन परिस्थिति से रहता है और इसके परिवर्तित हो जाने पर वे बातें भी बदल जाती हैं। स्थायी न रहनेवाली ऐसी बातें जितनी नागरिक जीवन में मिलती हैं, उतनी ग्रामीण-जीवन में नहीं। कारण यह है कि भारत-जैसे कृषिप्रधान देश में समाज-शरीर के हृदय वास्तव में ग्राम ही हैं, जहाँ विविध संस्कारों और परंपराओं की जड़ें, सहस्रों वर्षों तक उनके प्रचलन से, इतनी गहरी पहुँच गयी हैं कि उनमें सरलता से परिवर्तन नहीं होता। ऐसी परंपराएँ और मान्यताएँ दीर्घजीवी होती हैं। इसके विपरीत, जो बातें परिस्थिति-जन्य होती हैं, उनका जीवन अल्प होता है और समय के बदलते ही वे भी स्मृति की क्षीण होती हुई रेखा छोड़कर लुप्त हो जाती हैं। अतएव युग-विशेष के समाज का चित्रण करते समय दूरदर्शी कवि को यह देखना होता है कि समाज में प्रचलित कौन सी बातें परंपरागत हैं और कौन सी परिस्थिति-जन्य। यदि वह परिस्थिति-जन्य बातों को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है तो उसकी लोकप्रियता का क्षेत्र धीरे-धीरे सीमित होता जाता है और यदि वह परंपरागत बातों को अपनाने की दूरदर्शिता दिखाता है तो उसके काव्य का महत्व अपेक्षाकृत स्थायी, और प्रचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है।

संतोष की बात है कि अष्टछापी कवि दूसरे वर्ग में आते हैं जिनकी दूरदर्शिता इसी एक बात से पूर्णतया प्रमाणित है कि व्रज के सांस्कृतिक जीवन से संबंधित जिन बातों की चर्चा उन्होंने अपने काव्य में की है, उनमें से अधिकांश केवल व्रजप्रदेश में ही नहीं, लगभग सारे उत्तरी-भारत के हिंदू गृहों में, जहाँ की जनभाषा हिंदी अथवा उसकी कोई विभाषा है, आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य में अष्टछाप-काव्य का, भारतीय इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष के अध्ययन की दृष्टि से, महत्वपूर्ण स्थान है। कारण, मुस्लिमकालीन भारत का जो इतिहास विदेशियों ने अथवा शासन से संबंधित व्यक्तियों ने लिखा, उसमें तो सम्राट और उसके दरबार की चर्चा ही मुख्यत: की गयी है; प्रजा, और उसमें भी ग्रामीण हिंदू प्रजा की सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण उनके क्षेत्र से सदा बाहर ही बना रहा। ऐसी स्थिति में विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल में व्रज और निकटवर्ती प्रदेशों की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के प्रामाणिक साधनों में अष्टछाप-काव्य का निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान है।

सांस्कृतिक दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का मूल्यांकन करते समय यह भी देखना चाहिए कि अष्टछापी कवियों का मुख्य ध्येय, वल्लभ-संप्रदायी

सिद्धांतों का ध्यान रखते हुए अपने परमाराध्य की गोकुल-वृन्दावन-लीला के कुछ सरस प्रसंगों का गान मात्र है। यद्यपि वल्लभ-संप्रदायी सिद्धान्तों की छाप उनके काव्य पर पर्याप्त पड़ी है, तथापि सांप्रदायिक सिद्धांतों का विवेचन या प्रचार अथवा व्याख्या भी अष्टछापी कवियों की काव्य-रचना का लक्ष्य नहीं था। व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उसका कुछ प्रभाव उसके विचारों पर पड़ता ही है; फिर अष्टछापी कवि तो महाप्रभु और उनके सुपुत्र के प्रति अत्यंत पूज्य भाव रखते थे, उनके प्रवचन ही नहीं, उनका प्रत्येक कथन बहुत ध्यान से सुनते और तदनुसार आचरण भी करते थे। ऐसी स्थिति में सांप्रदायिक सिद्धांतों की विवेचना या व्याख्या का कार्य यदि वे साग्रह ग्रहण करते तब भी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी; और न उस युग को देखते हुए उस कार्य के लिए उन पर सांप्रदायिक दृष्टि से अनुदार होने का दोष ही लगाया जा सकता था: परंतु इष्टदेव की मधुरतम लीलाओं की तुलना में जब वैसा करना उन्होंने उचित नहीं समझा, तब यह आशा कैसे की जा सकती थी कि अपना प्रियतम विषय छोड़कर वे व्रज-जीवन के सांस्कृतिक पक्ष पर प्रकाश डालने को प्रवृत्त होते। अतएव उनके काव्य में तत्संबंधी जो उल्लेख मिलते हैं, वे प्रसंगवश ही आ गये हैं, जिससे वे तथ्य की दृष्टि से यथार्थ और समावेश की दृष्टि से नितांत स्वाभाविक हैं; उद्देश्य-विशेष से जोड़े या बढ़ाये गये काव्यांश नहीं।

अष्टछाप-काव्य 'श्रीमद्भागवत' का शब्दानुवाद अथवा छायानुवाद नहीं है, यद्यपि अनेक स्थानों पर, जैसा पीछे लिखा जा चुका है, अष्टछापी कवियों ने उसका अनुकरण करने अथवा आधार लेने की बात कही है। वस्तुत: हमारे आलोच्य कवियों ने कथा-सूत्र के साथ-साथ 'श्रीमद्भागवत' का सैद्धांतिक दृष्टिकोण ही अपने सामने रखा जिससे अपने तद्विषयक विचरण के लिए उन्होंने एक प्रकार से सीमा निर्धारित कर ली। काव्यात्मक भावव्यंजना और विषय-विस्तार के लिए उन कवियों ने सदैव पूरी स्वतंत्रता से काम लिया; यहाँ तक कि 'भँवर-गीत' और 'रास-लीला'-जैसे उन प्रसंगों के विशद विवेचन में भी स्वतंत्र उद्भावनाओं के अनेक उदाहरण अष्टछाप-काव्य में मिलते हैं, जिनका अपेक्षाकृत अधिक भाग 'श्रीमद्भागवत' के विवरण-क्रम के अनुसार ही है।

यही बात अष्टछापी कवियों के सांस्कृतिक चित्रण के संबंध में कही जा सकती है। वस्त्रों, आभूषणों, व्यंजनों, वाद्यों आदि की जो सूचियाँ अष्टछाप-काव्य में मिलती हैं, उनमें गिनायी गयी वस्तुओं में से अनेक

'श्रीमद्भागवत' में मिल जाती हैं; परंतु इस साम्य से अष्टछापी कवियों की मौलिकता का मान कम नहीं होता; क्योंकि उन वस्तुओं में से अधिकांश का चलन सोलहवीं शताब्दी में तो था ही, लगभग चार सौ वर्ष पश्चात् आज भी है। हमारे आलोच्य कवियों की तद्विषयक विशेषता इस बात में है कि 'श्रीमद्भागवत' की वस्तुओं के साथ उन अनेक नयी वस्तुओं का नामोल्लेख करना भी वे नहीं भूले जिनका प्रचलन पिछली कई शताब्दियों में अनेकानेक विदेशियों के आगमन से, उनकी संस्कृतियों के सम्मिलन के फलस्वरूप हो गया था। वस्तुतः सूची-संग्रह के कार्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है स्त्री-पुरुष वर्गों के जीवन के विविध पक्षों की गति-विधि और उनके कार्य-कलाप का परिचय देना जिसके वर्णन में अष्टछापी कवियों ने सर्वदा स्वतंत्रता से काम लिया। सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से उनके काव्य का यही पक्ष उपयोगी है और उसकी मौलिकता के कारण वस्तुतः उनका प्रयास सर्वथा अभिनंदनीय समझा जाना चाहिए।

पिछले पृष्ठों में व्रजवासियों की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, अध्यात्मिक, और कला-कौशल-संबंधी विचारधारा और स्थिति पर प्रकाश डालनेवाले जिन उदाहरणों का संकलन अष्टछाप-काव्य से किया गया है, उनके आधार पर तद्विषयक पूरी-पूरी जानकारी सहज ही हो सकती है। भारत में अभी तक जन-जीवन के सांस्कृतिक-इतिहास-लेखन का कार्य सुचारु रूप से आरम्भ नहीं हुआ है। जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन उसके लेखक को विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रथम पूर्वार्द्धकाल का सांस्कृतिक इतिहास लिखने के लिए अष्टछाप-काव्य से अत्यंत महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होगी और तभी काव्य-कला की दृष्टि से हिंदी साहित्य में उच्च स्थान के अधिकारी अष्टछापी कवि जन-जीवन की संस्कृति के सफल परिचायक के रूप में प्रतिष्ठित पद के अधिकारी समझे जायँगे।